प्रसादोत्तर नाटक में नायक

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फ़िल० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

प्रस्तुतकर्त्री
श्रीमती निरुपमा श्रीवास्तव

निर्देशिका
डॉ० आशा गुप्त, डी० लिट्०

हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

मई १९७८

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

चतुर्थ अध्याय —

पंचम अध्याय —

षष्ठ अध्याय —

—

निवेदन

भारतवर्ष में नाट्य-साहित्य की परम्परा बहुत प्राचीन है । ब्रह्मा ने ऋग्वेद से संवाद, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय, अथर्ववेद से रस के तत्वों को लेकर नाट्य-वेद की रचना की, जिसे पंचम वेद के नाम से पुकारा गया, जिस पर सभी वर्णों और जातियों का समान अधिकार है । भारतवर्ष में ही नहीं, संसार के अन्य देशों में भी नाट्य साहित्य को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है ।

साहित्य की समस्त विधाओं में नाट्य साहित्य ही एक ऐसी विधा है, जिसे देखा, सुना और पढ़ा जा सकता है । मनुष्य जीवन में जिन भावों और विचारों को शब्दों के माध्यम से प्रकट करने में असमर्थ होता है, उन भावों और विचारों को नाटक में अपनी भाव-भंगिमाओं और इंगितों के सहारे स्पष्ट कर देता है । नाट्याभिनय में नृत्य, गायन और वाद्य आदि समस्त कलाओं का समाहार हो जाता है । अत: इन सभी दृष्टियों से नाट्य-कला का समस्त कलाओं में शीर्ष स्थान है । साहित्य की अन्य किसी भी विधा में एक साथ इतनी कलाओं का आनन्द नहीं मिलता है । अत: नाट्यकला का महत्व स्वत: सिद्ध है ।

नाट्यकला सरस और महत्वपूर्ण होने के साथ साथ जटिल भी है । नाटककार को अनेक सीमाओं और परिधियों में रह कर अपनी कला की सार्थकता सिद्ध करनी पड़ती है । वह उपन्यासकार की भाँति मुक्त और स्वच्छन्द नहीं होता । संस्कृत के भास, कालिदास, भवभूति, शूद्रक और अश्वघोष आदि अनेक प्राचीन नाट्याचार्यों ने इस कठिन और जटिल परम्परा का निर्वाह करते हुए विश्व नाट्य-साहित्य को समृद्ध और सम्पन्न किया है ।

सदियों से नाट्य साहित्य विवेचन का विषय रहा है । संस्कृताचार्य भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' से इसकी प्राचीनता का अनुमान लगाया जा सकता है ।

भरतमुनि के बाद अनेक आचार्यों ने नाट्यशास्त्र सम्बन्धी विवेचन प्रस्तुत किया । इन ग्रन्थों में नाटक के विभिन्न पहलुओं के साथ-साथ नायक के सम्बन्ध

में भी विस्तार से सैद्धान्तिक निरूपण उपलब्ध होता है ।

नाट्यशास्त्र, साहित्य दर्पण, नाट्य दर्पण, दशरूपक, रूपक रहस्य, अग्निपुराण और कामसूत्र में नायक की परिभाषा के साथ-साथ नायक के प्रकार, गुण एवं उनके सहायकों का भी वर्णन किया गया है । इसके अतिरिक्त शृंगार प्रकाश, शृंगार निर्णय और रसिक प्रिया आदि में भी नायक सम्बन्धी विचार मिलते हैं । नाटक के सम्बन्ध में हिन्दी आलोचकों ने भी अनेक सैद्धान्तिक ग्रन्थों की रचना की है ।

डॉ० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित के भरत और भारतीय नाट्य कला` हजारी-प्रसाद द्विवेदी और पृथ्वीनाथ द्विवेदी के `भारतीय नाट्य शास्त्र की परम्परा और दशरूपक` में डॉ० श्यामसुन्दरदास के `रूपक रहस्य` में नाटक के सभी पहलुओं पर संस्कृत परम्परा का अनुसरण करते हुए विचार किया गया है ।

इन ग्रन्थों में नायक के सम्बन्ध में भी संस्कृत की नाट्यशास्त्र सम्बन्धी परम्पराओं का पालन किया गया है । डॉ० भोलानाथ तिवारी के `हिन्दी साहित्य` और गुलाब राय के `हिन्दी नाट्य विमर्श` की भी यही स्थिति है ।

कुछ आचार्यों ने नायक के समस्त पहलुओं पर विचार न करके दो-एक पहलुओं पर ही विचार किया है । उदाहरण के लिये `हिन्दी नाटक` में बच्चन सिंह ने नायक की परिभाषा एवं प्रकार पर तो विचार किया है किन्तु नायक के सहायकों और गुणों पर उनके विचार नहीं मिलते हैं । इसी तरह `हिन्दी नाटक के सिद्धान्त और नाटककार` में प्रो० रामचरण महेन्द्र ने एक ही वाक्य में नायक की परिभाषा एवं प्रकार को स्पष्ट कर दिया है । अन्य पहलुओं पर उन्होंने विचार नहीं किया है । इसके अतिरिक्त नायक के स्फुट विवरण कई अन्य ग्रन्थों में भी प्राप्त होते हैं — डॉ० रघुवंश का `नाट्य कला` , डॉ० दशरथ ओझा का `नाट्य समीक्षा` , और `हिन्दी नाटक की

रूपरेखा ' , डॉ० नगेन्द्र का ' आधुनिक नाटक, ' सूरज प्रसाद खत्री का ' नाटक की परख ', विष्णुकुमार त्रिपाठी का ' नाटक के तत्व सिद्धान्त और समीक्षा ', डॉ० दशरथ सिंह का ' हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी नाटक, डॉ० शान्तिगोपाल पुरोहित का ' हिन्दी नाटकों का विकासात्मक अध्ययन ' आदि ग्रन्थों में नायक सम्बन्धी जो विचार प्रकट किए गए हैं उन्हें पूर्ण नहीं कहा जा सकता ।

डॉ० दशरथ ओझा के नाट्य निबन्ध ' और ' हिन्दी नाटक उद्भव और विकास ' डॉ० गिरीश रस्तोगी के ' आधुनिक हिन्दी नाटक ' और डॉ० गणेशदत्त गौड़ के ' आधुनिक नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन आदि पुस्तकों में यद्यपि नाटक के विभिन्न पहलुओं पर गम्भीरता से विचार किया गया है परन्तु नायक सम्बन्धी विचारों का उल्लेख बहुत अल्प मात्रा में है ।

डॉ० राजेन्द्रकृष्ण भनोत ने ' नायक ' विषय पर प्राचीन परम्पराओं से हटकर शोध परक दृष्टि से नई स्थापनाएँ करने का प्रयास किया है । इस ग्रन्थ में प्रसाद तक के नाटकों को आलोचना का विषय बनाया गया है ।

प्रसाद के बाद नाटकों में नायक के स्वरूप में महान परिवर्तन दिखाई देते हैं । आधुनिक नाटककारों ने प्राचीन मर्यादाओं से हटकर साधारण मानव के रूप में नायक को स्वीकार किया । विशेषकर प्रसाद के बाद के नाटकों में नायक का यह बदलता हुआ स्वरूप साफ उभर कर सामने आता है । हिन्दी नाटकों में नायक-नायिका का जो नया रूप है उसे देखते हुए नायक सम्बन्धी कोई सीमाएँ या मान्यताएँ बनाना बहुत कठिन है ।

संस्कृत नियमानुबद्ध नायक के साथ दर्शक का सहज तादात्म्य संभव है अथवा नहीं यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है । विशिष्ट गुणों से युक्त नायक को देखकर दर्शक चमत्कृत हो सकता है, किन्तु उसके साथ उसका साधारणीकरण नहीं हो सकता । अतः आज का नाटककार नायक में सबलताओं के साथ-साथ मानव सुलभ दुर्बलताएँ भी दिखाता है, जिससे पाठक या दर्शक उसमें अपना प्रतिबिम्ब देख सके ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में प्रसाद के बाद के नाटकों में नायक की स्थिति का सांगोपांग विवेचन प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। विषय की भूमिका के रूप में प्रसाद के पूर्व के नाटकों में नायक की स्थिति पर भी संक्षेप में विचार किया गया है। यह शोध प्रबन्ध छः अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय में नायक सम्बन्धी शास्त्रीय परिभाषाओं, नायक के प्रकार, नायक के सहायक नायक के सामान्य एवं सात्विक गुण प्रति नायक एवं नायक के महत्व के सम्बन्ध में विचार किया गया है।

द्वितीय अध्याय में भारतेन्दु से प्रसाद तक के नाटकों के अन्तर्गत नायकों का विवेचन है। यद्यपि यह इस विषय के अन्तर्गत नहीं आता परन्तु तुलनात्मक दृष्टिकोण से यह बताना अनिवार्य हो जाता है कि भारतेन्दु, द्विवेदी एवं प्रसाद युग में नाटकों में नायक की क्या स्थिति थी। प्रसाद के पूर्व के नाटकों पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारतेन्दु युग से ही प्राचीन नाट्य परम्पराओं में परिवर्तन होना प्रारम्भ हो गया था और नायक के चरित्र को देवत्व के आदर्श की अपेक्षा मानव के साधारण गुणों एवं अवगुणों से युक्त किया जाने लगा था।

तृतीय अध्याय में प्रसादोत्तर नाटकों में नायक का परिवर्तित होता हुआ रूप, नायक की पुनर्व्याख्या, नायक के नये रूप अथवा प्रकार का विवेचन है।

चतुर्थ अध्याय में उन नाटकों पर विचार किया गया है, जिनमें पुरुष प्रधान पात्र हैं। इन पुरुष प्रधान नाटकों में कुछ नाटकों के नायक प्राचीन मान्यताओं से युक्त सर्वगुण सम्पन्न दिखाई देते हैं, कुछ नाटकों के नायक आज की संघर्षमय स्थिति से जूझते हुए मानव सुलभ दुर्बलताओं से युक्त भी दिखाई देते हैं।

पंचम अध्याय में उन नाटकों का विवेचन है, जिनमें स्त्री प्रधान पात्र हैं। इन नायिका प्रधान नाटकों में स्त्री के प्राचीन एवं आधुनिक दोनों ही रूपों को

किया गया है । आज के युग में इन नायिका प्रधान नाटकों की संख्या अधिक है । इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी नाटक हैं जिनमें नायिका या स्त्री पात्र बिल्कुल ही नहीं हैं ।

षष्ठ अध्याय में उन नाटकों का विवेचन है जिनमें प्रधान पात्र अथवा नायक का रूप स्पष्ट नहीं है । इस संदर्भ में दो प्रकार के नाटक मिलते हैं —

एक तो वे नाटक जिनमें समस्त पात्र अपनी विभिन्न विशिष्टताओं से परिपूरित दिखाए जाते हैं, अतः उनमें किसे प्रधान पात्र कहा जाए यह समस्या उठती है,

दूसरे वे नाटक जिनमें सभी पात्रों का चरित्र इतना सामान्य होता है कि वे सिर्फ अपने स्थान की पूर्ति करते हुए दिखाई देते हैं, अतः ऐसे नाटकों में किसी भी पात्र को प्रधान पात्र कहना बड़ा कठिन होता है ।

इस प्रकार प्रसादोत्तर नाटकों के विशेष अध्ययन से नायक के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के रोचक तथ्य सामने आते हैं ।

पहली बात यह है कि संस्कृत की नायक सम्बन्धी परिभाषाएं हिन्दी के आधुनिक नायक के सम्बन्ध में नितान्त अर्थहीन सिद्ध हो चुकी हैं । दूसरी बात यह है कि हिन्दी का नाटककार चरित्रांकन के सम्बन्ध में किसी भी बात के सीमा में बंधना स्वीकार नहीं करता।

मोहन राकेश, सुरेन्द्र वर्मा, सुशील कुमार सिंह, मुद्राराक्षस, सन्तोष नौटियाल, लक्ष्मीनारायण लाल, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, सत्यव्रतसिन्हा, विपिनकुमार अग्रवाल आदि नाटककारों ने अपनी रचनाओं में नायक के सन्दर्भ में अनेक मौलिक प्रयोग निरशंक भाव से प्रस्तुत किये हैं ।

तीसरी बात यह है कि नायक या मुख्य पात्र अथवा पात्रों सम्बन्धी ये जो नये रूप आधुनिक नाटकों में दिखाई देते हैं, इनके माध्यम से नाटककारों ने अपने युग के यथार्थ रूप को अपने युग की समस्याओं को आर्थिक, सामाजिक, जिन्दगी के खलते हुए अनेक पहलुओं को अत्यन्त सजीव एवं बोलते हुए रूप में प्रस्तुत किया है।

चौथी और अन्तिम बात यह है कि प्रसादोत्तर नाटकों का नायक हमारे आदर्श का देवता है न वह किसी प्रकार का मानसिक बोझ हमारे ऊपर डालता है। वह अत्यधिक सहज रूप में एक ओर हमारा हल्का फुल्का मनोरंजन करता हुआ, दूसरी ओर हमें गम्भीर विचारों से प्रेरित करता हुआ हमारा ही रूप बन कर सामने आता है और यही बात इन नाटकों की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

अन्त में उन सबों को धन्यवाद देना मेरा परम पुनीत कर्तव्य है जिनकी प्रेरणा से, सहायता से मैं इस कार्य को पूरा कर सकी।

डॉ० आशा गुप्त, डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, डॉ० जगदीश गुप्त, डॉ० माताबदल जायसवाल इन सभी के प्रति मैं अत्यधिक कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने विषय निर्वाचन से लेकर शोध के टंकित होने तक सदैव अत्यधिक वात्सल्य भाव से मेरी सहायता की।

अपने श्रद्धेय सास ससुर, पूज्य माता पिता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। मेरे देवर सतीश, रमेश, ननद सावित्री, शशी और मेरे समस्त भाई बहन और उन समस्त प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोगियों जिन्होंने इस कार्य में मुझे आत्मिक सहयोग प्रदान किया, इन लोगों के प्रति मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ।

मेरे पति श्री सुशीलकुमार श्रीवास्तव ने सचमुच एक आदर्श जीवन साथी के सदृश इस कार्य में हर प्रकार से निरन्तर मुझे सहयोग दिया है। उनके प्रति किसी भी प्रकार के भाव को शब्दों में प्रकट करना, अपने ही प्रति कुछ कहना होगा।

मेरी गुरु बहन श्रीमती सुषमा बग्गा, प्रमिला और गुरुभाई डॉ० अशोककुमार त्रिपाठी ने समय समय पर मेरी अनेक कठिनाइयों को दूर किया। इन तीनों के प्रति मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ।

पुस्तकालयों में इलाहाबाद विश्वविद्यालय, हिन्दी परिषद्, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, राजकीय पुस्तकालय के अधिकारियों और कर्मचारियों के प्रति मैं अपना धन्यवाद अर्पित करती हूँ जहाँ से मैं अपने शोधकार्य से सम्बन्धित ग्रन्थों को उपलब्ध कर सकी।

श्री मेवालाल मिश्र ने कठिन परिश्रम के साथ इस शोध प्रबन्ध को टंकित किया है, उन्हें भी मैं धन्यवाद देती हूँ।

निरुपमा श्रीवास्तव

प्रथम अध्याय

नायक शब्द की व्युत्पत्ति और विकास —

१. शास्त्रीय परिभाषाएँ
२. नायक के प्रकार
३. नायक के सहायक
४. नायक के सामान्य गुण
५. नायक के सात्विक गुण
६. प्रतिनायक
७. नायक का महत्व

नायक शब्द की व्युत्पत्ति और विकास

शास्त्रीय परिभाषाएं

नायक शब्द 'नी' धातु से बना है। संस्कृत का 'नी' धातु ही 'नयन करने' अर्थात आगे ले जाने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। नायक कथावस्तु को 'आगे ले जाने वाला'[1] का अर्थ प्रकट करता है।

'जो कथा को फल की ओर ले जाता है' वही नेता होता है।[2]

अतः कथानक को उत्तरोत्तर प्रगति की ओर ले जाने में नायक का अनिवार्य हाथ है। हिन्दी का 'नायक' शब्द अंग्रेजी के 'हीरो' का

---

१. नायक - (पु०) (नी + ण्वुल) ले जाने या पहुँचाने वाला व्यक्ति। किसी समुदाय या जनता को विशिष्ट उद्देश्य की कार्यसिद्धि का मार्ग निर्देशन करने वाला प्रभावशाली व्यक्ति या अधिकारी, अग्रेसर। वह सेनापति जिसके अधीन दस और सेनापति हों। बीस हाथियों और घोड़ों के दल का अध्यक्ष। प्रभु, अधीश्वर। हार का प्रधान मणि। श्रेष्ठ पुरुष, किसी समुदाय का अग्रगण्य व्यक्ति। शृंगार का आलम्बन रूप यौवन आदि से सम्पन्न पुरुष। वह पुरुष जिसके व्यक्तित्व को लेकर किसी काव्य या नाटक आदि की रचना की गई हो। एक राग। शाक्य मुनि। एक छन्द। अधिप-(नायकाधिप)-पु० राजा।

~~(१)~~ संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, सम्पादक स्वर्गीय चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा, द्वि०संस्करण, १९५७, पृ० ५७८

२. हिन्दी नाट्य विमर्श, गुलाब राय, संस्करण १९५८, पृ० ३२

पर्याय है। 'अग्निपुराण' में भी 'नायक' शब्द का प्रयोग हुआ है, परन्तु दशरूपककार, धनंजय[1] साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ[2] ने नायक की अपेक्षा 'नेता' शब्द का प्रयोग किया है।

'वात्स्यायन' नायक के लिये 'नागर' शब्द का प्रयोग करते हैं, नायक शब्द का भी उन्होंने प्रयोग किया है किन्तु वह नागर का ही पर्याय है। ग्राम की अपेक्षा नगर में रहने वाले को उन्होंने नागर कहा है और 'नागरवृत्तम्' नाम का एक पृथक् प्रकरण अपने ग्रन्थ 'कामसूत्र' में रक्खा है।[3]

नाटक में कई पात्र रहते हैं। प्रधान पात्र को नायक कहा जाता है। नाटककार अपनी कथा का आधार इसी को बनाता है। नाटक के सम्बन्ध में प्रथम शास्त्रीय चिन्तन भरत मुनि के नाट्यशास्त्र से माना जाता है।

'नाट्यशास्त्र' में 'नेता' या 'नायक' शब्द दो अर्थों में व्यवहृत हुआ है। एक तो नाटक के मुख्य पात्र के अर्थ में दूसरा सामान्य

---

१. नेता विनीतो, मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः
दशरूपक, (व्याख्याकार), भोलाशंकर व्यास, पृ० ७३

२. 'दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान्नेता ।।' ३-३०
हिन्दी साहित्यदर्पण, डॉ० सत्यव्रत सिंह, पृ० १३८

३. कामसूत्र, भाग १, वात्स्यायन, पृ० १२५

रूप में पात्रों के अर्थ में। पहला ही अर्थ मुख्य है।[1] आचार्य भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में नायक की चर्चा करते हुए कहा है :-

"नाटक के अनेक पात्रों में प्रधान पात्र को नायक की संज्ञा दी जाती है। जो व्यक्ति विपत्ति और अभ्युदय (भाग्योत्कर्ष) में भी सुख का अनुभव करता है, और जो इन दोनों अवस्थाओं में अपने उत्कर्ष को बनाए रखता है और नाना प्रकार के गुणों से युक्त रहता है, वह नायक कहा जा सकता है।[2]

डॉ० सुरेन्द्र नाथ दीक्षित भरत के विचारों को पूर्णतया स्पष्ट करते हुए कहते हैं, "भरत ने प्रधान नायक के सम्बन्ध में यह स्पष्ट रूप से प्रतिपादित कर दिया है कि पात्रों में प्रधान नायक वही होता है, जो नाटक के सब पात्रों के व्यसन और अभ्युदय की तुलना में सर्वाधिक व्यसन और अभ्युदय का भागी होता है। अत: प्रधान नायक राम हैं। सुग्रीव विभीषण नहीं।"[3]

----

१. नाट्यशास्त्र की भारतीय परम्परा और दशरूपक, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृथ्वीनाथ द्विवेदी, प्रथम संस्करण, १९६३, पृ० ४७

२. तथा पुरुषमाहुस्तं प्रधानं नायकं बुधा: ।
यत्रानेकस्य भवतो व्यसनाभ्युदयौ पुन: ।। २३।।
सपुष्टौ यत्र तौ स्यातां न भवेत्तत्र नायक: ।।
एतास्तु नायिका ज्ञेया नाना प्रकृति लक्षणा: ।। २४ ।।
—नाट्यशास्त्रम् चतुर्विंशोऽध्याय:, पृ० २५२

३. भरत और भारतीय नाट्यकला- डॉ० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, प्रथम संस्करण, १९७०, पृ० १९०

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ सर्गबद्ध रचना को महाकाव्य मानते हैं जिसका नायक कोई देवता अथवा धीरोदात्तादि गुणों से युक्त सद्वंशी क्षत्रिय हो ।[१] आचार्य विश्वनाथ के अनुसार - नायक वह है जो त्यागी, महान कार्यों का कर्ता, कुलीन, वैभव से सम्पन्न , रूपवान्, युवा, उत्साही, कलाओं का ज्ञाता, एवं उद्योगशील ,लोकप्रिय, तेजस्वी, वैदग्ध्य एवं शील आदि गुणों से युक्त हो ।[२] हिन्दी नाट्य दर्पण में नायक की परिभाषा इस प्रकार मिलती है - प्रधान फल सम्पन्नोऽव्यसनी मुख्य नायक: (७)१६०।।[३] धनंजय, शारदातनय तथा रामचन्द्र का मत है - नायक उदात्त चरित्र वाले देवता और दानव होते हैं, किन्तु विश्वनाथ ने धीरोदात्त नायक देवता और मनुष्य माना है ।[४]

---

१. सर्ग बन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायक: सुर: ।
सद्वंश: क्षत्रियोवापि धीरोदात्त: गुणान्वित: ।। ६-३१५-३१६

साहित्य दर्पण-विश्वनाथ (डॉ० सत्यव्रत सिंह), पृ० ५४६-५५०

२. त्यागी कृती कुलीन: सुश्रीको रूप यौवनोत्साही
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजो वैदग्ध्य शीलवान्नेता ।। ३-३० ।।

हिन्दी साहित्य दर्पण, विश्वनाथ,डॉ० सत्यव्रत सिंह,पृ०१३८

३. हिन्दी नाट्य दर्पण, प्रधानसम्पादक,डॉ० नगेन्द्र, पृ० ३७२ ,चतुर्थविवेक

४. नाट्य समीक्षा, दशरथ ओझा, पृ० २५,प्रथम संस्करण ।

महाकाव्य के नायक की चर्चा करते हुए एम० डिक्सन महोदय लिखते हैं —

"उदाहरणार्थ महाकाव्य में प्राय: एक वीर नायक का चित्रण रहता है। यह इसलिए है कि इस प्रकार के काव्य में व्यक्तित्व की अपेक्षा राष्ट्रीय दृष्टिकोण रहता है। नायक किसी देश अथवा विशिष्ट उद्देश्य का प्रतिनिधित्व करता है, जिसकी सफलता उसकी सफलता में सन्निहित रहती है, उसकी पराजय में उसकी मात्र क्षति होती है।"[1]

एमर्सन महोदय का कथन है — "प्रत्येक व्यक्ति नायक है और दूसरों के लिये उसका कथन भगवद् वाक्य के समान है।[2]

लेसिंग भी राजा राजकुमार तथा भद्र नायकों की अपेक्षा साधारण व्यक्ति के चित्रांकन को अधिक महत्व देते हैं।[3]

अरस्तू के मत में —ऐसा व्यक्ति जो अत्यन्त सच्चरित्र और न्याय परायण तो नहीं है, फिर भी जो अपने दुर्गुण या पाप के कारण नहीं वरन् किसी कमजोरी या भूल के कारण दुर्भाग्य का शिकार हो जाता है वह व्यक्ति अत्यन्त विख्यात एवं समृद्ध होना चाहिये,जैसे —

---

१. एम०डिक्सन, इंगलिश एपिक एण्ड हीरोइक पोइट्री, पृ० २१

२. वेबस्टर्स न्यु एण्ड इन्टरनेशनल डिक्शनरी ।। एडीशन, पृ० ११६८-९

३. द हम्बर्ग ड्रामेटरजी, पृ० ११६७-६८

ओहादिपूस, थ्युएस्तेस अथवा ऐसा ही कोई अन्य कुलीन पुरुष[1]।

डॉ० दशरथ ओझा अरस्तु के नायक की परिभाषा देते हुए कहते हैं — जिस पात्र की अभिव्यक्ति नाटक में अत्यधिक हो वही नायक या हीरो है।[2]

गोविन्ददास ने अरस्तू के नायक सम्बन्धी विचारों को स्पष्ट करते हुए अरस्तु का मत दिया है —

"वह ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो अत्यन्त नामांकित समृद्ध-शाली हो।"[3]

बच्चन सिंह ने अरस्तू का मत इस प्रकार दिया है —

"ऐसा व्यक्ति जो सच्चरित्र और न्याय परायण तो नहीं है फिर भी जो अपने दुर्गुण और पाप के कारण नहीं, वरन् अपनी कमज़ोरी या भूल के कारण दुर्भाग्य का शिकार हो जाता है, यह व्यक्ति अत्यन्त विख्यात एवं समृद्ध होना चाहिए।"[4] इससे स्पष्ट है कि अरस्तु का आदर्श नायक एक विशेष प्रकार का होना चाहिए।[5]

---

१. अरस्तू का काव्यशास्त्र(अनुवाद- डॉ० नगेन्द्र)(अनुवाद भाग), पृ०११२
२. हिन्दी नाटक की रूपरेखा, दशरथ ओझा, पृ० ८६
३. हिन्दी नाट्य कला मीमांसा, डॉ० गोविन्ददास, पृ० २३
४. हिन्दी नाटक, बच्चन सिंह, पृ० २४५-२४६
५. वही, पृ० २४५-२४६

इस तरह से अरस्तु का नेता भरत मुनि के नेता से बहुत कुछ मिलता जुलता है ।

हॉरेस का कथन है —

"उसका चरित्र अपरिवर्तनीय होना चाहिये जैसा वह प्रारम्भ में निरूपित किया जाए अन्त तक वही रूप होना चाहिये ।"[1]

"देवताओं को उस नाटक में तब तक नहीं होना चाहिये जब तक कोई ऐसी कठिनाई न उपस्थित हो जाए, जिसे पूरा करने के लिये उन्हें स्थान देना अनिवार्य हो ।"[2]

शेक्सपियर के नायकों में कुछ विशेष गुण होते हैं । श्रेष्ठ वंश के व्यक्ति होने के अतिरिक्त वे असाधारण श्रेणी के व्यक्ति हैं तथा उनमें असाधारण सहनशक्ति रहती है । इससे यह मतलब नहीं कि वे महान् पुण्यात्मा हैं परन्तु वे साधारण मनुष्यों के सभी गुणों को रखते हुए भी उनसे कुछ पृथक् होते हैं । उनमें वे साधारण गुण होते हैं जो हममें हैं परन्तु कलाकार की कल्पना शक्ति के कारण वे सदैव एक उच्च स्तर पर रहते हैं ।[3]

भिखारी दास ने 'शृंगार निर्णय' में नायक की परिभाषा इस प्रकार दी है —

---

१. नाट्यकला मीमांसा, डॉ० गोविन्ददास, पृ० २७

२. ,, ,, ,,

३. नाटक की परख, सूरजप्रसाद खत्री, पृ० ३८

"तरुन सुघड़, सुन्दर सुचित, एवं सहृदय व्यक्ति नायक कहलाता है[१]।"

केशवदास ने नायक के लक्षण बताते हुए नायक की परिभाषा दी है —

अभिमानी, त्यागी तरुन, लोककलानि प्रवीन
भव्य क्षमी सुन्दरधनी, सुचि रुचि सदा कुलीन ।।

ये गुन केशव जासु में, सोई नायक जानि ।। २।२ [२]

डॉ० दशरथ ओझा ने हिन्दी ब नाटक की रूपरेखा में नायक की परिभाषा को स्पष्ट करते हुए बताया है कि —

"नायक वह पात्र होता है जिस पर नाटककार का ध्यान सबसे अधिक रहता है। [३]"

डॉ० सुषमा पाल मल्होत्रा का कथन है कि — 'नाटक का प्रधान पात्र नायक कहलाता है।[४]

"नाटकशास्त्र की भारतीय परम्परा और दशरूपक में कहा गया है कि —— "नेता या नायक कथावस्तु का नियन्त्रण रखता है।" [५]

~~गोविन्द चातक, जगदीशचन्द्र माथुर के पात्रों की चर्चा करते~~ हुए कहते हैं —

---

१. तरुन सुघड़ सुन्दर सुचित, नायक सुहृद् बखानि ।
—शृंगार निर्णय, भिखारीदास, पृ० २

२. रसिक प्रिया, केशवदास, पृ० ११
(द्वितीय प्रभाव)

३. हिन्दी नाटक की रूपरेखा-डॉ० दशरथ ओझा एवं गुरुप्रसाद, कपूर, पृ०८६

४. प्रसाद के नाटक तथा रंगमंच, डॉ० सुषमा पाल मल्होत्रा, पृ० २६

५. नाट्यशास्त्र की भारतीय परम्परा और दशरूपक, हजारी प्रसाद द्विवेदी

गोविन्द चातक, जगदीशचन्द्र माथुर के पात्रों की चर्चा करते हुए कहते हैं –

"नाटककार अपनी सारी शक्तियों तथा उपकरणों को केवल नायक के चित्रण में नहीं लगा देता – न तो ही नायक का चरित्र इतनी ऊँचाइयों को छूता है कि वह विशिष्ट लगे और न सामान्य पात्र इतना साधारण दीखता है कि उसकी भूमिका नगण्य प्रतीत हो।"[1]

यहाँ विचारणीय है कि यदि नायक में कुछ विशिष्टताएँ न होंगी तो वह नायक क्यों माना जाएगा, वह भी साधारण पात्रों में सम्मिलित कर लिया जायगा।

विष्णुकुमार त्रिपाठी का कथन है – कुशल अभिनेता वही है जो कम से कम अंग संचालन और कम से कम बोल कर भी अधिक से अधिक प्रभावशाली अभिनय कर सके।[2]

डॉ० गोविन्ददास नाटक के नायक के विषय में कहते हैं – "उसे व्यक्ति न हो कर टाइप होना चाहिये। किसी विचारधारा वर्ग अथवा जीवनदर्शन को तभी उसमें सामर्थ्य और शक्ति आ सकती है।"[3]

---

१. नाटककार जगदीशचन्द्र माथुर, गोविन्दचातक, १९७३, पृ० ९८

२. नाटक के तत्व सिद्धान्त और समीक्षा, विष्णुकुमार त्रिपाठी, पृ० १६५

३. नाट्यकला मीमांसा, डॉ० गोविन्ददास, पृ० २७

डॉ० रामकुमार वर्मा के अनुसार –

"नायक में किन्ही विशिष्ट गुणों की आवश्यकता नहीं है वह किसी भी परिस्थिति का मनुष्य मात्र हो।"[1]

नाटक का नायक विश्व का कोई भी व्यक्ति हो सकता है।[2]

श्री गुलाबराय के अनुसार –

"जो कथा को फल की ओर ले जाता है वही नेता होता है।"[3]

डॉ० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित के कथन के अनुसार –

"प्रधान पात्र का चरित्र उदात्त और धीर हो, अनुकरणीय हो, जिसका पर्यावसान दु:ख में नहीं सुख में हो।"[4]

श्री सीताराम चतुर्वेदी नायक के विषय में कहते हैं –

"बहुत से पुरुषों का जो अग्रणी हो, उसे नायक कहते हैं। उनमें भी जो नायक विपत्ति और अभ्युदय में सुख का अनुभव करता हो, और दोनों अवस्थाओं में अपनी श्रेष्ठता बनाए रखता हो, वही नायक कहा जा सकता है[5]।"

---

१. आधुनिक हिन्दी नाट्यकारों के नाट्य सिद्धान्त, डॉ० निर्मला हेमन्त, पृ०२४६

२. ,, ,, ,, ,,

३. हिन्दी नाट्य विमर्श, गुलाबराय, पृ० ३२

४. भरत और भारतीय नाट्यकला, डॉ० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, पृ० १९८

५. अभिनव नाट्य शास्त्र, सीताराम चतुर्वेदी, प्रथम संस्करण, सं० २००८

प्रो० हरीराम तिवारी नायक की चर्चा करते हुए कहते हैं —

"चरित्रों के चुनाव में बड़ी सतर्कता बरतनी होती है। एक बार यदि किसी पात्र का सृजन कर दिया गया तो अन्त तक उसका निर्वाह होना चाहिये। पात्र खलनायक हो अथवा साधु इसका कोई प्रश्न नहीं है। बात तो यह है उसे जिस वातावरण में उत्पन्न किया गया है उसका निर्वाह कहाँ तक हुआ है यह देखना है। यदि पात्र देवता है, तो उसे देवता बनने का और यदि वह राक्षस है तो उसकी राक्षसी प्रवृत्ति हो जाने का पूरा प्रमाण उपस्थित हो जाना चाहिये। वस्तुत: यह ध्यान रखना चाहिए कि मनुष्य जन्म से देवता या राक्षस नहीं हुआ करते। परिस्थितियाँ उसका निर्माण करती हैं। अत: पात्रों के चरित्र के विकास में इसका ध्यान रखना आवश्यक है।[१]

डॉ० भोलानाथ के अनुसार —

"नायक या तो इतिहास प्रसिद्ध कोई राजा महाराजा होता है या कोई पौराणिक व्यक्तित्व। सामान्य व्यक्ति को किसी नाटक का नायक बनाने की बात हिन्दी के नाटककार सोच भी नहीं सकते।"[२] इसके अतिरिक्त भोलानाथ कहते हैं —

"हमारे प्राचीन नाटकों में नायक की पराजय कभी भी नहीं दिखाई जाती। वह कितनी ही लोमहर्षक स्थिति से घिरा हो, किन्तु

---

१. "साहित्य सर्वस्व", प्रो० हरीराम तिवारी, पृ० १३-१४

२. हिन्दी साहित्य, डॉ० भोलानाथ, द्वितीय संस्करण, पृ० ६४

अन्त में उसकी विजय होगी । उसकी विजय ही नहीं दिखाई जाती वरन् महात्मा और देवतागण उस पर फूलों और आशीर्वादों की वर्षा करते भी दिखाए जाते हैं ।"[1]

राजेन्द्रकृष्ण भनोत का कथन है —

"प्रत्येक वह व्यक्ति जो जीवन को संघर्ष मानता है, नाटक का नायक हो सकता है ।"[2]

उपर्युक्त समस्त परिभाषाओं पर विचार करने के बाद यह कहा जा सकता है कि नायक अथवा प्रमुख पात्र में निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं :—

१. नाटक के प्रधान पात्र को नायक कहते हैं ।
२. नायक इतिहास प्रसिद्ध कोई राजा, महाराजा होता है या कोई पौराणिक व्यक्तित्व ।
३. समस्त धीरोदात्तादि गुणों से युक्त पात्र ही नाटक का नायक हो सकता है ।
४. नायक की निश्चित विजय होनी चाहिये ।
५. नाटक में नायक का चरित्र अपरिवर्तनीय होना चाहिए ।

---

१. हिन्दी साहित्य, डॉ० भोलानाथ, द्वितीय संस्करण, १९७१, पृ० ६४
२. हिन्दी नाटक में नायक का स्वरूप, डॉ० राजेन्द्रकृष्ण भनोत, पृ० १४

२.

नाटक के प्रधान पात्र को नायक कहते हैं। इस तथ्य को सभी आचार्य स्वीकार करते हैं।

सभी संस्कृत के नाट्याचार्य नायक को विख्यात अथवा कुलीन, उसको होना अनिवार्य मानते हैं। इस तरह इनके अनुसार उच्च कुल में उत्पन्न पात्र ही नाटक में नायक का स्थान ग्रहण कर सकता है।

पाश्चात्य विद्वान् यद्यपि नायक को उच्च कुल का होना आवश्यक मानते हैं तथापि वे साधारण कुल के व्यक्ति को भी नायक का स्थान देते हैं। वह साधारण व्यक्ति होते हुए भी कलाकार की प्रतिभा [illegible] के कारण सदैव एक उच्च स्तर पर रहता है। [illegible] के द्वारा कहे हुए कथन से भी इस बात की पुष्टि होती है।

आधुनिक युग के नाटक के आचार्य इस मत के सन्दर्भ में अपने भिन्न-भिन्न विचार प्रस्तुत करते हैं।

डॉ० भोलानाथ नाटक में उसी नायक को स्थान देते हैं जो इतिहास प्रसिद्ध और राजा महाराजा हो। आज की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ऐसा सम्भव नहीं है। आज नाटककार साधारण से साधारण व्यक्ति को नायक का स्थान देने के लिये तैयार है। अतः भोलानाथ का यह कहना कि सामान्य व्यक्ति को नायक का स्थान देने के लिये हमारे नाटककार सोच भी नहीं सकते, गलत सिद्ध हो जाता है।

आज की परिस्थितियाँ बदल गई हैं। आज के नाटककार निम्न से निम्न, वर्ग के पात्र को भी नायक बनाना स्वीकार करते हैं। आधुनिक नाटक के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति नायक बनने का अधिकारी है चाहे वह गरीब, मज़दूर, कृषक, अथवा क्लर्क ही क्यों न हो।

सभी आचार्य यह स्वीकार करते हैं कि समस्त पात्रों में जो पात्र कुछ विशिष्टताओं के साथ अवतरित होता है वही नाटक का नायक होता है।

भरत, धनंजय, विश्वनाथ आदि सभी आचार्यों ने नायक का धीरोदात्तादि गुणों से युक्त होना अनिवार्य माना है।

पाश्चात्य विद्वान्, अरस्तू, हौरेस, शेक्सपियर आदि भी नायक को उच्च गुणों से युक्त मानते हैं। इनके अनुसार यद्यपि नायक साधारण मनुष्यों की भाँति साधारण गुणों से युक्त होता है, परन्तु कलाकार की कल्पना शक्ति के द्वारा वह सदैव एक उच्च स्तर पर ही रहता है। भिखारीदास ने नायक को सुन्दर सुचित, सहृदय बताया है।

आधुनिक नाटककार डॉ० रामकुमार वर्मा ने उपर्युक्त मत का खण्डन किया है। इनकी दृष्टि में गुणों से विहीन पात्र भी नायक बनने का अधिकारी है।

डॉ० जगदीशचन्द्र माथुर भी नायक में किन्हीं विशिष्टताओं की अपेक्षा नहीं करते।

परन्तु सुरेन्द्रनाथ दीक्षित नायक को उदात्त और धीर होना अनिवार्य मानते हैं। इस तरह सभी आचार्य इस सम्बन्ध में अपने भिन्न-भिन्न विचार प्रस्तुत करते हैं।

नाटक में नायक का चरित्र अपरिवर्तनीय होना चाहिये। इस सम्बन्ध में संस्कृत के नाट्याचार्यों ने कोई व्यवस्था नहीं दी है। पाश्चात्य विद्वान् होरेस इस मत का समर्थन करते हैं। इनके अनुसार नायक जो रूप नाटक के प्रारम्भ में हो वही रूप नाटक के अन्त तक होना चाहिए।

डॉ० गोविन्ददास ने उपर्युक्त मत की कटु आलोचना की है। उनका कथन है "मैं इस मान्यता से पूर्णतः असहमत होने में स्वयं को असमर्थ पाता हूँ। विभिन्न शक्तिशाली परिस्थितियों से प्रतिक्रियान्वित हो कर उसके चरित्र में अन्तर ही नहीं वरन् परिवर्तन भी हो सकते हैं। कल्पना कीजिये किसी नाटक का नायक कुख्यात डाकू अंगुलीमाल है। स्पष्ट है कि प्रारम्भिक दृश्यों में वह नृशंस व्यक्ति के रूप में चित्रित किया जाएगा, किन्तु तथागत के सन्दर्भ में आने पर उसकी जीवन की दिशा बदल जाती है और वह एक विनम्र सज्जन पुरुष बन जाता है। तो क्या उस नाटक में परिवर्तित अंगुलीमाल के लिये कोई जगह न होगी?"[१]

आधुनिक हिन्दी नाट्याचार्य हरिराम तिवारी होरेस की मान्यता को स्वीकार करते हैं।

यदि नाटक में नायक किन्हीं विशिष्टता के साथ अवतरित नहीं होता, समयानुकूल अपनी परिस्थितियों से लड़ कर अपने व्यक्तित्व में कुछ विशिष्टता लाता है तो उपर्युक्त आचार्यों के अनुसार नाटक में नायक का

---

१. नाट्यकला मीमांसा, डॉ० गोविन्ददास, पृ० २७

स्थान उसे नहीं प्राप्त होगा, क्योंकि उसके चरित्र में परिवर्तन हो गया । उनके अनुसार यदि नायक दुष्ट प्रवृत्ति का है तो उसे अन्त तक दुष्ट प्रवृत्ति का ही होना चाहिये । यदि नायक उत्तम प्रवृत्ति का है तो आदि से अन्त तक उसे उत्तम ही होना चाहिये । यह बात आज के युग में सम्भव नहीं है ।

नाटक में कई ऐसी परिस्थितियाँ आ सकती हैं जहाँ नायक का रूप परिवर्तित होना आवश्यक हो जाता है ।

यदि नायक के चरित्र में उतार चढ़ाव न लक्षित होगा तो नाटक में कौतूहल न आएगा वह नीरस हो आएगा अतः नाटक को मनोरंजक बनाने के लिये नायक के रूप में परिवर्तन होना अनिवार्य है ।

इस प्रकार पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाता है कि नाटक में नायक का रूप परिवर्तन होना आवश्यक है ।

उपर्युक्त सभी कथनों से स्पष्ट है कि नायक की प्राचीन परिभाषाएँ आज की युग स्थिति को देखते हुए ठीक नहीं हैं । आज नायक का विधान बदल गया है । अब उसका उच्च कुल में जन्म लेना, धीरोदात्तादि गुणों से युक्त होना अनिवार्य नहीं है ।

अतः नाटक का नायक विश्व का कोई भी मनुष्य हो सकता है ।

नायक के प्रकार —

भरत ने नायक-भेद का उल्लेख किया है[1]। उन्होंने प्रकृति भेद से तीन प्रकार के पुरुष माने हैं —

१. उत्तम,

२. मध्यम,

३. अधम।[2]

इन तीनों का अलग-अलग विवेचन किया है। उत्तम की परिभाषा देते हुए कहते हैं —

"जो जितेन्द्रिय, ज्ञानवान्, नाना प्रकार के शिल्पों में कुशल सबको प्रसन्न करने वाला, ऐश्वर्यशाली, दीन-हीन व्यक्तियों को सान्त्वना देने वाला, अनेक शास्त्रों का मर्म जानने वाला, गम्भीर, उदार, धैर्य, त्याग आदि गुणों से युक्त होते हैं वे उत्तम प्रकृति के पुरुष कहलाते हैं।[3]

---

१. नाट्यशास्त्र के २४ वें अध्याय में भरत ने नायक भेद का उल्लेख किया है।

२. समासतस्तु प्रकृतिस्त्रिविधा परिकीर्तिता ।।
पुरुषाणामथ स्त्रीणामुत्तमाधममध्यमा ।।१।।
—नाट्यशास्त्रम्, चतुर्विंशोऽध्यायः, पृ० २४८

३. जितेन्द्रियज्ञानवती नानाशिल्पविचक्षणा ।।
दक्षिणाढ्यमहालक्ष्या भीतानां परिसान्त्वनी ।।२।।
नानाशास्त्रसम्पन्ना गाम्भीर्यौदार्यशालिनी ।।
स्थैर्यत्यागगुणोपेता ज्ञेया प्रकृतिरुत्तमा ।।३।।
—वही, वही, पृ० २४८

जो लोक व्यवहार में कुशल, शिल्पशास्त्र के ज्ञाता विज्ञान युक्त तथा व्यवहार में मधुर होते हैं, वे मध्यम प्रकृति के पुरुष कहे जाते हैं।[१] और जो रूखा बोलने वाले, दु:शील, दुष्ट, मन्द बुद्धि, क्रोधी, हिंसक, मित्र-घाती, अनेक कौशलों से प्राण लेने वाले, परनिन्दा करने वाले, अभिमानी, उद्दण्ड, कृतघ्न, आलसी, मान्य का अपमान करने वाले, स्त्रियों के पीछे फिरने वाले, कलह प्रिय, दूसरों के दोष ढूंढने वाले, पाप कर्म करने वाले दूसरों की सम्पत्ति का हरण करने वाले होते हैं वे अधम प्रकृति के कहलाते हैं[२]।

----

१. लोकोपचार चतुरा शिल्पशास्त्र विशारदा ।
विज्ञान माधुर्ययुता मध्यमाप्रकृति: स्मृता ।।४।।

—नाट्यशास्त्रम् चतुर्विंशोऽध्याय:, पृ० २४६

२. रूक्षवाचोऽथ दु:शीला कुसत्वा: स्थूलबुद्धय: ।
क्रोधना घातकाश्चैव मित्रघ्नाश्छिद्रमानिन: ।।५।।
पिशुनास्तूद्धत वाक्यैरकृतज्ञास्तथालसा: ।
मान्यामान्याविशेषज्ञा: स्त्रीलोला: कलहप्रिया: ।।
सूचका: पापकर्माणा: परद्रव्यापहारिणा: ।।
९भिर्दोषैस्तु सम्पन्ना भवन्तीहाधमा नरा: ।। ७।।

— वही, वही, पृ० २४६-२५०

शील-गुण स्वभावादि की दृष्टि से उन्होंने चार भेद माने हैं -

१. धीरोद्धत,
२. धीरललित,
३. धीरोदात्त,
४. धीर प्रशान्त ।[१]

देवता धीरोद्धत होते हैं, राजा लोग धीर ललित, सेनापति और अमात्य धीरोदात्त तथा ब्राह्मण और वैश्य लोग धीरप्रशान्त होते हैं ।[२]

भरत और भारतीय नाट्यकला में सुरेन्द्रनाथ दीक्षित ने यह बताया है कि — "भरत ने चार प्रकार के नायक बताए हैं चारों का आधार उनकी सामाजिक स्थिति तथा स्वभाव है । विविध प्रकार के नायक अपने शील और प्रकृति के आधार पर उदात्त, ललित, प्रशान्त और उद्धत होते हैं पर वे धीर अवश्य होते हैं । चारों प्रकार के नायकों की सामान्य गरिमा 'धीरता' ही है । कोई भी नायक ललित उदात्त और प्रशान्त आदि शील सम्प्रदायों में से किसी एक से विभूषित हो सकता है, पर प्रत्येक नायक का धीर होना अनिवार्य है ।"[३]

---

१. अत्र चत्वार एव स्युर्नायकाः परिकीर्तिताः ।
मध्यमोत्तमभावा प्रकृतौ नानालक्षणलक्षिताः ।।१६।।
धीरोद्धता धीरललिता धीरोदात्तास्तथैव च ।
धीर प्रशान्तकाश्चैव नायकाः परिकीर्तिताः ।।१७।।
—नाट्यशास्त्रम्, चतुर्विंशोऽध्यायः, पृ० २५१

२. देवा धीरोद्धता ज्ञेयाः स्युर्धीरललिता नृपाः ।
सेनापतिरमात्यश्च धीरोदात्तौ प्रकीर्तितौ ।।१८।।
धीरप्रशान्ता विज्ञेया ब्राह्मणा वणिजस्तथा । —वही, वही, पृ०२५१-५२

नारी के प्रति रतिभावना की दृष्टि से भरत पांच प्रकार के पुरुष बताते हैं —

१. चतुर,

२. उत्तम,

३. मध्यम,

४. अधम,

५. सम्प्रवृत्त ।

(भय और क्रोध की चिन्ता न करने वाला, कामतंत्र में निर्लज्ज होता है[1])

'सामान्याभिनय प्रकरण' में प्रेमावेश जन्य सम्बोधनों के आधार पर सात प्रकार के पुरुषों का उल्लेख किया है —

१. प्रिय,

२. कान्त,

३. विनीत

४. नाथ,

५. स्वामी

६. जीवित

७. नन्दन ।[2]

---

१. चतुरोत्तमा तु मध्यस्तथा च नीच: प्रवृत्तकश्चैव ।
   स्त्रीसंप्रयोगविषये ज्ञेया: पुरुषास्त्वमी पंच : ।। ५३।।

—नाट्यशास्त्रम्, त्रयोविंशोऽध्याय:, पृ० २४२

२. (अगले पृष्ठ पर देखें)

इसी प्रकरण के अन्तर्गत उन्होंने क्रोधावेशजन्य सम्बोधनों के आधार पर भी सात प्रकार के पुरुषों का वर्णन किया है —

१. दुश्शील,
२. दुराचार,
३. शठ ~~[illegible]~~,
४. विकत्थन,
५. निर्लज्ज,
६. वाम,
७. निष्ठुर ।[1]

~~वात्स्यायन भावभंजना की दृष्टि से पुरुषों के तीन भेद स्वीकार करते हैं~~ :—

पिछले पृष्ठ का शेष —

२. समागमेऽथ नारीणां वाच्यानि मदनाश्रये ॥३०१॥

प्रियेषु वचनानीह यानि तानि निबोधत
प्रियः कान्तो विनीतश्च नाथः स्वाम्यथ जीवितम्
नन्दनश्चेत्यभिप्रीते वचनानि भवन्ति हि ॥३०४॥

—नाट्यशास्त्रम्, द्वाविंशोऽध्यायः, पृ० २२६

---

१. दुःशीलोऽथ दुराचारः शठोऽवामो विकत्थनः ॥
निर्लज्जो निष्ठुरश्चैवाप्रियः क्रोधेऽभिधीयते ॥३०४॥

— वही, वही, वही ।

वात्स्यायन कामोत्तजना की दृष्टि से पुरुषों के तीन भेद स्वीकार करते हैं —

मन्दवेग पुरुष, मध्यवेग पुरुष, चण्डवेग पुरुष। वात्स्यायन का यह वर्गीकरण यौन भावना या रति, पर आधारित है।[1]

इसके अतिरिक्त वात्स्यायन ग्रन्थों की अधिकता व न्यूनता के अनुसार नायक अथवा नागर के तीन भेद करते हैं —

१. उत्तम,

२. मध्यम,

३. अधम।[2]

जाति भेद के अनुसार वात्स्यान नायक के ३ भेद करते हैं :—

गुप्त इन्द्रिय के प्रमाण से —

१. शश,

२. वृष,

३. अश्व।[3]

----

१. यस्य संप्रयोगकाले प्रीतिरुदासीन वीर्यमल्पं क्षतानि च न सहते स मन्दवेगः ॥

कामसूत्र, प्र० भा०, वा० २।१।५॥ पृ० २२६

२. तद्विपर्यये मध्यमचण्डवेगौ भवतः। तथा नायिकाऽपि ॥२।६॥

एक एवतु सार्वलौकिको नायकः। प्रच्छन्नस्तु द्वितीयः।

विशेषलाभात्। उत्तमाधममध्यमतां तु गुणागुणतो विद्यात्।

तांस्तूभयोरपि गुणागुणान्वैशिके वक्ष्यामः ॥ १।५।२८

कामसूत्र, वही, वही, पृ० २००

३. शशो वृषोऽश्व इति लिङ्गतो नायकविशेषाः ।२।१।१।

—कामसूत्र, प्रथम भाग, वात्स्यायन, पृ० २१६

अग्नि पुराण में नायक-भेद का वर्णन नाट्यशास्त्र की तरह ही हुआ है। इसमें भी नायक चार प्रकार के माने गये हैं —

१. धीरोदात्त,
२. धीरोद्धत ,
३. धीर ललित ,
४. धीरप्रशान्त ।

इन भेदों के फिर चार उपभेद किये गये हैं[1], जो इस प्रकार हैं :—

१. अनुकूल, ~~दक्षिण~~,
२. दक्षिण
३. शठ और
४. धृष्ट ।

धनंजय भरत की तरह नायक के चार भेद बतलाते हैं :—

१. धीरललित
२. धीरशान्त,
३. धीरोदात्त और
४. धीरोद्धत ।[2]

---

१. आलम्बन विभावोऽसौ नायकादिभवस्तथा
धीरोदात्तो धीरोद्धत: स्याद्धीरललितस्तथा ।।३-३७ ।।
धीर प्रशान्तकस्तथैव चतुर्थानायक: स्मृत: ।
अनुकूलो दक्षिणाश्च शठो धृष्ट: प्रवृत्ति: ।।३-३८।।

— अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, रामलाल वर्मा,पृ० ४४

२. (अगले पृष्ठ पर देखें)

धीरललित नायक निश्चिंत प्रकृति का, नृत्य, गीत आदि कलाओं में रुचि रखने वाला होता है।[1] धीरशान्त नायक नायकोचित सामान्यगुणों से युक्त रहता है। वह ब्राह्मण आदि में से होता है।[2]

धीरोदात्त नायक, महासत्त्व, गम्भीर, क्षमावान, आत्मश्लाघा-हीन स्थिर, निगूढ़, अहंकार वाला, तथा दृढ़व्रती होता है।[3]

धीरोद्धत नायक दर्प तथा मात्सर्य से युक्त, माया, कपट, अहंकार, चंचलता क्रोध आदि से युक्त होता है।[4]

पिछले पृष्ठ का शेष –

२. भेदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्धतैरयम्

— दशरूपक, धनिक धनंजय, व्याख्याकार भोलाशंकर व्यास, पृ०७७

----

१. निश्चिन्तो धीरललित: कलासक्त: सुखीमृदु: ।।

—वही, वही, वही, पृ० ७७

२. सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तोद्विजादिक:

—वही, वही, वही, पृ० ७८

३. महासत्त्वोऽतिगम्भीर: क्षमावानविकत्थन: ।

स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रत: ।।

— वही, वही, वही, पृ० ७६

४. दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाछद्मपरायण: ।

धीरोद्धतस्त्वहंकारी चलश्चण्डो विकत्थन: ।।

वही, वही, वही पृ० ८३

शृंगार की दृष्टि से धनंजय नायक के चार भेद स्वीकार करते हैं —

१. दक्षिण

२. शठ,

३. धृष्ट,

४. अनुकूल ।[१]

भरत की तरह धनंजय भी नायक के ३ और रूप स्वीकार करते हैं —

१. ज्येष्ठ (उत्तम),

२. मध्यम,

३. अधम ।[२]

नायक का यह वर्गीकरण गुणों की संख्या में आधिक्य अथवा कमी के आधार पर न होकर गुणों के विशिष्ट तारतम्य के आधार पर किया गया है, क्योंकि हर नायक में गुणों का होना तो अनिवार्य ही है, परन्तु उसके वैशिष्ट्य

---

१. स दक्षिणः शठो धृष्टः पूर्वां प्रत्यन्यया हृतः ।। २-६ ।।
दक्षिणोऽस्यां सहृदयः गूढविप्रियकृच्छठः ।
व्यक्ताङ्गवैकृतो धृष्टोऽनुकूलस्त्वेकनायिकः ।। २-७ ।।

—वही, वही, वही, पृ० ८५-८८

२. ज्येष्ठमध्याधमत्वेन सर्वेषां च त्रिरूपता ।। २-८५ ।।
तारतम्याद्यथोक्तानां गुणानां चोभयात्मिका ।

—वही, वही, वही, पृ० १३०

अनुपात-भेद के आधार पर ही उत्मादि वर्गीकरण किया जाता है । नायक प्रकरण में धनंजय नायक का प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न होना राजर्षि, एवं धीरोदात्त प्रकृति का होना तथा प्रतापी बताते हैं, साथ ही इन सभी विशेषताओं से युक्त उनके दिव्य होने की ओर भी संकेत करते हैं ।[१]

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ नायक के ४ भेद मानते हैं –

१. धीरोदात्त,

२. धीरोद्धत ,

३. धीरललित,

४. धीर प्रशान्त ।[२]

----

१. अभिगम्यगुणैर्युक्तो धीरोदात्तः प्रतापवान ॥ ३-२२ ॥
कीर्तिकामो महोत्साहस्त्रय्यास्त्राता महीपतिः ।
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्दिव्यो वायत्रनायकः ॥ ३-२३ ॥
तत्प्रख्यातं विधातव्यं वृत्तमत्राधिकारिकम् ।

—दशरूपक, धनिक धनंजय, व्याख्याकार,भोलाशंकर,व्यास ,पृ०१५८

२. धीरोदात्तो धीरोद्धतस्तथा धीरललितश्च ।
धीर प्रशान्तइत्ययमुक्तः प्रथमश्चतुर्भेदः ॥३-३१॥
हिन्दी साहित्य दर्पण, डॉ० सत्यव्रत सिंह, पृ० १३८
~~एषु त्वनेकमहिलासु समरागो दक्षिणः कथितः [illegible]~~
~~कृतागा अपि निःशंक स्तर्जितो पि न लज्जितः ।~~
~~दृ[illegible] मिथ्यावाक्कथितो धृष्टनायकः ॥ ३-३६ ॥~~
~~अनुकूलो एक निरतः, शठो यमेकत्र बद्धभावो यः ।~~
~~दर्शितबहिरनुरागो विप्रियमन्यत्र गूढमाचरति ॥ ३-३ ॥~~

इन चारों नायकों के गुणों का उल्लेख इन्होंने दशरूपक की तरह किया है।

शृंगार प्रबन्ध की दृष्टि से दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल, शठ आदि नायकों के विवेचन में भी साहित्यदर्पणकार धनंजय से प्रभावित ही नहीं वरन् उनका अनुसरण करते हुए दिखाई पड़ते हैं।[1]

इसके अतिरिक्त वे नायक के उत्तम, मध्यम, अधम यह तीन भेद और स्वीकार करते हैं।[2]

विश्वनाथ ने नाटक प्रकरण में नायक के तीन और भेद —

१. दिव्य,

२. अदिव्य,

३. दिव्यादिव्य

किये हैं।[3] दिव्य से उनका अभिप्राय देवलोक वासी किसी देवता से है।

----

१. एषु त्वनेकमहिलासु समरागो दक्षिण: कथित: ।। ३-३५
कृतागाऽपि नि:शंक स्तर्जितोऽपि न लज्जित: ।
दृष्टदोषोऽपि मिथ्यावाक्कथितो धृष्टनायक: ।। ३-३६
अनुकूल एकनिरत:, शठोऽयमेकत्रबद्धभावो य: ।
दर्शित बहिरनुरागो विप्रियमन्यत्र गूढमाचरति ।। ३-३७ ।।
—हिन्दी साहित्य दर्पण, डॉ० सत्यव्रत सिंह, पृ० १४२-१४४

२. एषां च त्रैविध्यादुत्तममध्यमाधमत्वेन ।
उक्ता नायकभेदाश्चत्वारिंशत्तथाऽष्टौ च ।। ३-३८ वही, वही, पृ० १४५

३. प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्त: प्रतापवान् ।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मत: ।। ६-९ ।।

— वही, वही, पृ० [illegible]

अदिव्यसे, मृत्युलोक वासी से और दिव्यादिव्य चरित्रों से उनका अभिप्राय राम जैसे व्यक्तियों से जो भगवान होते हुए भी पृथ्वी पर निवास करते हैं।

हिन्दी नाट्यदर्पण में नायक ४ प्रकार के बताए गये हैं —

१. उद्धत,
२. उदात्त,
३. ललित,
४. शान्त।[१]

प्रकृति भेद से वे नायक को ३ भागों में बांटते हैं :—

१. उत्तम,
२. मध्यम,
३. नीच।[२]

---

१. उद्धतोदात्त-ललित-शान्ता धीरविशेषणा:।
वर्ण्या:स्वभावाश्चत्वारो नेतृणांमध्यमोत्तमा : ।। ६।।६

—हिन्दी नाट्यदर्पण, प्रधान सम्पादक नगेन्द्र, पृ० २५

२. उत्तमा मध्यमा नीचा प्रकृतिर्नृस्त्रियोस्त्रिधा।
एकैवापि त्रिधा स्व स्व गुणानां तारतम्यत: ।। ३ ।। १५६ ।।

—वही, वही, पृष्ठ ३६६ चतुर्थ विवेक

शृंगार-प्रकाश में नायक, प्रति नायक, उपनायक , अनुनायक के साथ भोज ने भरत सम्मत धीरोदात्तादि चारों नायकों का उल्लेख किया है । इक्कीसवें प्रकाश का अन्तिम श्लोक इस प्रकार है —

य: एते षोडश प्रोक्ता नायका नायिकाश्रया: ।
तेषां ये धीरमत्त्वादिहेतुजात्यादयो गुणा: ।।
युक्तस्तैरुत्तमव्यस्तैषां पादहात्यातुमध्यम: ।
अर्धहान्या कनिष्ठस्स्यात् नायिकास्वप्ययं विधि: ।।

उदात्तागूढ्यामानास्यादुद्धतामानशालिनी ।
ललिता मध्यमानेह शान्ता निर्मानमानसा ।।
मनसिशयमहास्त्रं शास्त्रसर्वस्वमेतत् ,
निरुपमरमणीयं चेष्टितं नायकानाम् ।।
कथितमथयथावत्तत्काम शृंगारसारं,
पुनरपि तदवस्थावस्थितं वर्णयाम: ।।[१]

भोजक ने गुणानक्रिया से नायकों की संख्या १०४ तक पहुँचा दी ।

भिखारीदास नायक भेद का वर्णन करते हुए कहते हैं :—

---

१. शृंगार प्रकाश, भोज, पृ० ७७६, तृतीय भाग एकविंश प्रकाश ।

अनुकूलो दच्छिन सठी धृष्ठति चौराचार
इक नारी सों प्रेम जिहि सो अनुकूल विचार ।[1]

इसके अतिरिक्त वे नायक को ३ भागों में बाँटते हैं :—

१. साधारण,
२. पति ,
३. उपपति ।[2]

केशवदास ने अपनी 'रसिक प्रिया' में नायक के सामान्य लक्षण देकर नायक के विभिन्न भेदों का उल्लेख किया है —

अभिमानी त्यागी तरुन, लोक कलानि प्रबीन
भव्य क्षमी सुन्दर धनी, सुचि रुचि सदा कुलीन ।। २।१।।

ये गुन केसव जासु में सोई नायक जानि
अनुकूल सठ, दच्छिन, धृष्ट पुनि चौविधि ताहि बखानि[3] ।।२

---

१. शृंगार निर्णय, भिखारी दास, पृ० ४

२. भेद एक साधारनै पति, उपपति, पुनि जानि
—वही, वही, पृ० २

३. रसिक प्रिया , टीकाकार विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, संस्करण २०१५, पृ० ११, द्वितीय प्रभाव ।

अनुकूल, दक्षिण, शठ, धृष्ट, नायकों का विस्तार से उल्लेख किया है।

अकबरसाहे बड़े साहब के शृंगार मंजरी में चार प्रकार के नायक का उल्लेख किया है :-

१. धीरोदात्त,
२. धीर ललित,
३. धीर प्रशान्त,
४. धीरोद्धत

शृंगार के नायक के दक्षिण, शठ, धृष्ट, अनुकूल भेद किये हैं।[१]

इसके अतिरिक्त मानी और चतुर दो और भेद उन्होंने स्वतंत्र रूप से स्वीकार किया है इस तरह से नायक के ६ भेद हो जाते हैं -

१. दक्षिण शठ,
२. शठ
३. अनुकूल,
४. धृष्ट,
५. मानी,
६. चतुर।

---

१. शृंगार मंजरी (नायक भेद) ब्रजभाषा रूपान्तरकार कविचिन्तामणि, सं० डॉ० भागीरथ मिश्र, संस्करण, १९५६, पृ० २५

इन सभी के पति, उपपति, वैशिक ऐसे उपभेद स्वीकार किये हैं।

इसके अतिरिक्त उन्होंने उत्तम, मध्यम, अधम इन तीन भेद का भी उल्लेख किया है। प्रोषित और अभिलाषित नायकों का भी उल्लेख अकबरसाह ने किया है। इसके अतिरिक्त विरही तथा मृदुल, सुकुमार, पांचाल आदि का विभिन्न वर्गों के आधार पर वर्णन किया है।[1]

प्रो० रामचरण महेन्द्र ने नायक तीन प्रकार के बताए हैं। उनके शब्दों में :-

"नायक धर्म और नीति का प्रतीक समाज के सामने आदर्श उपस्थित करने करने वाला धीरोद्धत, धीर प्रशान्त, धीर ललित प्रकार का होता है।"[2]

डॉ० बच्चन सिंह संस्कृताचार्यों के अनुसार नायक के चार भेद बताते हैं -

१. धीर ललित,
२. धीर प्रशान्त
३. धीरोदात्त,
४. धीरोद्धत।

---

१. शृंगार मंजरी (नायक भेद) ब्रजभाषा रूपान्तरकार कविचिन्तामणि, सं० डॉ० भागीरथ मिश्र, संस्करण, १९५६, पृ० ३० और ३१

धीर ललित, कलाओं का प्रेमी, रसिक व्यक्ति होता है। धीर प्रशान्त शान्त प्रवृत्ति का होता है।

धीरोदात्त उच्च कुल का गम्भीर वीर और उदार होता है।

धीरोद्धत अहंकारी दंभी, ईर्ष्यालु और उद्धत होता है।[1]

डा० श्यामसुन्दरदासनेस्वभावभेद से ४ प्रकार के नायक बताए हैं —

१. शांत,

२. ललित,

३. उदात्त,

४. उद्धत।

धीरता का गुण चारों प्रकार के नायक में होना चाहिये। अतएव नायक का स्थान वही पा सकता है जो अपने आपको वश में रख सकता है।

धीरशांत नायक में नायकोचित सामान्य गुण होते हैं। धीर ललित निश्चिंत, कलासक्त, सुखी, मृदुल, स्वभाव का होता है।

धीरोदात्त शोक, क्रोध आदि मनोभावों से विचलित नहीं होता। वह क्षमावान अति गम्भीर स्थिर, और दृढ़व्रती होता है। राम, बुद्ध, युधिष्ठिर आदि उदात्त नायकों में गिने जाते हैं।

धीरोद्धत नायक मायावी, छली, प्रपंची, चपल, असहनशील, अहंकारी, शूर, और स्वयं अपनी प्रशंसा करने वाला होता है जैसे रावण।[2]

----

१. हिन्दी नाटक, बच्चन सिंह, पृ० २८४

२.

इसके अतिरिक्त श्रृंगार के विचार से इन चारों प्रकार के चार चार भेद बताए हैं :--

१. अनुकूल,

२. दक्षिण,

३. शठ ,

४. धृष्ट ।[1]

इन सभी का वे अलग अलग उल्लेख करते हैं ।

डॉ० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित परवर्ती आचार्यों के अनुसार ४ प्रकार के नायक स्वीकार करते हैं ।

१. धीर ललित,

२. धीर शान्त,

३. धीरोदात्त

४. धीरोद्धत ।

धीर ललित कलाप्रिय सुखी कोमल, प्रकृति का, चिन्ता रहित पात्र होता है जैसे रत्नावली का उदयन ।

धीरशान्त नायक महाप्राणता ,गम्भीरता, क्षमाशीलता और लालित्य आदि गौरवशाली गुण गरिमाओं से अलंकृत होता है ।

---

१. रूपक रहस्य , श्यामसुन्दरदास, पृष्ठ ८७ से ९१, तृतीय संस्करण ।

धीरोदात्त महाप्राण अति गम्भीर, क्षमाशाली, स्थिर, अभिमानी आदि भावों को गुप्त रखने वाला दृढ़व्रती, धीरोदात्त नायक होता है।

धीरोद्धत दर्प द्वेषसे भरा अहंकारी, चंचल, क्रोधी तथा आत्मश्लाघी होता है।[1]

सुरेन्द्रनाथ दीक्षित कामप्रवृत्ति के आधार पर नायक के चार शृंगारिक भेद बताते हैं - अनुकूल, दक्षिण, शठ, धृष्ठ।

अनुकूल नायक वह है जो किसी अन्य नायिका के प्रति आसक्त नहीं होता, उसकी एक ही नायिका होती है। जैसे राम की सीता।

दक्षिण नायक अपनी ज्येष्ठा नायिका के प्रति सदय रहता है और दूसरी नायिकाओं से अनुराग होने पर भी पूर्वा के प्रति उदासीनता नहीं प्रदर्शित करता।

शठ नायक अपनी ज्येष्ठा नायिका का लुक छिप कर अहित करता है, और नवीन नायिका से गुप्त प्रेम करता है।

धृष्ठ नायक अपनी ज्येष्ठा प्रेयसी की जानकारी में अपनी नवीन प्रेयसी के साथ मधुर व्यापार करता है।[2]

---

१. भरत और भारतीय नाट्यकला, डॉ० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, प्रथम संस्करण, १९७० ई०, पृ० १९०

२. वही, वही, पृ० १९२

इसके अतिरिक्त सुरेन्द्रनाथ दीक्षित प्रकृति भेद से नायक को तीन भागों में बाँटते हैं :-

१. उत्तम,

२. मध्यम,

३. अधम ।[१]

गुलाबराय भी नायक के चार प्रकार मानते हैं -

१. धीरोदात्त,

२. धीर ललित,

३. धीर प्रशान्त,

४. धीरोद्धत ।

श्रेष्ठता के लिये धीर होना अनिवार्य है जो धीर नहीं है न तो वह वीर हो सकता है ना हीं उसे प्रेमी कहना उचित है। धीरोदात्त बड़ा ही उदार होता है। इसमें शक्ति के साथ क्षमा तथा दृढ़ता आत्म गौरव के साथ विनय और निरभिमानिता होती है। जैसे रामचन्द्र।

धीर ललित बड़े ही कोमल स्वभाव का होता है। यह सुखान्वेषी, कलाविद् और निश्चिंत होता है। जैसे दुष्यन्त।

----

१. भरत और भारतीय नाट्यकला, डॉ० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, प्रथम संस्करण, १९७० ई०, पृ० १९०

धीर प्रशान्त क्षत्री नहीं होते, क्योंकि क्षत्री में सन्तोष नहीं पाया जाता ।

ऐसे नायक अधिकतर ब्राह्मण या वैश्य होते हैं ।

धीरोद्धत ,मायावी, प्रशंसा परायण तथा स्वभाव से प्रचण्ड और चंचल होता है जैसे भीमसेन, मेघनाद ।[1]

गुलाबराय पत्नियों के सम्बन्ध के आधार पर एक विभाजन और करते हैं —

१. अनुकूल,
२. दक्षिण ,
३. धृष्ट,
४. शठ

अनुकूल नायक एक पत्नी वाले को कहते हैं जैसे रामचन्द्र जी ।
शेष नायकों का बहु विवाह की प्रथा से सम्बन्ध है ।

दक्षिण नायक—एक से अधिक पत्नी रखता हुआ भी प्रधान महिषी का आदर करता है ।
धृष्ट नायक—निर्लज्ज होता है । वह प्रधान महिषी का जी दुखाने में नहीं चूकता । और उसकी ताड़ना की भी परवाह नहीं करता ।

शठनायक —इस नायक का प्रेम अन्य स्त्रियों के प्रति प्रकट तो रहता है किन्तु वह निर्लज्ज नहीं होता । [2]

---

१. हिन्दी नाट्य विमर्श, गुलाबराय, पृ० ३३

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृथ्वीनाथ द्विवेदी विशेषगुण की दृष्टि से नायक चार प्रकार के बताते हैं :-

१. धीर ललित,
२. धीर शान्त ,
३. धीरोदात्त ,
४. धीरोद्धत ।

धीर ललित नायक राज्य का सारा भार अपने योग्य मन्त्रियों को सौंप कर चिन्ता रहित होकर कलाओं तथा भोग विलास में प्रवृत्त होता है ।

धीरशान्त नायक सामान्य गुणों से युक्त होता है, इसके पात्र द्विज होते हैं ।

धीरोदात्त महापराक्रमी, अतिगम्भीर क्षमावान, अपनी प्रशंसा स्वयं न करने वाला, स्थिर, अव्यक्त, अहंकारी और दृढ़व्रती होता है ।

धीरोद्धत नायक के अन्दर मात्सर्य की प्रचुरता रहती है । वह माया और छद्म में रत रहता है । अहंकारी चंचल क्रोधी तथा अपनी प्रशंसा स्वयं करनेवाला होता है ।

धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित, धीर शान्त, इन चारों अवस्थाओं के , प्रत्येक के दक्षिण, शठ, धृष्ट और अनुकूल चार-चार भेद और बताए गये हैं । इस प्रकार नायकों की कुल संख्या १६ हो जाती है ।

दक्षिण नायक पहली अर्थात् जेठी नायिकामें हृदय के साथ व्यवहार करती हैं।

शठ नायक छिपे ढंग से दूसरी नायिकाओं से प्रेम करता है।

धृष्ठ नायक के अंग में विकार स्पष्ट लक्षित रहता है। इसके अतिरिक्त अनुकूल नायक एक ही नायिका में आसक्त रहता है।[१]

इस तरह ऊपर नायक के १६ भेद बताए जा चुके फिर इनमें से प्रत्येक के ज्येष्ठ्य, मध्यम, अधम ये तीन तीन भेद होते हैं इस प्रकार से नायक के कुल ४८ भेद हो जाते हैं।[२]

सीताराम चतुर्वेदी ने चार प्रकार के नायक बताए हैं जो मध्यम और उत्तम प्रकृति के अनेक लक्षणों से युक्त होते हैं। ये नायक धीरोद्धत, धीर, ललित, धीरोदात्त, और धीर प्रशान्त कहे जाते हैं। देवता धीरोदात्त होते हैं। राजा धीर ललित होते हैं।

सेनापति और अमात्य धीरोदात्त तथा ब्राह्मण और वैश्य धीर प्रशान्त होते हैं। इन चारों के चार प्रकार के विदूषक होते हैं। देवताओं मे विदूषक ब्राह्मण, सेनापति और व अमात्य के राजजीवी अर्थात् राजपुरुष

---

१. नाट्यशास्त्र की भारतीय परम्परा और दशरूपक, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृथ्वीनाथ द्विवेदी, पृ० १४५ से १५४ , प्रथम संस्करण, १९६३

२. वही, वही, पृ० १५६

और ब्राह्मण, वैश्य नायकों के विदूषक उनके शिष्य होते हैं ।[1]

उत्तम मध्यम अधम[2] इन चार प्रकारों के चार चार भेद होते हैं :-

१. अनुकूल,
२. दक्षिण,
३. शठ,
४. धृष्ट ।

चार प्रकार के नायकों के चार चार भेद होने से १६ भेद हो जाते हैं । नाट्याचार्य भरत ने उनके उत्तम, मध्यम अधम तीन तीन भेद माने हैं इस तरह नायक के अड़तालिस भेद हो जाते हैं । इस अड़तालिस के भी दिव्य अदिव्य, दिव्यादिव्य, तीन तीन भेद और माने जाते हैं । इस प्रकार कुल मिलाकर १४४ भेद हो जाते हैं ।[3]

डॉ० राजेन्द्रकृष्ण अनौत युगचेतना एवं नवीन नाटकीय प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए नायक भेद का विश्लेषण स्थूल रूप से निम्नप्रकार से करते हैं :-

---

१. अभिनव नाट्यशास्त्र, सीताराम चतुर्वेदी, प्रथम संस्करण, संवत् २००८ विक्रमी, पृ० ११६
२. वही, वही, वही ,
३. वही, वही, वही ।

१. रोमान्टिक नायक
२. व्यक्तिवादी नायक
३. प्रगतिवादी नायक
४. यथार्थवादी नायक
५. आदर्श नायक,
६. दुर्बल नायक

१. रोमान्टिक नायक :--

प्रेम प्रधान रोमान्टिक नाटकों के नायक को नाटककार मुख्यत: प्रेमी के रूप में चित्रित करता है। ऐसे नाटकों की कथा नायक-नायिका की प्रेम कथा पर आधारित होती है।

२. व्यक्तिवादी नायक --

जब लेखक अपनी मनोवैज्ञानिक रचनाओं में नायक के वर्तमान का विश्लेषण उसकी अहंवृत्ति को लक्ष्य में रख कर करता है। ऐसी रचनाओं में नायक की प्रत्येक छोटी से छोटी चेष्टा भी उसकी अहंभावना से प्रभावित रहती है। वस्तुत: नायक की इस अहंवृत्ति को विकृत अहं कह सकते हैं। जिसके मूल में दमित वासना और प्रभुत्व कामना अथवा आत्म प्रकाशन की जिज्ञासा रहती है। इन्हीं वृत्तियों के कारण नायक में कई बार आत्महीनता की भावना भी आजन्म जाती है। इस प्रकार के व्यक्ति प्राय: चंचल ईर्ष्यालु, संदेहशील, अहंवादी, कामासक्त बुद्धि के होते हैं। अत: इन गुणों के कारण उनका चरित्र व्यक्ति वैशिष्ट्य बन जाता है।

प्रगतिवादी नायक —

नाटककार नाटक में नायक के द्वारा अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है। समस्त नाटक में नायक ही केवल ऐसा पात्र होता है जो नाटककार के समूचे जीवन दर्शन का सही प्रतिनिधित्व कर सकता है। ऐसा नायक प्राय: शिक्षित तथा मध्यमवर्ग से सम्बन्धित होता है। जीर्ण एवं जर्जरित सामाजिक व्यवस्था में उसकी अनास्था रहती है। शोषक एवं पीड़क वर्ग के प्रति घृणा एवं विद्रोह की भावना रहती है। समाज में उसकी सहानुभूति तो केवल दीन हीन, निस्सहाय, पीड़ित, दलित एवं शोषित, वर्ग के प्रति रहती है। इसलिये प्रगतिवादी नायक निस्वार्थी कर्मठ, दृढ़-निश्चयी, तथा [illegible] होता है।

यथार्थवादी नायक —

यथार्थवादी पात्र प्राय: वर्गगत विशेषताओं से युक्त होते हैं, जिनके जीवन की घटनाएँ हमारी जानी पहचानी होती हैं। कई बार नाटककार अपने ऐसे पात्रों के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विकास दिखाने के लिए परिस्थितियों के अनुरूप उनके चरित्रों में परिवर्तन दिखलाता है।

[illegible] नायक —

संस्कृत के प्राय: सभी नाटकों में नायक धीरोदात्त आदि गुणों से युक्त आदर्शवादी नायक होते थे। परन्तु आज का लेखक देवता के रूप में निर्दोष तथा आदर्श चरित्र नहीं चाहता, वरन् ऐसे आदर्श पात्रों को अपनी

रचनाओं में स्थान देना चाहता है जिनसे मानव की सद्वृत्तियों एवं नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था दृढ़ बने । आज नाटक का नायक अपने विशिष्ट जीवन दर्शन एवं नैतिक मान्यताओं के कारण भी आदर्श एवं अनुकरणीय बनने की सामर्थ्य रखता है ।

दुर्बल नायक —

कई बार नाटककार अत्यन्त ही दुर्बल प्राण व्यक्तित्व को नाटक का नायक बना देता है । ऐसे चरित्र जीवन में प्राय: नि:चेष्ट रहते हुए भी नियति की कृपा से जीवन में सभी प्रकार के सुखों का उपभोग करते हैं । ये प्राय: भाग्यवादी होते हैं । नाटक में ये कहीं भी स्वतन्त्रता से आचरण करते नहीं देखे जाते ।[1]

निष्कर्ष — संस्कृत के नाट्याचार्य नायक में समस्त गुणों का विधान मानते हुए उन्हें चार भागों में बाँटते हैं — १. धीरोद्धत, २. धीरोदात्त, ३. धीरललित, ४. धीर प्रशान्त ।

इसी परम्परा का पालन आधुनिक हिन्दी नाट्याचार्य भी करते हैं ।

सभी नाट्याचार्य चारों प्रकार के नायकों के आगे धीर विशेषण का होना आवश्यक मानते हैं, किन्तु यहाँ यह विचारणीय है कि जो उद्धत होगा वह स्वभाव से अवश्यमेव चपल होगा । अत: उद्धत नायक धीर कैसे हो सकता है । यद्यपि प्राचीन एवं आधुनिक सभी नाट्याचार्य नायक के उपर्युक्त चार भेद स्वीकार करते हैं, पर अन्तर इतना है कि इनकी रचना में भेद हो जाता है । कोई धीरोदात्त को श्रेष्ठ रखता है तो कोई धीर ललित को, कोई धीरोद्धत को ।

भरत मुनि धीरोद्धत को प्रथम स्थान देते हैं । [illegible] में धीरोदात्त को पहला स्थान दिया गया है । इसी परम्परा का पालन [illegible] में हुआ है । दशरूपककार ने धीर ललित को श्रेष्ठ बताया है ।

---

१. हिन्दी नाटक में नायक का स्वरूप, डॉ० रवीन्द्रकृष्ण मनोत, पृ० ८३-८६

फिर धीर शान्त को बताया है। नाट्यदर्पण में पहले उद्धत को स्थान मिला है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृथ्वीनाथ द्विवेदी, बच्चन सिंह, श्यामसुन्दरदास, सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, सीताराम चतुर्वेदी, नायकों के उपरोक्त चार भेद ही स्वीकार करते हैं।

श्यामसुन्दर दास ने शान्त को प्रथम स्थान दिया है। सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृथ्वीनाथ द्विवेदी, बच्चन सिंह ने धीर ललित को प्रथम स्थान दिया है। श्री सीताराम चतुर्वेदी ने धीरोद्धत को प्रथम स्थान दिया है।

प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र ने नायक तीन प्रकार के बताए हैं। धीरोदात्त को उन्होंने स्थान नहीं दिया है।

कुछ नाट्याचार्य उपर्युक्त चार भेदों के अतिरिक्त नायक के चार उपभेद भी स्वीकार करते हैं —

१. दक्षिण
२. शठ
३. धृष्ट
४. अनुकूल

इस मान्यता में भी अन्तर है। कुछ आचार्यों ने नायक के चार भेदों में से प्रत्येक के ये चार उपभेद स्वीकार किये हैं। इसप्रकार इस मान्यता

के अनुसार नायक के १६ उपभेद हो जाते हैं। कुछ आचार्य पृथक रूप से नायक के केवल चार ही उपभेद स्वीकार करते हैं।

दशरूपककार धनंजय, साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ, आधुनिक नाट्याचार्य सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, गुलाबराय शृंगार की दृष्टि से नायक के चार उपभेद स्वीकार करते हैं। आधुनिक नाट्याचार्य श्यामसुन्दरदास, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्री पृथ्वीनाथ द्विवेदी, आचार्य सीताराम-चतुर्वेदी प्रत्येक भेद के चार चार उपभेद मान कर नायक के १६ उपभेद स्वीकार करते हैं।

इन उपभेदों के क्रम में प्रायः यहाँ भी भेद हैं। धनंजय, विश्वनाथ दक्षिण को पहला स्थान देते हैं। अग्निपुराण, रसिकप्रिया, गुलाबराय, सुरेन्द्रनाथ दीक्षित पहले अनुकूल को मान्यता देते हैं।

इसी सम्बन्ध में अकबर शाह बड़े साहब ने नायक के ६ उपभेद स्वीकार किये हैं अनुकूल दक्षिण सहित जो इस प्रकार हैं :-

१. अनुकूल,
२. दक्षिण,
३. शठ,
४. धृष्ट,
५. मानी,
६. चतुर।

मानी और चतुर उनके स्वतंत्र भेद हैं। ऐसा ही टीकाकार का कथन है।

भरत के प्रकृति भेद से तीन प्रकार के पुरुष बताते हैं -

उत्तम,

मध्यम

अधम ।

शृंगार मंजरी, कामसूत्र और दशरूपक नाट्यदर्पण साहित्यदर्पण में उपर्युक्त प्रकार स्वीकार किए गए हैं । अन्तर यह है कि दशरूपक में वे उत्तम को ज्येष्ठ की संज्ञा देते हैं और मध्यम को उत्तम या मध्यम कह देते हैं । तीसरे प्रकार के पुरुष में कोई भेद नहीं है ।

अग्नि पुराण में ऐसी कोई मान्यता नहीं प्रकट की गई है । विश्वनाथ साहित्य दर्पण में नायक के तीन और रूप स्वीकार करते हैं :-

१. दिव्य,

२. अदिव्य,

३. दिव्यादिव्य

इस मान्यता में भी भेद हो जाता है कुछ आचार्य प्रत्येक उपभेद के तीन उपभेद स्वीकार करते हैं इस तरह ४८ उपभेद स्वीकार करते हैं कुछ आचार्य पृथक रूप से तीन भेद ही स्वीकार करते हैं ।

कामसूत्र में कामोत्तेजना की दृष्टि से पुरुषों को तीन भागों में बाँटा गया है :-

१. मन्दवेग,

२. मध्यवेग,

----

३. चण्डवेग ।

ऐसा वर्गीकरण और किन्हीं नाट्याचार्यों ने नहीं किया है।

भरत प्रेमावेश जन्य सम्बोधनों के आधार पर नायक के सात भेद करते हैं।

प्रियकान्त, विनीत, नाथ, स्वामी जीवित, नन्दन। क्रोधावेश - जन्य सम्बोधनों के आधार परनायक के सात भेद करते हैं - दुश्शील, दुराचारी, शठ, वाम, विरूपक, निर्लज्ज निष्ठुर आदि सम्बोधन उन्होंने दिये हैं।

इस तरह का भेद और किन्हीं आचार्यों ने नहीं किया है। भानुदत्त की रसिक मंजरी में पति उपपति इस प्रकार के भेद भी मिलते हैं। भिखारीदास ने इन्हीं को तीन भागों में बाँटा है -

१. साधारण,

२. पति,

३. उपपति ।

शृंगार मंजरी, रस सारांश में -

१ पति,

२. उपपति,

३. वैशिक ।

इस प्रकार के तीन भेद मिलते हैं।

प्राचीन और आधुनिक नाट्याचार्यों ने जिन भेदों, उपभेदों का उल्लेख किया है वे आज के नाटकों में पूर्णतः लागू नहीं किये जा सकते । आधुनिक नाटकों के सम्बन्ध में भगोत द्वारा किये हुए भेद ही अधिक तथ्य परक जान पड़ते हैं – उनके अनुसार नायक के भेद इस प्रकार हैं :–

रोमान्टिक, व्यक्तिवादी, प्रगतिवादी, यथार्थवादी आदर्श और दुर्बल नायक ।

आज के नाटकों को देखते हुए नायक के वर्गीकरण में कोई सीमा या बन्धन नहीं स्वीकार किया जा सकता । आधुनिक नाटकों में नायक के प्रकार अनेक कारणों से बदलते रहते हैं । क्योंकि आज के नाटकों में धीरोद्धत , धीरोदात्त,धीर ललित,धीर प्रशान्त इस प्रकार के गुणों से विहीन पात्र भी नाटक में नायक बनने का अधिकारी है ।

नायक के सहायक :–

भारत नायक के सहायक का वर्णन करते हुए कहते हैं :–

शकारश्च विटश्चैव ये चान्येप्येवमादय: ।
संकीर्णास्तेऽपि विज्ञेया ह्यधमानाटके बुधै: ।।१४।।[१]

हिन्दी नाट्यदर्पण में धीरोद्धत नायक के निम्न सहायक हैं –

---

१. नाट्यशास्त्र, चतुर्विंशोऽध्याय: , पृ० २५१

नीचा विदूषक,क्लीवा-शकार-विट किङ्करा: ।
हास्यास्याथो नृपे स्याल: शकारस्त्वेक विद्विट:[1]।।
(१४)१६७ ।।

युवराज-चमूनाथ-पुरोध:-सचिवादय: ।
सहाया एतद्धायककर्मेव ललित: पुन: (१६) १६६ ।।[2]

हिन्दी साहित्य दर्पण में नायक के सहायक का वर्णन इस प्रकार हुआ है —

दूरानुवर्तिनिस्यात्तस्य प्रासङ्गिकेतिवृत्ततु ।
किंचित्तद्गुणहीन: सहाय एवास्यपीठमर्दाख्य: ।।[3] ३-३६ ।।

काव्य में नायक के कई साथी व सहायक उपनिबद्ध किये जाते हैं । इनके प्रधान पताकानायक होता है । इसे पीठ मर्द भी कहते हैं पताका नायक चतुर तथा बुद्धिमान होता है तथा प्रधान नायक का अनुचर तथा भक्त होता है । वह प्रधान नायक की अपेक्षा कुछ ही गुणों में कम होता है ।[4]

---

१. हिन्दी नाट्यदर्पण, प्रधानसम्पादक- नगेन्द्र, पृ० ३७६
२. वही, वही, पृ० ३७७
३. हिन्दी साहित्यदर्पण, डॉ० सत्यव्रत सिंह, पृ० १४५
४. पताका नायकस्त्वन्य: पीठमर्दो विचक्षण: ।
तस्यैवानुचरो भक्त: किंचिदून श्च तद्गुणै: ।। २-८ ।।
—दशरूपक,व्याख्याकार भोलाशंकर व्यास, पृ० ६०

सहायक पात्र अपने व्यक्तित्व और संस्कार के कारण प्रधान पात्रों की श्रेणी में होते हैं तथा पुरुषार्थ-साधन में प्रवृत्त प्रधान नायक को भिन्न भिन्न रूपों में सहयोग देते हैं, परन्तु राजा अथवा नायक के सहायक अन्य पुरुष-पात्र भी होते हैं उनमें विदूषक, विट और शाकार आदि का महत्व है ।[१]

नायक के कई सहायक होते हैं । पीठमर्द मुख्य सहायक होता है ।[२]

नायक के सहायक पुरुष पात्र भी होते हैं जैसे — पीठमर्द, विदूषक, विट, कभी कभी एक प्रतिनायक भी रहता है ।[3]

पृथ्वीनाथ द्विवेदी और द्वारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है — "प्रधान नायक की अपेक्षा पताका का नायक अन्य व्यक्ति होता है जिसको पीठमर्द कहते हैं । यह विचक्षण होता है और प्रधान नायक का अनुचर उसका भक्त तथा उससे कुछ ही कम गुणवाला रहता है ।"[४]

---

१. भरत और भारतीय नाट्य कला, डॉ० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, पृ० १६५

२. अभिनव नाट्यशास्त्र, सीताराम चतुर्वेदी, पृ० १३०

३. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त , द्वितीय भाग, गोविन्द त्रिगुणायत, पृ० २०२

४. भारतीय नाट्य शास्त्र की परम्परा और दशरूपक, द्वारीप्रसाद द्विवेदी, पृथ्वीनाथ द्विवेदी, पृ० १५६

इसके अतिरिक्त अन्य सहायकों का उल्लेख करते हुए उनका कथन है—

एक विधो विटश्चान्यो हास्य कृच्च विदूषक: ।[1]

नायक के श्रृंगारी सहायक —

नायक के श्रृंगारी सहायक हैं —

विट,

चेट ,

विदूषक ।

ये लोग स्वामिभक्त , नर्म, निपुण, क्रुद्ध एवं शुद्ध चरित्र के होते हैं[2]।

विश्वनाथ ने विट तथा विदूषक का वर्णन धनंजय की अपेक्षा अधिक विस्तार से किया है ।

विट वह है जो विषयादिक सुख-सम्भोग में धन सम्पत्ति लुटा चुका हो, जो धूर्त हो, कुछ एक कलाओं का ज्ञाता हो तथा वेश्योपचार में कुशल हो, बातचीत में चतुर, स्वभाव का मधुर तथा गोष्ठी में जिसका सम्मान हो ।[3]

---

१. भारतीय नाट्य शास्त्र, की परम्परा और दशरूपक, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृथ्वीनाथ द्विवेदी, पृ० १५६

२. शृङ्गारेऽस्य सहाया विटचेटविदूषकाद्या: स्यु: ।
भक्ता नर्मसु निपुणा: कुपितवधूमानभञ्जना: शुद्धा: ।। ३।४० ।।
—हिन्दी साहित्य दर्पण, डॉ० सत्यव्रत सिंह, पृ० १४६

३. संभोग हीनसम्पद्विटस्तु धूर्त: कलैकदेशज्ञ: ।
वेशोपचारकुशलो वाग्मी मधुरोऽथ बहुमतो गोष्ठ्याम् ।। ३।४१
वही , वही, वही ।

चेट का उल्लेख दशरूपककार ने नहीं किया है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने भी "चेट: प्रसिद्ध एवं" कह कर उल्लेखमात्र कर दिया है।

विदूषक वह है जिसका नाम कुसुम अथवा बसन्त आदि पर रक्खा जाता हो जो अपने कर्म, शरीर तथा वाणी के द्वारा दूसरों को हँसाने की क्षमता रखता हो, जिसे दूसरों के साथ झगड़ने में आनन्द मिलता हो, और जो अपने स्वार्थ में कुशल हो।[1]

दशरूपककार धनंजय ने नायक के प्रसंग में शृंगारी सहायकों का वर्णन किया है।[2]

कामसूत्र में विदूषक के स्थान पर वैहासिक शब्द का प्रयोग किया गया है। आचार्य वात्स्यायन का कथन है —"नायिका को चाहिये कि वह नायक के भावों, उसके प्रेम की स्वाभाविकता अथवा कृत्रिमता को

---

१. कुसुमवसन्ताद्यभिध: कर्मवपुर्वेषभाषाद्यै:
हास्यकर: कलहरतिर्विदूषक: स्यात्स्वकर्मज्ञ: ।। ३-४२ ।।

—हिन्दी साहित्य दर्पण, डॉ० सत्यव्रत सिंह, पृ० १४७

२. एकविधो विटश्चान्यो, हास्य कृच्च विदूषक: ।।२६।।

—दशरूपक, व्याख्याकार भोलाशंकर व्यास, पृ० ६०

जानने हेतु अपने किसी विश्वासपात्र अनुचर पादसंवाहक गायक अथवा (वैहासिक) विदूषक आदि सच्चे सेवकों को नियुक्त करे ।[१]

अग्निपुराण में भी नायक के शृंगारी सहायकों का उल्लेख मिलता है । पीठमर्द, विट, विदूषक ये नायक के शृंगारी सहायक हैं । पीठमर्द नायक का कुशल सहायक होता है । विट उसका अन्तरंग मित्र होता है । विदूषक उसका विनोदी सहायक होता है ।[२]

सीताराम चतुर्वेदी ने शृंगारी सहायक के रूप में विट और विदूषक का उल्लेख किया है ।[३]

---

१. भावजिज्ञासार्थं परिचारकमुखान्संवाहक गायन् -
वैहासिकान्यमये तद्भक्तान्वा प्रणिदध्यात् ।। ६।१।२२

—कामसूत्र, द्वितीय भाग, भोलाशंकर, व्यास, पृ० ६०८

२. पीठमर्दो विटश्चैव विदूषक इतित्रय:
शृंगारे नर्म सचिवा नायक स्यानु नायका: ।।३-३६ ।।

पीठमर्दस्तु कुशल: श्रीयांस्तद्देशजो विट: ।
विदूषको वैहासिक(स्त्व)ष्ट नायक नायिका ।। ३-४०।।

—अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, रामलाल वर्मा, पृ०४५

३. अभिनव नाट्यशास्त्र, सीताराम चतुर्वेदी, पृ० १३०

बाबू श्यामसुन्दर दास शृंगारी सहायक में विट, चेट, विदूषक, मालाकार, रजक, तमोली, गंधी आदि को बताते हैं।[1]

नायक के अर्थचिन्तन के सहायक —

नायक के अर्थचिन्तन के सहायक का उल्लेख करते समय विश्वनाथ ने दशरूपककार की आलोचना की है। उनका कथन है —

मंत्री स्यादर्थानां चिन्तायां -
अर्थास्तन्त्रावापादयः ।

यत्तत्र सहायकथनप्रस्तावे "मंत्री स्वं वोभयं-वापि सखा तस्यार्थ-चिन्तने" इति केनचिल्लक्षणं कृतम्, तदपि राज्ञो र्थचिन्तनोपायलक्षणप्रकरणे लक्षयितव्यम् न तु सहायकथन प्रकरणे ।

नायकस्यार्थ चिन्तने मन्त्री सहायः" इत्युक्तेऽपि नायकस्यार्थत एव सिद्धत्वात् । यदप्युक्तम्-"मन्त्रिणा ललितः शेषा मन्त्रिस्वायत्तसिद्धयः" इति, तदपि स्वलक्षणाकथनेनैव लक्षितस्य धीरललितस्य मन्त्रिमात्रायत्तार्थ चिन्तनोपपत्तेर्गतार्थम् न [illegible]ने तस्य मन्त्री सहायः, किं तु स्वयमेव संपादकः तस्यार्थचिन्ताद्यभावात् ।[2]

---

1. रूपकरहस्य, श्यामसुन्दरदास, पृ० ६७
2. हिन्दी साहित्य दर्पण, डॉ० सत्यव्रत सिंह, पृ० १४७-१४८

सीताराम चतुर्वेदी ने अर्थ चिन्तक के सहायक के विषय में कहा है —

नाटकों के नायक विशेषत: राजा हुआ करते हैं जिन्हें अपनी अर्थव्यवस्था के लिए मन्त्री और कोषाध्यक्ष पर निर्भर रहना पड़ता है। परन्तु धीरललित नायक अर्थसिद्धि के लिये सलाहकारों पर अवलम्बित नहीं रहता और धीरशान्त नायक को धन की विशेष चिन्ता नहीं होती।[१]

बाबू श्यामसुन्दरदास अर्थ चिन्तक के सहायकों का वर्णन करते हुए कहते हैं —

अर्थचिन्तक के सहायक विशेषकर राजा हुआ करते हैं जिन्हें अपनी अर्थव्यवस्था के लिये मंत्री और कोषाध्यक्ष पर निर्भर रहना पड़ता है। परन्तु धीरललित नायक अर्थसिद्धि के लिये सलाहकारों पर अवलम्बित नहीं रहता। धीरशांत को धन की विशेष चिन्ता नहीं होती।[२]

नायक के अन्त:पुर के सहायक —

नायक के काम अथवा अन्त:पुर के सहायक हैं —बौने, जनखे, किरात, म्लेच्छ, शकार, कुबड़े आदि। शकार शराबी, मूर्ख, घमण्डी, राजा का

---

१. अभिनव नाट्यशास्त्र, सीताराम चतुर्वेदी, पृ० १३०

२. रूपक रहस्य, श्यामसुन्दरदास, पृ० ६८

३.

नीच जाति में उत्पन्न साला तथा धन वैभव से युक्त होता है ।[१]

दशरूपककार ने नायक के अन्त:पुर के सहायकों में -वर्षवर (नपुंसक), किरात, मूंग, म्लेच्छ, आभीर, शकार (राजा का नीच जाति में उत्पन्न साला) आदि की गणना की है । ये सभी अपने अपने कार्यों में नायक के उपयोगी हैं ।[२]

और सीताराम चतुर्वेदी का कथन है -

'वर्षवर किरात, मूक बौने, म्लेच्छ, ग्वाले और शकार आदि होते हैं ।'[३]

---

१. वामनषण्ढकिरातम्लेच्छाभीरा: शकारकुब्जाधा: ।। ३-४३ ।।
मदमूर्खताभिमानी दुष्कुलतैश्वर्यसंयुक्त: ।
सोऽयमनूढाभ्राता राज्ञ: श्याल: शकार इत्युक्त: ।। ३-४४ ।।

हिन्दी साहित्यदर्पण, डॉ० सत्यव्रत सिंह, पृ०१४६

२. अन्त:पुरे वर्षवरा: किराता मूकवामना: ।
म्लेच्छाभीरशकाराधा: स्वस्वकार्योपयोगिन: ।।

दशरूपक- धनिक धनंजय,भोलाशंकार व्यास, पृ० १२६

३. अभिनवनाट्यशास्त्र, सीताराम चतुर्वेदी, पृ० १३०

हिन्दी नाट्यदर्पण में अन्त:पुर के उपयोगी परिवारक वर्ग का वर्णन इस प्रकार किया गया है —

शुद्धान्ते कासको ज्ञा: स्थ: कंचुकी शुकर्मणि ।
वर्षवरस्तु रक्षायां, निर्मुण्ड: प्रेषणोस्त्रीस्त्वय: ।।
कार्याख्याने प्रतीहारी, रक्षास्वस्त्यायंहनरा ।
पूर्वस्थितविधांवृद्धा, चित्रादौ शिल्पकारिका ।। [१]

(१७) ४७० ।। (१८) १७१ ।।

नायक के दण्ड सहायक —

प्रजा में अशान्ति अव्यवस्था, अराजकता, चोरी आदि करने वालों को दण्ड दिया जाता है जिसके फलस्वरूप देश में शान्ति स्थापित होती है । इसी दण्डविधान के निर्धारण में प्रमुख पात्र सहायक होते हैं —

जिसका उल्लेख साहित्यदर्पण में मिलता है ।[२]

---

१. हिन्दी नाट्यदर्पण, प्रधान सम्पादक, नगेन्द्र, पृ० ३७८

२. दण्डे सुहृत्कुमाराटविका: सामन्तसैनिकाधाश्च ।

हिन्दी साहित्य दर्पण , डॉ० सत्यव्रत सिंह, पृ० १५०

दशरूपक के अनुसार —मित्र, युवराज, वनविभाग के लोग, सामन्त तथा सैनिक "[1] दण्डविधान में सहायक होते हैं।

सीताराम चतुर्वेदी का कथन है - दण्डसहायक दुष्टों के दमन में सहायक होते हैं ये सुहृत , कुमार, आटविक सामन्त और सैनिक आदि होते हैं। श्यामसुन्दर दास के अनुसार सुहृद् कुमार आटविक, सामन्त और सैनिक आदि दण्डसहायक में आते हैं।[2]

नायक के धर्म सहायक –

हिन्दी साहित्य दर्पण में धर्म सहायकों का उल्लेख मिलता है।[3]

दशरूपक में नायक के धर्मसहायक प्रमुख रूप से चार हैं :—

---

१. अभिनव नाट्यशास्त्र, सीताराम चतुर्वेदी, पृ० १३०

२. रूपक रहस्य, श्यामसुन्दरदास, पृ० ~~५६~~ ६८

३. ऋत्विक्पुरोधसः स्युर्ब्रह्मविदस्तापसास्तथा धर्मे ।। ४५
उत्तमा: पीठमर्दाद्या:, मध्यौविटविदूषकौ ।।
तथा शकार चेटाद्या अधमा: परिकीर्तिता: ।। ३।४६।।
उपर्युक्त सहायकों में उत्तमाधम, मध्यम, व्यवस्था ।

हिन्दी साहित्य दर्पण, डॉ० सत्यव्रत सिंह, पृ० १५०

१. ऋत्विक,
२. पुरोहित,
३. तपस्वी,
४. ब्रह्मवेत्ता ।[१]

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी का कथन है --ऋत्विक, पुरोहित, तपस्वी, ब्रह्मवादी, लोग धर्म सहायक होते हैं । [२]

बाबू श्यामसुन्दरदास के अनुसार ऋत्विग पुरोहित ,तपस्वी , ब्रह्मवादी (आत्मज्ञानी) नायक के धर्मसहायक होते हैं ।[३]

नायक के सामान्य गुण --

हिन्दी साहित्य दर्पण में नायक में निम्नगुण उल्लेख किये गये हैं :--

----

१. ऋत्विक्पुरोहितौ धर्मे तपस्वि ब्रह्मवादिन: ।। २-४३ ।।

--दशरूपक, पृ० १२६

२. अभिनव नाट्यशास्त्र, आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, पृ० १३०

३. रूपक रहस्य, बाबू श्यामसुन्दरदास, पृ० ६८

त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही
दक्षोऽनुरक्त लोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान्नेता[1] ।।३०।३

धनंजय के अनुसार नायक विनम्र मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रिय बोलने वाला, लोगों को प्रसन्न करने वाला, मन से पवित्र, वाणी व्यवहार में कुशल, कुलीन, वंशी, स्थिर बुद्धिवाला, युवा, बुद्धि, साहस, स्मृति प्रज्ञा कला तथा मान से युक्त शूरवीर, दृढ़ प्रतिज्ञ, तेजस्वी, शास्त्र आदि में प्रवीण तथा धार्मिक होना चाहिए ।"[2]

वात्स्यायन नायक में निम्नगुणों का होना अनिवार्य मानते हैं —

वह कुलीन हो, विद्याओं का ज्ञाता, समस्थितियों का वेत्ता, अर्थात् समया-नुसार परिस्थितियों को समझ कर कदम उठाने वाला, कवि और आख्यान

---

१. हिन्दी साहित्य दर्पण, डॉ० सत्यव्रत सिंह, पृ० १३८

२. नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः ।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढ़वंशः स्थिरो युवा ।। २-१ ।।

बुद्धयुत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः ।
शूरो दृढ़श्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ।। २-२ ।।

—दशरूपक, व्याख्याकार भोलाशंकर व्यास, पृ० ७३

में कुशल, वाणी में चतुर, प्रगल्भी, विविध शिल्पों का ज्ञाता, बड़ों की सेवा करने वाला- ईर्ष्यारहित, त्यागी, मैत्री, भाव बनाये रखने वाला सभा समाज अथवा गोष्ठियों में रुचि रखने वाला, नटों द्वारा किये गये, अभिनय में रुचि रखने वाला, मिलकर खेलने वाला, स्वस्थ्य, सीधे शरीर वाला, शक्तिशाली, उपमसेवी, पुंसत्व से युक्त, स्नेहशील, स्त्रियों का प्रणेता एवं लालन पालन करने वाला, स्वतन्त्र वृत्ति का आचरण करने वाला, सहृदय, अनिर्ष्यालु तथा निःशंक स्वभाव वाला हो।[१]

ग्रीक विद्वान् अरस्तू का मत भी भारतीय आचार्यों से भिन्न नहीं है। उन्होंने त्रासदी के नायक के चरित्र में चार गुणों को विशेष रूप से अनिवार्य माना है।

पहली और महत्वपूर्ण बात यह है कि वह भद्र हो। नैतिक उद्देश्य का द्योतक करने वाला हो। कोई भी वक्तव्य या कार्य व्यापार

---

१. महाकुलीनो विद्वान्सर्वसमयज्ञः कविराख्यानकुशलो
वाग्ग्मी प्रगल्भो विविधशिल्पज्ञो वृद्धदर्शी स्थूललक्षो
महोत्साह दृढभक्तिरनसूयकस्त्यागी मित्रवत्सलो
घटागोष्ठी प्रेक्षणकसमाजसमस्याक्रीडनशीलो नीरुजो शरीरऽव्यंग
प्राणवानमद्यपो वृषो मैत्रः स्त्रीणां प्रणेता लालयिता च।
न चासां वशः स्वतन्त्र वृत्तिरनिष्ठुरोऽनीर्ष्यालुरनवशङ्की चेति
नायक गुणाः ॥ ६।१।१२ ॥

—कामसूत्र द्वितीय भाग, वात्स्यायन, पृ० ८६८

चरित्र का व्यंजक होगा । यदि उद्देश्य भद्र है तो चरित्र भी भद्र होगा ।
यह गुण प्रत्येक वर्ग में सम्भव है ।
दूसरी बात ध्यान रखने की है औचित्य । पुरुष में एक विशेष प्रकार का शौर्य होता है, परन्तु नारी चरित्र में शौर्य या (नैतिक विवेक शून्य) चातुर्य का समावेश अनुचित होगा । तीसरा चरित्र, जीवन के अनुकूल होना चाहिए । यह गुण पूर्वोक्त 'भद्रता' और 'औचित्य' से भिन्न गुण है । चौथी बात यह है कि चरित्र में एकरूपता होनी चाहिये । हो सकता है मूल अनुकार्य के चरित्र में एकरूपता हो किन्तु फिर भी यह अनेकरूपता भी एकरूप होनी चाहिये ।"[1]

डॉ० श्यामसुन्दरदास ने भी 'रूपक रहस्य' में धनंजय के अनुसार नायक के निम्नगुण बताए हैं —

१. विनीत, मधुर, त्यागी दक्ष
प्रियंवद, शुचि रक्तलोक, वाग्मी,
रूढ़वंश, स्थिर युवा बुद्धिमान, प्रज्ञावान,
स्मृति सम्पन्न, उत्साही कलावान,
शास्त्र चक्षु, आत्म सम्मानी, शूर दृढ़,
तेजस्वी धार्मिक ।[2]

---

१. अरस्तू का काव्यशास्त्र, (अनुवादक डॉ० नगेन्द्र) अनुवाद भाग, पृ० १०६-१११

२. रूपक रहस्य - डॉ० श्यामसुन्दरदास, तृतीय संस्करण, पृ० ८३

डॉ० श्यामसुन्दर दास का कथन है — भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार उसे सब उच्च गुणों का आधार होना चाहिए, परन्तु प्रत्येक गुण उचित सीमा के अन्दर हों।

नायक नम्र हो किन्तु उसकी नम्रता ऐसी न हो कि दूसरे उसको पददलित करते रहें। भारतीय नाट्यशास्त्र के नायक की नम्रता दौर्बल्य का नहीं परन्तु उच्च संस्कृति और शील का लक्षण है। इसलिए नम्रता के साथ साथ आत्म-सम्मान और तेजस्विता आदि गुणों का भी विधान है।"[१]

श्यामसुन्दरदास ने प्रत्येक गुण का अलग अलग विस्तार पूर्वक विवेचन भी किया है। मधुरता के लिए उनका कथन है " देखते ही सुन्दर लगना मधुरता का गुण है। यथा राम। त्यागी वह है जो सत्कर्म के लिये अपना सर्वस्व न्योछावर कर दे। यथा दधीचि। दक्ष वह है जो इष्ट कार्य शीघ्र कर डाले, राम। प्रिय बोलने वाले प्रियंवद हैं, जैसे परशुराम के प्रति श्राम के वचन। जिसका मन पवित्र हो, कामादि विकारों से दूषित न हो वह शुचि है। लोक प्रिय जिस पर जनता का अनुराग हो वह रक्तलोक है। किसी युक्ति युक्त बुझती हुई बात को प्रिय रूप में बोलने वाले वाङ्ग्मी कहलाते हैं। उच्चकुल में उत्पन्न रूढ़ वंश कहलाते हैं।

---

१. रूपक रहस्य - डॉ० श्यामसुन्दर दास, पृ० ८३, तृतीय संस्करण

मन, वचन और कर्म से अपनी बात पर दृढ़ रहने वाला स्थिर कहलाता है। युवा का तात्पर्य 'जवान' से है। बुद्धि से युक्त बुद्धिमान कहलाता है। विवेक के साथ कार्य करने वाला 'प्रज्ञावान' कहलाता है जैसे गुरु विश्वामित्र के युद्ध के लिये कहे वचन। स्मृति सम्पन्न वह है जो कुछ सीख या देखे उसे अच्छी तरह स्मरण रख सके। कलाओं को जानने वाला कलावान कहलाता है। शास्त्र की दृष्टि से देखने वाला, शास्त्रों के अनुसार चलने वाला शास्त्रचक्षु, कहलाता है। अपना अपमान न सह सकना आत्मसम्मान है। वीरता के साथ साथ जिसमें उपकार बुद्धि हो वह शूर है। अध्यवसायी ही दृढ़ी है जैसे सत्य हरिश्चन्द्र। तेजस्वी वह है जो प्रतापवान तथा विक्रमशाली पुरुष हो। धर्म में प्रवृत्ति रखने वाला धार्मिक है।[१]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृथ्वीनाथ द्विवेदी नायक में निम्न गुणों का होना अनिवार्य मानते हैं —

नेता, विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष,
प्रियंवद, रक्तलोक, शुचि, वाग्मी,
रूढ़वंश, स्थिर युवा, बुद्धिमान, प्रज्ञावान,
स्मृति सम्पन्न, उत्साही, कलावान, शास्त्र-

---

१. रूपक रहस्य - डॉक्टर श्यामसुन्दर दास, पृष्ठ ८३ - ८७
तृतीय संस्करण।

दक्ष, आत्मसम्मानी, शूर दृढ़, तेजस्वी और धार्मिक[1]।

इनका अलग अलग विस्तार से उल्लेख किया गया है।

गुलाबराय ने नायक में निम्नगुणों का होना अनिवार्य माना है -

विनयशील, सुन्दर, त्यागी, कार्य करने में कुशल,
प्रिय बोलने वाला, लोकप्रिय, शुद्ध, भाषणपटु,
उच्चवंशज, स्थिरचित्त, युवा, बुद्धियुक्त, साहसी, प्रधान,
स्मृतिवाला, कलाकार, शूर, तेजस्वी, शास्त्रज्ञ होना।[2]

---

1. नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्ष: प्रियंवद: ।
रक्तलोक: शुचिर्वाग्मी रूढ़वंश: स्थिरो युवा ।।१।।
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वित: ।
शूरो दृढ़श्च तेजस्वीशास्त्र चक्षुश्च धार्मिक: ।। २।।

—भारतीय नाट्यशास्त्र की परम्परा और दशरूपक, हजारीप्रसाद - द्विवेदी, पृथ्वीनाथ द्विवेदी, पृ० १४१

2. नेता विनीतो, मधुरस्त्यागी दक्ष: प्रियंवद:
रक्तलोक: शुचिर्वाग्मी रूढ़वंश: स्थिरो युवा
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वित:
शूरो दृढ़श्च तेजस्वी शास्त्र चक्षुश्च धार्मिक:

—हिन्दी नाट्य विमर्श, गुलाबराय, पृ० ३२

डॉ० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित नायक के गुणों का विश्लेषण करते हुए कहते हैं –

"प्रधान पात्र का चरित्र उदात्त और धीर हो, अनुकरणीय हो तथा जिसका पर्यावसान दुःख में नहीं सुख में हो।" [१]

डॉ० भोलानाथ के अनुसार – "नाटक में नायक की पराजय नहीं दिखाई जाती। वही कितनी ही लोमहर्षक परिस्थिति से घिरा हो, किन्तु अन्त में उसकी विजय होगी। उसकी विजय ही नहीं होती वरन् महात्मा और देवतागण उस पर फूलों के और आशीर्वादों की वर्षा करते थे। सब लोग अन्त में प्रार्थना करते थे कि संसार में सुख शान्ति और धर्म का प्रचार हो। जब नायक हमारी सहानुभूति हमारे आदर्श और हमारी प्रशंसा का प्रतीक, हार नहीं सकता तब नाटक का सुखान्त होना स्वतः सिद्ध है यह नायक या तो इतिहास प्रसिद्ध कोई राजा महाराजा होता है या कोई पौराणिक व्यक्तित्व। सामान्यव्यक्ति को किसी नाटक का नायक बनाने की बात हमारे नाटककार सोच भी नहीं सकते थे।" [२]

सभी आचार्य नायक में गुणों की प्रतिस्थापना करते हैं।

---

१. भरत और भारतीय नाट्य कला, डॉ० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, पृ० १८८

२. हिन्दी साहित्य, डॉ० भोलानाथ तिवारी, पृ० ६४

साहित्य दर्पण, दशरूपक में नायक के जिन सामान्य गुणों का उल्लेख हुआ है उन्हीं गुणों का उल्लेख श्यामसुन्दरदास, आचार्य हजारी-प्रसाद द्विवेदी, पृथ्वीनाथ द्विवेदी, गुलाबराय ने भी किया है ।

वात्स्यायन इन लोगों से भिन्न कुछ गुणों का उल्लेख करते हैं ।

ग्रीक विद्वान् अरस्तू ने भी नायक के चरित्र के सन्दर्भ में चार महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख किया है ।

सुरेन्द्रनाथ दीक्षित नायक के गुणों का उल्लेख करते हुए नायक के चरित्र को उदात्त, धीर और अनुकरणीय मानते हैं । साथ ही उनका यह भी कथन है - " जिसका पर्यवसान दु:ख में नहीं सुख में हो । " इस परम्परा का पालन डॉ० भोलानाथ ने भी किया है उनके अनुसार नाटक में नायक की पराजय कभी नहीं दिखाई जाती । नायक कितनी भीलोमहर्षक स्थिति में क्यों न घिरा हो किन्तु अन्त में उसकी विजय होना अनिवार्य है ।

आज के युग में यह बात लागू नहीं होती । नायक की पराजय दिखा कर भी नाटक को यथार्थ बनाने की चेष्टा की जाती है । इस तरह नाटक का अन्त सुखान्त के, साथ ही साथ दुखान्त भी किया जाने लगा है ।

१.

नायक के सात्विक गुण :-

भरत मुनि नायक में पुरुषत्व सम्पन्न सात्विक गुणों का होना अनिवार्य मानते हैं। उनके अनुसार नायक के ८ सात्विक गुण होते हैं -

शोभा विलासो माधुर्यं स्थैर्यं गाम्भीर्यमेव च।
ललितौदार्यं तेजांसि सत्वभेदास्तुपौरुषाः ।। ३३।।[१]

अग्निपुराण में भी पुरुषों में रहने वाले आठ भावों (सात्विकगुणों) का उल्लेख किया गया है। वे इस प्रकार हैं -

१. शोभा,
२. विलास,
३. माधुर्य,
४. स्थिर,
५. गम्भीर,
६. ललित,
७. उदार,
८. तेज ।[२]

---

१. भरतनाट्यशास्त्रम्, द्वाविंशोऽध्यायः, पृ० १६५
२. शोभाविलासो माधुर्यं स्थैर्यं गम्भीर्यमेव च ।
ललितं च तथौदार्यं तेजो ऽष्टाविति पौरुषाः ।। ३-४७ ।।

दशरूपक में इन गुणों का उल्लेख इसप्रकार हुआ है —

१. शोभा,

२. विलास,

३. माधुर्य,

४. गाम्भीर्य,

५. स्थिरता,

६. तेज,

७. ललित तथा

८. औदार्य ।[1]

शोभा सात्विक भाव में शौर्य तथा दक्षता के साथ साथ नीच व्यक्ति के प्रति घृणा, और अपने से अधिक गुणों से युक्त व्यक्ति के प्रति स्पर्धा पाई जाती है ।[2]

नायक में जब धैर्य दृष्टि एवं गति के साथ स्मितयुक्त वाणी पाई जाये, उसे विलास नामक सात्विक गुण कहते हैं ।[3]

---

१. शोभा विलासो माधुर्यं गाम्भीर्यं स्थैर्यतेजसी ।
ललितौदार्यमित्यष्टौ सात्विका: पौरुषा गुणा: ।। २।१८ ।।

—दशरूपक, व्याख्याकार, भोलाशंकर व्यास, पृ० ६१

२. नीचे घृणाधिके स्पर्धा शोभायां शौर्यदक्षते ।।

3. गति: सधैर्या दृष्टिश्च विलासे सस्मितं वच: ।। २-११ ।।

— वही, वही, पृ० ६२

[illegible]

माधुर्य गुण में नायक के मन में बहुत बड़े क्षोभ होने पर भी मामूली सा विकार पैदा होता है लेकिन गाम्भीर्य में ऐसी परिस्थिति के होने पर भी मन में विकार नहीं होता है ।[१]

स्थैर्य गुण की विशेषता यह है कि नायक अनेक विघ्न-बाधाओं के होने पर भी अपने कार्य अथवा उद्देश्य पथ से विचलित नहीं होता तेज गुण नायक की अहंवृत्ति का परिचायक है ।[२] सहज, सुकुमार, शृंगार परक

~~[illegible]~~

१. श्लक्ष्णो विकारो माधुर्य संक्षोभे सुमहत्यपि ।
गाम्भीर्य यत्प्रभावेन विकारो नोपलक्ष्यते ।।२-१२

—दशरूपक, व्याख्याकार भोलाशंकर व्यास, पृ०६३

---

२. व्यवसायादचलनं स्थैर्यं विघ्नकुलादपि ।
अधिक्षेपाद्यसहनं तेजः प्राणात्ययेष्वपि ।। २-१३ ।।

—दशरूपक, पृ० ६४

~~?. [illegible] ललितं मृदु ।~~
~~[illegible] ।। २-१४ ।।~~

~~—दशरूपक, पृ० ६४-६५~~

चेष्टाओं का होना ही ललित गुण है। जब नायक प्रिय वचनों के द्वारा प्राण दान करने के लिये प्रस्तुत हो और उसमें सज्जनों को अपने अनुकूल बना लेने की क्षमता हो तो उसमें औदार्य गुण की स्थिति कही जाती है[1]।

विश्वनाथ ने भी नायक में आठ सात्विक गुण माने हैं, उनका अलग अलग विवेचन किया है।[2] वे गुण निम्नलिखित हैं —

१. शोभा,
२. विलास,
३. माधुर्य,
४. गम्भीर,

----

१. शृंगाराकारचेष्टात्वं सहजं ललितं मृदु।
प्रियोक्त्याऽऽजीवितादानामौदार्यं सदुपग्रहः ।। २-१४

—दशरूपक, व्याख्या० भोलाशंकर व्यास, पृ०६४-६५

२. शोभा विलासो माधुर्यं गाम्भीर्यं धैर्यं तेजसी।
ललितौदार्यमित्याष्टौ सत्वजाः पौरुषा गुणाः ।। ३-५० ।।

—हिन्दी साहित्य दर्पण, डॉ० सत्यव्रत सिंह, पृ०१५२

५. धैर्य

६. तेज,

७. ललित,

८. औदार्य ।

नाट्यदर्पण में भी नायक के सात्विक गुणों की व्याख्या की गई है —

तेजो विलासो माधुर्यं शोभा, स्थैर्यं गंभीरता ।
औदार्यं ललितं चाष्टौ गुणा नेतरि सत्वजा: ।। ८।१६१।।[१]

रूपक रहस्य में भी नायक में निम्नलिखित सात्विक गुणों का होना अनिवार्य माना गया है ।

१. शोभा,

२. विलास

३. माधुर्य,

४. गांभीर्य

---

१. हिन्दी नाट्य दर्पण, प्रधान सम्पादक, डॉ० नगेन्द्र, पृ० ३७२

५. स्थिरता,
६. तेज,
७. लालित्य,
८. औदार्य

ये आठ सात्विक और पौरुषेय गुण होते हैं।

शोभा में दो बातें आती हैं।

१. नीच के प्रति घृणा
२. अधिक के प्रति स्पर्धा[१]

अन्य गुणों का भी उल्लेख किया गया है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा डॉ० पृथ्वीनाथ द्विवेदी के अनुसार नायक के सात्विक गुण निम्नलिखित हैं :-

नीच के प्रति घृणा, अधिक गुण वाले के साथ स्पर्धा शौर्य-शोभा,दक्षता इनको शोभा कहते हैं।

---

१. रूपक रहस्य, बाबू स्यामसुन्दरदास, तृतीय संस्करण, पृ० ६४

विलास में नायक की गति और दृष्टि में धीरता रहती है। उसका वचन मुस्कराहट लिये होता है।

महान संक्षोभ रहते हुए भी अर्थात् महान विकार पैदा करने वाले कारणों के होते भी मधुर विकार होने का नाम माधुर्य है।

जिसके प्रभाव से विकार लक्षित न हो सके, वह गाम्भीर्य है।

विघ्न समूहों में रहते हुए भी अपने कर्तव्य में अडिग बने रहने का नाम स्थैर्य है।

प्राण संकट के समुपस्थित रहते भी जो अपमान को न सह सके उसे तेज कहते हैं।

शृंगार के अनुरूप स्वाभाविक और मनोहर चेष्टा को ललित कहते हैं।

औदार्य — इसके दो प्रकार हैं :-

(१) प्रियवचन के साथ जीवन को दूसरे के लिये समर्पित कर देना।

(२) सज्जनों के सत्कार करने को कहते हैं।[1]

---

१. शोभा विलासो माधुर्यं गम्भीर्यं धैर्य तेजसी।
ललितौदार्यमित्यष्टौ सत्त्वजा: पौरुषा गुणा: ।।१०।।
— भारतीय नाट्यशास्त्र की परम्परा और दशरूपक, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृथ्वीनाथ द्विवेदी, पृ०१५७-१६०

नायक के गुणों की व्याख्या करते हुए सुरेन्द्रनाथ दीक्षित का कथन है -

प्रधान पुरुष पात्रों की सात्विक विभूतियाँ भी होती हैं, जिनसे उनका व्यक्तित्व निरन्तर प्रभावित होता रहता है, जैसे सूर्य के साथ उसकी किरणों का आलोक। वे निम्नलिखित हैं :-

१. शोभा,
२. विलास,
३. माधुर्य,
४. स्थैर्य,
५. गाम्भीर्य
६. ललित
७. औदार्य,
८. तेज।[१]

डॉ० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित पुरुषों के सात्विक गुणों की अलग अलग व्याख्या करते हैं। उनके अनुसार -दक्षता, शूरता, उत्साह-नीच कर्मों के प्रति घृणा और उत्तम गुणों के प्रति स्पर्धा आदि बातें शोभा में आती हैं। विलास में धीर संचारिणी दृष्टि, दृढ़ आचारण आदि भाव आते हैं।

----

१. भरत और भारतीय नाट्य(कला), व्या० डॉ० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, पृ० १९६

-७७-

माधुर्य में अभ्यास के बल पर विपत्तियों की भंभा में पात्र की इन्द्रियाँ शान्त और सुव्यवस्थित रहती हैं।

स्थैर्य में धर्म, अर्थ काम के साधन में प्रवृत्त होने पर भी दृढ़ता का भाव रहता है।

गाम्भीर्य में गंभीरता, के प्रभाव से हर्ष, क्रोध, भय, आदि की स्थिति में आकृति पर उसका चिह्न नहीं रहता।

ललित में हृदय के आवेग से उत्पन्न शृंगार की चेष्टा की प्रधानता रहती है।

औदार्य में दान दूसरे का मान, प्रिय भाषण की प्रवृत्ति रहती है।

तेज में शत्रु के द्वारा अपमान और तिरस्कार में प्राणों की बलि देकर भी न सह सकने की क्षमता होती है।[१]

सीताराम चतुर्वेदी ने अभिनव नाट्यशास्त्र में शोभा, विलास, माधुर्य, गाम्भीर्य, स्थिरता, तेज, ललित, औदार्य, इन सात्त्विक गुणों का होना अनिवार्य माना है।[२]

---

१. भरत और भारतीय नाट्य कला, डॉ० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, पृ०१६६

२. अभिनव नाट्य शास्त्र, आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, प्रथम संस्करण, सं० २००८, पृ० १३०

नायक के सामान्य गुण व सात्विक गुणों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि नायक मे समस्त पात्रों से अलग कुछ गुण होना आवश्यक है ।

संस्कृत के नाट्याचार्य नायक में अनेकानेक गुणों का विधान मानते हैं । पाश्चात्य विद्वान भी नायक में कुछ गुणों की अपेक्षा करते हैं ।

आधुनिक हिन्दी नाटक के आचार्य प्रधान पात्र में यद्यपि कुछ विशिष्टताएँ अवश्य रखते हैं लेकिन उनकी दृष्टि में सामान्य पात्र भी कुछ अवगुण रखते हुए भी नाटक में नायक का स्थान ग्रहण कर सकता है । इनकी दृष्टि में संसार का प्रत्येक प्राणी नायक बन सकता है । यह आवश्यक नहीं है कि वह प्रारम्भ से ही कुछ [illegible]ता लिये हुए अवतरित हो । नाटक के अन्त में वह परिस्थितियों से जूझ कर अपने व्यक्तित्व में कुछ विशिष्टता ला सकता है ।

समस्त गुणों से युक्त नायक आज के युग में सिर्फ मनोरंजन ही कर सकता है । दर्शक उसका दर्शन करते हुए सिर्फ कल्पना लोक मे ही विचरण कर सकते हैं । आज नाटक को समाजोपयोगी बनाने के लिये, यथार्थ बनाने के लिये नाटक के नायक में उपर्युक्त कुछ गुणों के साथ साथ उनमे मानव सुलभ दुर्बलताएँ भी दिखाना अनिवार्य माना जाने लगा है । नायक से तभी दर्शक अपना साधारणीकरण कर सकते हैं जबकि वे नायकको अपने जैसा पाकर अपनी यथार्थ परिस्थितियों को सुलझाने में समर्थता का बोध भी इसी प्रकार के नायक से दर्शक प्राप्त कर सकते हैं ।

इस तरह स्पष्ट है कि नाटक में नायक के सहायकों का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इनके सहयोग से ही नायक के चरित्र का विकास होता है ।

नायक के सहायकों का वर्णन प्रत्येक युग के नाटक के आचार्यों ने किया है ।

इन सहायकों के साथ साथ नाटक में प्रतिनायक भी होता है ।

प्रतिनायक –

अत्यन्त दुष्ट प्रवृत्ति का होने के कारण इसे प्रति नायक अथवा खलनायक की संज्ञा से अभिभूषित किया गया है । अंग्रेजी में इसे विलेन कहते हैं –

> "प्रतिनायक का स्वभाव लोभी, दंभी, धीरोद्धत, स्तब्ध (घमंडी, पापी, व्यसनी) होता है । ऐसा दशरूपक, साहित्यदर्पण, नाट्यदर्पण में कहा गया है ।[१]

---

१. लुब्धो धीरोद्धत: स्तब्ध: पाप कृद्व्यसनीरिपु: ।। २।६ ।।

—दशरूपक, पृ० ६१, भोलाशंकर व्यास

२. धीरोद्धत: पापकारी व्यसनी प्रतिनायक: ।। ३-१३

—हिन्दी साहित्य दर्पण, डॉ० सत्यव्रत सिंह, पृ० १६८

३. लोभी धीरोद्धत: पापी, व्यसनी प्रतिनायक: ।। १३।१६६ ।।

— हिन्दी नाट्यदर्पण, पृ० ३०६ ३९५

पश्चिमीनाटकों में प्रतिनायक भी कभी कभी नायक बन जाता है। भारतेन्दु ने पात्रों के आयोजन में पूर्वीय दृष्टिकोण अपनाया है। भारतेन्दु के नाटकों में प्रतिनायक कभी भी सफल नहीं होता वरन् वह दुर्दशाग्रस्त चित्रित किया जाता है।"[1]

इसके अतिरिक्त भारतेन्दु ने मुस्लिम क्रूर पात्रों को प्रतिनायक के रूप में चित्रित किया है। जिनमें अनेकदोष, अवगुण, त्रुटियाँ भरी हुई हैं।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृथ्वीनाथ द्विवेदी प्रतिनायक की परिभाषा देते हुए कहते हैं — "यह लुब्ध धीरोदात्त, स्तब्ध, पाप करने वाला तथा व्यसनी और नायक का शत्रु हुआ करता है।"[2] इसका उदाहरण राम (नायक) रावण (प्रतिनायक), गुलाबराय के अनुसार — "नायक का प्रतिद्वन्द्वी प्रतिनायक कहलाता है, यह सदा धीरोद्धत होता है।"[3]

दशरूपक में धीरोद्धत नायक को ही प्रतिनायक कहा गया है।

---

१. भारतेन्दु के नाटकों का शास्त्रीय अनुशीलन, गोपीनाथ तिवारी, प्र०सं०, १९७१, पृ० ५६

२. नाट्यशास्त्र की भारतीय परम्परा और दशरूपक (धनिक की वृत्ति सहित) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृथ्वीनाथ द्विवेदी, प्र०सं०, १९६३, पृ० १५७

३. हिन्दी नाट्य विमर्श, गुलाबराय, पृ० ३५
~~नाट्यशास्त्र की भारतीय परम्परा और दशरूपक, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृथ्वीनाथ द्विवेदी, पृ० ४७~~

"चौथा नायक धीरोद्धत कहलाता है, वह भी कुछ रूपकों का नायक होता है । नाटक में वह प्रति नायक होता है ।"[1]

शान्तिगोपाल पुरोहित ने प्रतिनायक को धीरोदात्त श्रेणी में रखा है उनका कथन है —

"नायक के शौर्य, प्रतिभा, और ऐश्वर्य सम्पन्नता को चित्रित करने के निमित्त प्रतिनायक भी धीरोदात्त श्रेणी में दिखाई देते हैं ।"[2]

इस तरह नाटक में प्रतिनायक का महत्वपूर्ण स्थान है । प्रतिनायक को अत्यन्त दुर्दशाग्रस्त चित्रित किया जाता है उसके दु:ख अथवा मरण में दर्शकों को कोई भी सहानुभूति नहीं होती ।

प्रतिनायक की परिभाषाओं पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि नाटक में जो पात्र सदैव नायक की फलप्राप्ति में बाधा , उत्पन्न करे, सदैव उससे लड़ने को उद्यत हो वही नाटक का प्रतिनायक है । प्रतिनायक के लिए लोभी, पापी और चपल होना भी संस्कृत के नाट्याचार्य अनिवार्य मानते हैं । परन्तु आज के युग में आधुनिक नाटकों में प्रतिनायक का रूप भिन्न हो गया है । अब वह केवल नायक का शत्रु ही नहीं, सहयोगी भी सिद्ध होता है, बिना प्रतिनायक के नायक का चरित्र स्पष्ट लक्षित नहीं होता । आज

---

१. नाट्यशास्त्र की भारतीय परम्परा और दशरूपक, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृथ्वीनाथ द्विवेदी पृ० ४७

२. हिन्दी नाटकों का विकासात्मक अध्ययन, डॉ० शान्तिगोपाल पुरोहित, प्रथम संस्करण, १९६४, पृ० १३६

की परिस्थितियों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यह अनिवार्य नहीं है कि प्रतिनायक का चरित्र उद्दंड एवं चपल हो । आज के नाटककार नायक के बाद जो दूसरा प्रमुख पात्र होता है उसी को प्रतिनायक मान लेते हैं चाहे वह नायक का शत्रु हो अथवा न हो । चाहे उसके चरित्र में प्रति नायक की चारित्रिक विशेषता हो अथवा न हो । इस तरह आज के युग में प्रतिनायक की परिभाषा का रूप बदल गया है ।

स्वातन्त्र्योत्तर नाटकों में प्रतिनायक का प्रयोग कम हो गया है । अधिकांशत: जिन नाटकों में प्रतिनायक है भी वह भी प्राचीन नाटकों की मान्यता अनुसार नहीं है जैसे - अषाढ़ का एक दिन ,अलग अलग रास्ते, नये हाथ, बड़े खिलाड़ी आदि ।

कुछ नाटकों में प्रतिनायक का स्वरूप वही है जो नाट्यशास्त्र की पुरानी पद्धति में मिलता है जैसे बर्फ की मीनार, छलावा, मन के भंवर, अंधा कुआँ आदि ।

कुछ नाटकों में प्रतिनायक एक व्यक्ति के रूप में ही नहीं वरन् समूह के रूप में भी नायक अथवा नायिका के विरोध करते दिखाई देते हैं , जैसे — रात की रानी, शुतुर्मुर्ग ।

नायक का महत्त्व —

नाटक में नायक का महत्वपूर्ण स्थान है । नाटक की कथा उसी से सम्बन्धित होती है । लेखक के अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति नायक के माध्यम से ही होती है । उसी के चरित्र को लेकर नाटक के भिन्न भिन्न अवयवों

का ढांचा खड़ा किया जाता है। नायक के घटनाओं से दूर रहने पर कथासूत्र विशृंखलित हो जाता है। अतः उससे अछूती नाटक की कोई भी घटना नहीं होती। यदि कोई नाटककार नायक के चरित्रांकन में असफल हो जाता है तो उसका नाटक कभी भी सफल नहीं हो सकता।

"नायक नाटक का वह केन्द्रबिन्दु है, जहाँ से जीवन की किरणों का आलोक फूटता है, जिसमें वीरता का दर्पित तेज होता है, तो प्रभात का मन्द मधुर आलोक भी, और चन्द्र किरणों की उर्मिल स्निग्ध ज्योत्स्ना भी, इन्द्रधनुष की सतरंगी, दुःख सुख मिश्रित छवि उसमें आलोकित होती है। जिस प्रकार कथावस्तु और रस के लिये लोक हृदय संविद्धता आवश्यक है, उसी प्रकार प्रधान पात्र एवं अन्य पात्रों के चरित्र का भी तो वस्तु और उसके रुचि से सृजन होता है। निःसन्देह इस सृजन के मूल में एक आदर्श का भाव अवश्य वर्तमान रहता है।"[1]

इस तरह नायक नाटक का केन्द्रबिन्दु होता है। उसी के मध्य कथा घूमती रहती है। नायक कभी नाटक में न भी उपस्थित हो तब भी उसका प्रभाव समूचे नाटक के कथानक एवं वातावरण पर आच्छन्न रहता है।

प्राचीन साहित्यकार नायक के महत्व को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए शक्तिशाली प्रतिनायक को नहीं उभरने देते थे। आज भी यद्यपि नाटककारों

---

१. भरत और भारतीय नाट्यकला, डॉ० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, पृ० १८८

के अधिक जागरूक, न्यायप्रिय, जनसत्तात्मक भावनाओं से ओत प्रोत होने के कारण प्रतिनायक की असफलता ,नायक की सफलता अनिवार्य नहीं रही तथापि स्वत: रचना में नायक का महत्त्व पूर्ववत [illegible] है ।

भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक में नायक का स्थान दूसरा है । दशरूपककार कहता है -- नाटकों के भेदों के ज्ञापक है - वस्तु, नेता, और रस ।[1]

संस्कृत नाटकों में भी नायक को स्थान मिला है, संस्कृत में अधिकांश: नाटकों का नामकरण ही नायक अथवा नायिका के आधार पर होता है । यह बात पश्चिमी नाटकों में भी देखने को मिलती है, किन्तु तब भी पश्चिमी नाटक में नायक के स्थान पर पात्र या चरित्र चित्रण की संज्ञा दी गई है ।

नायक एक भी हो सकता है , एक से अधिक भी । कभी कभी तो नायक रंगमंच पर बहुत देर तक नहीं आता फिर भी कथा सूत्र उससे सम्बन्धित सुगठित रूप से चलता रहता है ।

---

१. भारतेन्दु के नाटकों का शास्त्रीय अनुशीलन, [illegible] तिवारी, पृ० ५६

घटनाक्रम का संविधान विष्णुकुमार त्रिपाठी ने अपनी पुस्तक नाटक के तत्व सिद्धान्त और समीक्षा में इस प्रकार किया है —

"दर्शक नायक नायिका के भावी जीवन से परिचित होतेरहें , और प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से, नायक के महत्व की प्रतिष्ठा होती रहे, इस रीति का प्रयोग ऐतिहासिक तथा पौराणिक नाटकों में होता है, ऐसे कथानकों में व्यक्ति बहुत महत्वपूर्ण होता है, उसके चरित्र से ही घटनाक्रम का विकास होता है।"[१]

नायक के सम्बन्ध में यह प्रश्न विचारणीय है कि क्या नाटक में फलप्राप्ति अनुपेक्षणीय है ? क्या नेता के लिये फल प्राप्त करना आवश्यक है ? क्या उसे कभी विफलता नहीं प्राप्त हो सकती ? सिद्धान्त रूप में इन प्रश्नों पर शास्त्रकारों ने ध्यान नहीं दिया है, प्रत्येक ने कार्य की सिद्धि को आवश्यक माना है। क्योंकि अवस्था सन्धि अर्थ प्रकृति सभी में कार्य के सम्पादन का आग्रह है।

भरत मुनि ने अपने समय की नाट्य पद्धति के अनुसार नायक की फलप्राप्तिको निश्चय माना है। उनके समय के सभी नाटक सुखान्त थे।

इसके बाद भवभूति के उत्तर रामचरितम् की सृष्टि से नाटककारों का मन बदल गया जिससे फल प्राप्ति की निश्चितता का भाव बदल गया।

---

१. नाटक के तत्व सिद्धान्त और समीक्षा, विष्णुकुमार त्रिपाठी, पृ०९६

अत: धीरे धीरे नायक की फलप्राप्ति की निश्चितता समाप्त हो गई । वैसे हमारे नाटककारों की प्रवृत्ति प्राचीनकाल तक नाटक में नायक को सर्वगुण सम्पन्न दिखाने की ही रही है । अब धीरे धीरे सामाजिक स्थितियों के अनुकूल नायक में मानव सुलभ दुर्गुण दिखाना भी अनिवार्य हो गया है । अत: अब नाटक कार नायकों के माध्यम से समाज की समस्याओं का भी चित्रण करने लगे हैं । दर्शक कल्पनालोक के नायकों में विचरण न कर, यथार्थ धरती पर उठने वाली समस्या से सम्बन्धित नायकों के दर्शन करते हैं ।

इस तरह समाज के अनुकूल नायकों के चित्रण से नाटक में नायक का महत्व और भी बढ़ जाता है ।

द्वितीय अध्याय

भारतेन्दु से लेकर प्रसाद तक के नाटकों में नायक —

१. भारतेन्दु युग

२. द्विवेदी युग

३. प्रसाद युग

४. निष्कर्ष

भारतेन्दु से लेकर प्रसाद तक के नाटकों में नायक

भारतेन्दु युग से ही हिन्दी नाटक साहित्य का आरम्भ होता है । भारतेन्दु से पहले हिन्दी साहित्य में नाटकों का अभाव था । रास लीला, रामलीला ही जनता के मनोरंजन का साधन था । हिन्दी नवोत्थान के कारण हिन्दी साहित्यकारों का ध्यान नाटक साहित्य की ओर गया । प्राचीन नाट्य साहित्य और पाश्चात्य नाट्य साहित्य दोनों से ही आधुनिक नाटककारों ने प्रेरणा ग्रहण की ।

भारतेन्दु युग -

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में भारतेन्दु युग उद्भव और विकास का युग है । राजनैतिक दृष्टि से इस युग में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए । जिसके परिणामस्वरूप जनजागरण हुआ, और अनेक सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिये सुधारवादी आन्दोलन का सूत्रपात किया गया ।

भारतेन्दु युग से पूर्व नाटकीय काव्यों के कथानक केवल पौराणिक थे, परन्तु भारतेन्दु युग में पौराणिक नाटकों के साथ साथ ऐतिहासिक सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना प्रधान नाटक भी लिखे गये । यह युगचेतना का प्रभाव था ।

इस युग के नाट्यशिल्प पर भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों परम्पराओं का प्रभाव पड़ा । कहीं कहीं एक ही नाटककार की विभिन्नकृतियों में दोनों का प्रभाव संश्लिष्ट अथवा अविच्छिन्न रूप से देखा जा सकता है । नाटककार

परिस्थितियों के अनुरोध से पाश्चात्य नाट्यशिल्प को अपनाने के लिये विवश था । साथ ही प्राचीन अथवा परम्परित नाट्य सिद्धान्तों के परिपालन के मोह को भी सहज ही त्याग नहीं सकता था । इसी प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप इस युग के पौराणिक नाटकों में भी नाटककार कहीं कहीं पौराणिकता की केंचुली उतारता दिखाई पड़ता है । मुन्शी तोतारामकृत 'सीता स्वयंबर' नाटक में नायक राम को पारब्रह्म एवं अवतारी रूप में चित्रित किया गया है । चम्पा के मुख से सीता को बताया गया है कि राम विष्णु के अवतार हैं । लेखक ने नायक राम के शील, शक्ति एवं सौन्दर्य का समन्वित रूप उनके व्यक्तित्व में दिखाने का प्रयत्न किया है । वे उदार तथा सहिष्णु हैं । भक्तों का उद्धार करने वाले विष्णु के अवतार भी हैं ।

इसके अतिरिक्त पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र के 'सीता बनवास' नाटक में राम को एक साधारण आदर्श व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है जो लोकाराधक और कर्तव्यपरायण तो हैं ही परन्तु उनमें अधीरत्व साधारण मानवों की तरह विद्यमान है । राम के लिये सीता उनका बल है । उनको एक पल देखे बिना उनका मन अधीर हो उठता है —

> जानकी बिन मुझे यह जान भाती है नहीं
>
> राजभंडार से क्या
>
> जा नहीं सकता इन्हें छोड़ के एक बार कहीं
>
> होता है कष्ट बड़ा
>
> सीता बिन शीत कहाँ लोक में अधियारी है
>
> है यही मेरा तो बल ।।१।।
>
> हाय वह कैसे हैं परदेश में जो रहते हैं
>
> छोड़कर घर में तिया ।

---

१. सीता [illegible] नाटक [illegible]

मित्र इन्हीं के भरोसों पे धराधारी है
जीते सब शत्रु के दल ।।[१]

इसीप्रकार कृष्णचरित प्रधान नाटकों में कृष्ण एक ओर पारब्रह्म के रूप में चित्रित किया गया है, दूसरी ओर उसे धीरललित तथा दक्षिण नायक के रूप में भी दिखाया गया है ।

भारतेन्दु की "श्री चन्द्रावली नाटिका" के कृष्ण का रूप अलौकिक है । यह नाटक नायिका प्रधान है । इसके नायक कृष्ण हैं, कृष्ण पारब्रह्म होते हुए भी धीर ललित नायक हैं, शास्त्रीय दृष्टिकोण से धीरललित के सभी गुण उनमें विद्यमान हैं वे स्वभाव से कोमल ,चन्द्रावली के प्रति आसक्त हैं, भोगी और विलासी हैं ।

शृंगार की दृष्टि से वे दक्षिण नायक भी हैं । दक्षिण नायक किसी नवीन नायिका के सहृदय पूर्ण ही बना रहता है ।

"युगल बिहार" नाटक के नायक भी कृष्ण ही हैं किन्तु इसमें "ललिता" नायिका की तरह बहुत ही अश्लीलता आ गई है,जो कृष्ण के महान् व्यक्तित्व के सामने सर्वथा अनुपयुक्त हैं वैसे कृष्ण का व्यक्तित्व धीरललित गुणों से युक्त है ।

"रुक्मिणी-हरण" और "रुक्मिणी परिणय" इन दोनों नाटकों के नायक कृष्ण हैं । चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इन दोनों नाटकों में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि त्रिपाठी जी ने श्रीकृष्ण को मानवी रूप में चित्रित

---

१. सीता बनवास नाटक, ज्वालाप्रसाद

किया है, और हरिऔध जी ने उनके परम्परागत अलौकिक रूप का । जो उनकी कृष्ण के प्रति श्रद्धा एवं निष्ठा का परिचायक है —

> बानी गननायक सदा रहत जासु बलसोंह
> निस-दिन ताकी बहत हौं सुधी कुटिल सुभोंह
> सुधीकुटिल सुभौंह बहत हौं निसदिन ताकी
> रचनः बहत हरिऔध ग्रन्थ अनुकम्पा जाकी
> रहित सुबास प्रसून सुगन्धित करन प्रमानी
> जासु कृपा अधार देहि सो बर सुधि बानी ।[1]

"रुक्मिणी परिणय" के नायक श्रीकृष्ण द्वारकाधीश हैं जो, अनन्तरूप सौन्दर्य, वीर पराक्रमी साहसी, और एक सच्चे प्रेमी हैं । लेखक ने अपने नाटक को ऐसे ही लोकोत्तर चरित्र को श्रद्धावश समर्पित भी कर दिया है ।

पर क्या करूं जब जी कुछ लिखने पढ़ने को चाहता है तो क्या लिखूं ? तुमसे लोकोत्तर चरित्र किसका है, जो पहले पहल ग्रन्थ लिखने के लिए लेखनी ग्रहण करके उसको लिखूं..... ।"[2]

कृष्ण में लोकोत्तर नायक के गुणों के साथ साथ धीर ललित नायक के भी गुण विद्यमान है । अपनी प्रेयसी रुक्मणी की दशा के विषय में

---

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध . रुक्मिणी परिणय, नांदी पाठ पृ० ४
२. .. .. .. (समर्पण) ।

जानकर वे अत्यन्त उद्विग्न हो जाते हैं और ब्राह्मण से कहते हैं --

"द्विजदेव! प्राणप्यारी रुक्मणी जिसका यह प्रण है --
(टेर चन्द्र इत्यादि पढ़ते हैं) और जिसकी मेरे लिये इतनी उत्कंठा है -
(मृग के वियोग इत्यादि पढ़ते हैं) क्या मेरे विरह के दु:ख से दु:खी
होकर अपने प्राण को त्याग सकती है । हाय !! क्या मेरे जीते प्रिय-
तमा की यह दशा हो सकती है !!! कदापि नहीं । चन्द्रमा के प्रकाशित
रहते भगवती भगीरथी को कब वियोग हुआ है ?"[१]

कृष्ण रसिक प्रेमी ही नहीं है, अत्यन्त वीर पराक्रमी भी है ।
"उन लोगों ने बाल्यावस्था में बड़े बड़े दानवों को खेल में मार लिया,
दुर्धर्ष, अचल, परमबलिष्ठ कंस को देखते देखते मार गिराया । मेरे त्रयो-
विंशति अक्षौहिणी को सत्रह बार ऐसे काट डाला जैसे कृषक खेत्र को
बिना प्रयास काट डालता है ।"[२]

अम्बिकादत्त व्यास की 'ललिता' नाटिका में कृष्ण को रसिक
रूप में चित्रित किया गया है । कार्तिकप्रसाद खत्री के "ऊषा हरण" नाटक
के कृष्ण भी अत्यन्त रसिक हैं । इस प्रकार पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है
कि युग चेतना के अनुसार प्राचीन धारणा में परिवर्तन होना प्रारम्भ हो
गया था । इसी प्रकार शास्त्रीय परम्परा का खंडन भी इस युग में देखने को
मिलता है । प्राचीन धारणा के अनुसार धीरललित नायक को, ब्राह्मण

---

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध - रुक्मणी परिणय
२. ,, ,, ,,

अथवा वैश्य होना अनिवार्य था किन्तु भारतेन्दु के "सत्यहरिश्चन्द्र नाटक" के नायक हरिश्चन्द्र क्षत्रिय वंश के थे ।

ऐतिहासिक नाटकों के नायक भी अधिकांश में पौराणिक नाटकों के नायक की तरह धीरोदात्त हैं । भारतेन्दु युग के अधिकांश नाटकों के नायक में देश के प्रति अदम्य उत्साह, देश प्रेम की भावना दिखाई पड़ती है । "पृथ्वीराज", "महाराणा प्रताप" जैसे नाटक उदाहरण के लिये लिए जा सकते हैं ।

भारतेन्दु युग में भारत, धार्मिक, सामाजिक ,आर्थिक दृष्टि से पतितावस्था को प्राप्त हो रहा था । अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव के परिणाम स्वरूप नवयुवक वर्ग भारतीय धर्म और संस्कृति से विमुख हो पाश्चात्य सभ्यता संस्कृति में रंग, अनेक दुर्व्यसनों का शिकार हो रहा था । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के "गृध्रराज" बालकृष्ण भट्ट का "रसिक लाल" इसी प्रकार के नायक हैं ।

इसलिए युवक वर्ग को पथभ्रष्ट होने से बचाने के लिए पौराणिक कथानकों का आधार लेकर ऐसे नायकों की अवतारणा की गई है जो सत्यपथ पर दृढ़ रह अनेक कष्टों को सहता है । परन्तु धर्म का त्याग नहीं करता । उदाहरण के लिये भारतेन्दु के सत्यहरिश्चन्द्र सत्य की रक्षा के लिये अनेक कष्ट सहते हैं । भारतेन्दु का सूर्यदेव वीर देश भक्त नायक है ।

इस युग के नायकों पर रीतिकालीन प्रणय परम्परा का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है । उनके प्रणय में वही विरह विदग्धता तथा मांसलता वही वर्णन वैचित्र्य है ।

भारतेन्दु युग में अंग्रेजी प्रभाव के फलस्वरूप दुखान्त नाटकों का भी सृजन हुआ। इसके अतिरिक्त भारतीय नाट्य परम्परा के अनुसार रंग-मंच पर मृत्यु दिखाया जाना निषेध है। किन्तु भारतेन्दु ने स्वयं इसका नेतृत्व ग्रहण कर "नीलदेवी", "भारतदुर्दशा" जैसे नाटकों का सृजन किया है। "भारत दुर्दशा" का नायक भारत अन्त में रंगमंच पर ही आत्महत्या कर लेता है, "नीलदेवी" में रंगमंच पर ही राजा सूर्यदेव तथा अमीर अब्दुश्शरीफ की हत्या दिखाई जाती है।

भारतेन्दु युग के नायकों में पाश्चात्य विशेषताएं अधिकांशतः देखने को मिलती हैं। "रणधीर और प्रेममोहनी" का नायक रणधीर रोमांटिक गुणों से युक्त है। सज्जाद और सुम्बुल नाटक का नायक सज्जाद में भी रोमान्टिक नायक के गुण ही है। इसके अतिरिक्त एक महत्व-पूर्ण विशेषता यह है कि वह भारतेन्दु युगीन नाटकों के नायक की भांति राजा या राजकुमार नहीं है, अपितु एक साधारण जमींदार है। इस तरह यह भी मान्यता धराशायी होती दीख पड़ती है।

आगे चलकर "शिक्षा-दान" "जैसा काम वैसा परिणाम", विवाहिता विलाप आदि ऐसे नाटकों का सृजन और हुआ जिसके नायक साधारण व्यक्ति ही हैं। यहां तक कि "अन्धेर नगरी" का नायक चौपट्ट राजा है जो नितान्त मूर्ख, शराबी, बकवादी है। इस तरह भारतेन्दु युग से ही प्राचीन नाटकीय परम्पराओं में परिवर्तन प्रारम्भ हो गया था।

द्विवेदी युग -- में अधिक भव्यचित्र वर्तमान दुर्दशा के खींचे गये, अतीत की दुर्बलताओं अथवा भूलों पर ज्यादा ध्यान न देकर उज्ज्वलपक्ष पर अंकन दृष्टि रही । भारतेन्दु युग की निराशा के स्थान पर आशा व विश्वास से भरा हुआ अतीत सम्मुख आया ।

इस युग में सामाजिक नाटकों की अपेक्षा पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटक अधिक लिखे गये । पौराणिक नाटकों में अधिकांशत: नाटक राम चरित सम्बन्धी हैं । चन्दनलाल अग्रवाल कृत 'नाटक धर्म प्रकाश' में, रामजानकी चरित्र में राम अवतारी होते हुए भी नर लीला करते हैं । इन सभी नाटकों का आधार रामचरित मानस अथवा अध्यात्म रामायण रहा है ।

राम जानकी चरित में नाटककार नाटक के पूर्व ही नायक राम के अवतारी होने का बखान कर देता है । वह कहता है -- "प्रिय देवतागण ! धैर्य करो, मेरी वाणी को श्रवण करो, मैं तुम्हारे हित कारण नरदेह धारण करूंगा, तुम्हारे सम्पूर्ण क्लेश हरूंगा, देखो मैं अयोध्यापुरी के नृपति दशरथ का पुत्र बनूंगा, अपनी शक्ति सहित अवतरूंगा । नर लीला करूंगा ।"[१]

राम विनोद नाटक के नायक भी राम हैं उसमें भी उनके अवतारी रूप का दिग्दर्शन होता है ।

---

१. रामजानकी चरित नाटक, चन्दनलाल ।

"सीता स्वयम्बर" नाटक के नायक भी राम ही हैं, पूरे नाटक में उनके धीरोदात्त उदात्तत्व गुणों को दर्शाया गया है । वीर एवं बलशाली प्रतापी होते हुए भी वे स्वाभिमानी नहीं हैं ,शान्ति के वे साक्षात् स्वरूप हैं । इसका प्रमाण परशुराम के प्रत्युत्तर में मिलता है :-

"धनु को खण्डहर,सुनिये मुनि जो कोपतजि
है कोउ दास तुम्हारा, आज्ञा क्या अब होत त्योंहि ।"[1]

इस तरह सभी नाटकों में राम के अतुलनीय प्रताप का, उनके गम्भीर एवं शान्त स्वभाव का वर्णन हुआ है ।

कृष्णचरित सम्बन्धी नाटक इस युग में मुख्य रूप से दो ही ~~रचे गये~~ हैं । मथुरादास का "रुक्मिणीहरण", माखनलाल चतुर्वेदी का "कृष्णार्जुन युद्ध" ।

"रुक्मिणी ~~परिणय की~~ हरण" नाटक का आधार हरिऔध का रुक्मिणी परिणय ही रहा है । रुक्मिणी परिणय की भाँति ही मथुरादास ने कृष्ण को पूर्ण अवतारी भगवान का स्वरूप माना है । नाटक के प्रारम्भ में ही नटी नट से कहती है -"कृपा करके आज 'रुक्मिणी हरण' नाटक दिखाइये, भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र के चरित्र को सुनाइये ।"[2]

'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक के नायक कृष्ण न होकर देवर्षि नारद हैं । यद्यपि नारद कृष्ण के अनन्य उपासक हैं फिर भी उनके द्वारा होते हुए

---

१. सीता स्वयम्बर नाटक ।
२. रुक्मणी हरण नाटक, मथुरादास ।

अत्याचारों का विरोध करते हैं । उसके अतिरिक्त सत्ताधारियों के मनमाने अत्याचारों का विरोध करते हैं —

सत्ता का दुरुपयोग करने से क्या दुर्घटनाएं होती हैं —यह सब को मालूम हो जाएगा ।

द्विवेदी युग में प्रारम्भ से ही नाटकों में पौराणिकता के स्थान पर सामाजिक प्रभाव अधिक दीखने लगता है, तभी तो 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक में नायक नारद को जन समाज के हित में लगा हुआ दिखाया गया है । उनके गुणों का बखान करती हुई नटी कहती है —

> कहता है संसार विश्व के जनों का सद्गुरु जिसे,
> जगतीतल के दु:खीजनों का अतिशय प्यारा मित्र जिसे,
> हीरा जिसे कृष्ण है,जो रहता है गोपाल,
> भूल रहा अपने को जिनमें,
> जोड़ रहा दु:ख के जाल कहते हैं अत्यन्त प्रिय है,
> जिसके कार्यकुशल अत्यन्त नीतिनिपुण मुनिवर्य वही है,
> इन घटना का नायक जन्य ।[१]

इस युग में दो प्रकार के पौराणिक नायक मिलते हैं, एक तो वह जो प्राचीन भारतीय नाट्य परम्परा का अनुसरण करते हैं, दूसरे वह जो दुर्बल नायक के रूप में हैं । [illegible] वीर अभिमन्यु का अभिमन्यु भीष्म का भीष्म । दुर्बल नायकों में प्रधान चन्द्रहास नाटक का चन्द्रहास है । भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग के समस्त नाटकों में धनुर्धर के समान चन्द्रहास

---

१. कृष्णा[illegible] नाटक, माखनलाल चतुर्वेदी पृ० ५

नाटक भी एक अपवाद है । इसमें पुरानी मान्यताओं का पूर्णतः खंडन हुआ है । इसमें सामाजिक जीवन के अनुरूप नई दृष्टि से चित्रण किया गया है ।

अभी तक नाटकों में नायक की संज्ञा अच्छे पात्रों को ही दी जाती थी किन्तु वेणुसंहार में नायक राजा वेणु अपनी अविवेक शीलता, प्रजा के प्रति क्रूरता आदि भावनाओं को लेकर विनाश को प्राप्त होता है । ऐसे नायकों का सृजन इसयुग की विशेषता है । वैसे यह विशेषता भारतेन्दुयुग में अन्धेर नगरी चौपट्ट राजा में भी देखने को मिलती है ।

इस युग में सामाजिक नाटक कम लिखे गये ।

भारतेन्दु युग के ऐतिहासिक नाटकों के नायक आदर्श, धीरोदात्त आदि आदर्श गुणों से युक्त थे, परन्तु इस युग के नायक धीरोदात्त रोमान्टिक गुणों से युक्त है । रत्नसरोज का नायक सरोज रोमान्टिक गुणों से युक्त है । इस युग के सभी नायक सामान्य जीवन का अनुभव करते हुए साधारण गुणों से युक्त हैं । "वीर अभिमन्यु" नाटक का नायक वीर, साहसी निर्भीक होते हुए भी सहृदय प्रेमी भी है । चक्रव्यूह भेदन के पूर्व वह अपनी पत्नी तिलोत्तमा से मिलने जाता है, किन्तु पत्नी प्रेम के समक्ष कर्तव्य भावना को अधिक महत्त्व देती है । "श्रवणकुमार" नाटक का नायक श्रवण अपने माता पिता का अनन्य सेवक है ।

"कलियुग" नाटक का नायक सुरेन्द्रसिंह आन्तरिक, बाह्य संघर्षों से युक्त है ।

नेत्रोन्मीलन इस युग का एक अकेला नाटक है जिसमें पात्रों की अपेक्षा समस्या पर अधिक बल दिया गया है ।

इस प्रकार द्विवेदी युग में नाटककार ने नायक को सामान्य जीवन की ओर अधिक लाने का प्रयास किया है ।

प्रसाद युग –

हिन्दी नाटक साहित्य का प्रारम्भ यद्यपि भारतेन्दु युग से ही हो जाता है, परन्तु इसका समृद्धकाल प्रसाद युग ही है । प्रसाद जी के समय में एक ओर तो नवयुग प्रवर्तक भारतेन्दु, प्राचीनता के प्रतिबिम्बके रूप में खड़े थे, दूसरी ओर पाश्चात्य नवीन नाट्यकला का प्रभाव पड़ रहा था । प्रसाद ने इन दोनों के समन्वयात्मक रूप का अनुगमन किया । प्रसाद ने भारतीयों का ध्यान अपने स्वर्णिम अतीत की ओर आकृष्ट किया , जिसने राष्ट्रीय एकता में एक नया उत्साह नया विश्वास भर दिया ।

इस युग में महात्मा गाँधी ने राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश करके राष्ट्रीय आन्दोलन का संचालन किया । गाँधी जी के राजनैतिक तथा आध्यात्मिक विचारधारा का प्रभाव इस युग के नाटकों के नायकों पर स्पष्ट लक्षित होता है ।

प्रसाद के नायक प्राय: इतिहास के प्रसिद्ध महापुरुष रहे हैं । जो जीवन में हार नहीं मानते हैं । अत: प्रसाद के नाटक दुखान्त न होकर सुखान्त रहे हैं या प्रसादान्त रहे हैं ।

प्रसाद के पात्रों में सजीवता है । इनके चरित्रों में द्वन्द है । इनके नाटकों के नायकों में जीवन संग्राम में प्रवृत्त हो जूझने की शक्ति है ।

शेक्सपियर की भाँति प्रसाद जी के सभी पात्र अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं एवं वर्गगत वृत्तियों के साथ सामान्य मानव स्वरूप कोस्पष्ट करते हैं । इसके अतिरिक्त बुद्धिवाद के प्रभावस्वरूप एवं यथार्थ के प्रति अनुरोध के कारण नायक अवतारी स्वरूप न धारण करसाधारण मानवी

स्वरूप धारण करते हैं ।

सेठ गोविन्ददास के कर्तव्य (पूर्वार्द्ध) के राम कर्तव्य (उत्तरार्ध) के कृष्ण अवतारी राम व कृष्ण न रह कर, असाधारण गुणों से युक्त आदर्श मानव हैं ।

माताबदल गिरि कृत 'राम रहस्य नाटक' तथा दुर्गाप्रसाद गुप्त कृत रामलीला नाटक के राम यद्यपि अवतारी राम हैं किन्तु ये दोनों नाटककार अपने नाटकों के नायक की पौराणिकता की रक्षा नहीं कर पाए हैं । साधारणतः कृष्ण चरित सम्बन्धी नाटकों में कृष्ण को भी धीरललित, धीरोदात्त गुणों से युक्त बताया गया है । श्रीकृष्ण अवतार ही ऐसा नाटक है जिसमें कृष्ण का अवतारी रूप सामने आया है ।

कन्हैयालाल का "अंजना सुन्दरी" का नायक पवन यद्यपि धीरोदात्त आदि गुणों से युक्त है, फिर भी वह पूर्णतः सर्वगुण सम्पन्न नहीं है, उसमें मानव सुलभ दुर्बलताएं हैं ।

डॉ॰ दशरथ सिंह के अनुसार --*

"प्रसाद के अधिकांश स्त्री और पुरुष पात्र देश प्रेम, संस्कृति प्रेम, सौन्दर्य प्रेम आदि की भावनाओं से अनुप्राणित हैं । पात्रों की सूक्ष्मतम भ्रू भंगिमाओं को व्यक्त करने के लिए उसके नाटक सक्षम हैं । अतः हमें उसके चरित्र का मूल्यांकन करते समय, नाना प्रकार की परिस्थितियों तथा मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाओं को ध्यान में रखना होगा, न कि मूल शास्त्रीय नाम,

---

* ~~हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी नाटक, डॉ॰ दशरथ सिंह 103,108~~

धीरोदात्त, धीर प्रशान्त, धीर ललित आदि की अति सीमित परिधि में बाँधना होगा ।[1]

इस कथन से स्वत: स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद के नायक सीमित परिधि से निकल कर यथार्थ सम्पूर्ण परिवेश में विचरण करते हैं ।

संस्कृत नाटकों में भी नायक को सर्वगुण सम्पन्न ही चोत्रित किया जाता था उसमें कोई भी दोष नहीं रहता था, किन्तु प्रसाद के पात्र न ही सर्वगुण सम्पन्न हैं न हि सर्वथा दोष भरे हैं ।

प्रसाद के स्कन्दगुप्त नाटक का नायक स्कन्दगुप्त जिसमें भारतीय की अपेक्षा पाश्चात्य नाट्य शैली के चरित्र की रेखाएँ दीख पड़ती हैं । नायक स्कन्दगुप्त में,आत्मत्याग, देश प्रेम की भावना, दृढ़ विश्वास, रहस्यमय अलौकिक शक्ति है । उत्साहपूर्ण साहस के साथ साथ उसके अन्त:करण में निरुत्साहित करने वाली वैराग्य की तीव्र भावना भी विद्यमान है, जिसके कारण वह कर्म क्षेत्र से ऊब कर, बौद्धों के निर्वाण, योगियों की समाधि और पागलों की सी सम्पूर्ण विस्मृति की कामना करने वाला है । ....'बीच बीच में पलायन की यह प्रवृत्ति उसे रोमान्टिक नायकों के भावुक एवं आदर्शनिष्ठ व्यक्तित्व से अलंकृत करती है ।'

'जनमेजय का नागयज्ञ' नाटक का नायक परीक्षित का ज्येष्ठ पुत्र जनमेजय है । यह परम तेजस्वी पराक्रमी, उदार धैर्यवान पाप भीरु है । पाप भीरुता का परिचय हमें तब मिलता है, जब उसके हाथों अनायास ही ऋषि की हत्या हो जाती है वह चिल्ला उठता है –

---

1. हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी नाटक, डॉ दशरथ सिंह, पृ॰103-104

डॉ० लक्ष्मणस्वरूप के नलदमयन्ती का नायक नल धीरोदात्त नायक है। वियोगीहरि 'प्रबुद्ध यामुन' का यमुनाचार्य धीरशान्त नायक है। उग्र का 'महात्माईसा' का नायक ईसा प्रगतिशील नायक है। [illegible] पन्त के वरमाला का अपरीक्षित रोमान्टिक नायक है।

इस तरह प्रसादयुग के नायक विभिन्न कोटि के होते हुए प्राचीन भारतीय नाट्यशैली की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। इस युग के नाटककार का प्रयास है नायक के चरित्र को देवत्व के आदर्श की अपेक्षा मानव को यथार्थ धरातल पर लाना।

मृगया

एक अनर्थ हो गया ! हाय रे भाग्य ! आए थे मृगया खेल कर हृदय को बहलाने, यहाँ हो गयी ब्रह्महत्या का महा अपराध ! तपोनिधि ! मेरा अपराध कैसे क्षमा होगा ? आप कौन हैं । आपकी अन्तिम आज्ञा क्या है ? "१

जनमेजय में प्रेम की कोमल भावना है वह वीर और साहसी होते हुए भी भाग्यशाली है ।

प्रसाद की नाट्यशैली को ध्यान में रखते हुए जनमेजय का चरित्र रोमान्टिक नायक की भाँति है, वैसे शास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार वह धीरोदात्त नायक है ।

विशाख नाटक का नायक विशाख भी रोमान्टिक नायक है । समाज सेवा, परोपकार ऐसे उच्च आदर्शों के प्रति उसकी रुचि है । उसके मानस में भी अबाध प्रेम की भावना है ।

आत्मसम्मान उसके लिये अमूल्य निधि है इसी कारण राजा नरदेव के सहचर को मौत के घाट उतार देता है । इस पर चन्द्रलेखा राजदण्ड के भय की याद दिलाती है तो वह अपमान भरे स्वर में कहता है –

"मरण जब दीन जीवन से भला हो
सहें अपमान क्यों फिर इस तरह हम
मनुज होकर जिया धिक्कार से जो
कहेंगे पशु गयाबीता उसे हम" ।२

---

१. जनमेजय का नागयज्ञ, नवाँ संस्करण, जयशंकरप्रसाद, पृ० ३६

२. विशाख, जयशंकरप्रसाद, द्वितीय संस्करण, पृ० ६५

डॉ० लक्ष्मणस्वरूप के नलदमयन्ती का नायक नल धीरोदात्त नायक है । वियोगीहरि 'प्रबुद्ध यामुन' का यमुनाचार्य धीरशान्त नायक है । उग्र का 'महात्माईसा' का नायक ईसा प्रगतिशील नायक है । गोविन्दवल्लभ पन्त के वरमाला का अपरीक्षित रोमान्टिक नायक है ।

इस तरह प्रसादयुग के नायक विभिन्न कोटि के होते हुए प्राचीन भारतीय नाट्यशैली की कसौटी पर खरे नहीं उतरते । इस युग के नाटककार का प्रयास है नायक के चरित्र को देवत्व के आदर्श की अपेक्षा मानव को यथार्थ धरातल पर लाना ।

—

निष्कर्ष –

प्राचीन काल से ही वीरपूजा की भावना सभी देशों में सभी जातियों में किसी न किसी रूप में प्रचलित रही है । यही वीर पूजा की भावना नाटक में नायक के रूप में जन्म लेती है । यही कारण है कि पाश्चात्य और भारतीय नाट्यशास्त्र में नायक को वीर, श्रेष्ठ गुणों से युक्त धीरोदात्त नायक कहा गया है । प्रत्येक नाटक का नायक उच्च गुणों से युक्त एवं असम्भव कार्य को सम्भव करने वाला होता था । प्रतिनायक की तुलना में उसके गुण देवता सदृश होते थे । पाश्चात्य नाट्यशास्त्र के नाटककारों ने नाटक के नायक के गुणों का निर्धारण कर दिया था अत: प्रत्येक नायक में उन गुणों का होना अनिवार्य माना जाता था, किन्तु धीरे धीरे नायक के स्वरूप में परिवर्तन होना आवश्यक हो गया । परिणामस्वरूप भारतेन्दु युग के नाटक का नायक प्राचीन भारतीय नाट्यशास्त्र की परम्परा को ग्रहण करता हुआ न[illegible] के परिप्रेक्ष्य में विचरण करता दिखाई पड़ता है । उसका सम्बन्ध [illegible] से है । वे वर्ग प्रतीक रूप में चित्रित किये गये हैं । उनके [illegible] है, कल्पना है परन्तु यथार्थ का भी समावेश है । उनका चित्रण मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि पर किया गया है ।

तत्कालीन युवकवर्ग को पथभ्रष्ट होने से बचाने के लिये पौराणिक कथानकों का आधार लेकर ऐसे नायकों की अवतारणा की गई है, जो सत्यपथ पर दृढ़ रह अनेक कष्टों को सहते हैं पर धर्म का त्याग नहीं करते । देश को पराधीनता के पाश से मुक्त कराने की प्रेरणा हेतु अनेक वीर ऐतिहासिक नायकों की अवतारणा की गई है । उदाहरणार्थ भारतेन्दु का सूर्यदेव वीर देश भक्त नायक है ।

इसके अतिरिक्त प्रसाद युग में संस्कृत नाटिकाओं की परम्परा में आने वाले, तथा रीति[illegible] नायक-नायिका भेद से प्रभावित नायक दृष्टगत होते हैं । दूसरे प्रकार के नायक पारसी रंगमंचीय नाटक के नायक से

प्रभावित हैं, तीसरे प्रकार के नायकों में आधुनिक सामाजिक भावनाओं का समावेश है। उनमें नवीन चेतना का प्रादुर्भाव हो रहा है। इसलिए वे विपरीत सामाजिक परिस्थितियों में महत्वपूर्ण योगदान करने में समर्थ होते हैं। उनमें देशोत्थान की भावना प्रबल है। वे अपने जीवन और कार्यों से बलिदान के महान् उद्देश्यों की अभिव्यक्ति करते हैं यद्यपि वे प्राचीन परम्परा में पले हैं, बढ़े हैं फिर भी उनमें नवीन चेतना है वह उन्हें संघर्ष का सामर्थ्य प्रदान करती है। उक्त व्यक्तित्व युगानुकूल चेतना में उभर कर हमारे सम्मुख उपस्थित होता है। इस रूप का विकास आगे चल कर द्विवेदी युग में हुआ। द्विवेदी युग में यही आधुनिक चेतना विभिन्न रूपों में सशक्त परम्परा का निर्माण करती हुई तथा जीवन समाज और देश की समस्याओं से जूझती हुई उनका समाधान खोजती हुई दिखाई पड़ती है।

इसके पश्चात् प्रसाद युग के नायक प्रतीकात्मक रूप को लिए हुए मिलते हैं। प्रसाद के 'कामना' नाटक का सन्तोष सन्तोषवृत्ति का प्रतीक है।

प्रसाद जी ने अपनी गवेषणा शक्ति के बल पर जिन नायकों का सृजन किया वह साधारण [illegible] के बस के बाहर की वस्तु है। उनके नायकों में चारित्रिक विकास, [illegible] और वाह्यसंघर्ष है। प्रसाद के नायक देशप्रेम भावुकता और भारतीय लोक मर्यादा से सम्पन्न हैं। प्रसाद के पूर्व नायक के चरित्रों को स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं मिल पाया था। प्रसाद ने पहली बार उन्हें व्यक्तित्व प्रदान किया। इनके नाटकों के नायक को

भारतीय नाट्यशास्त्र की परम्परागत शृंखला में आबद्ध नहीं किया जा सकता ।

प्रसादोत्तरयुग मे हिन्दी नाटककारों में पश्चिमी नाटककारों के दृष्टिकोण के आधार पर व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का आरम्भ हो गया था। प्रसाद युग के अधिकांश नायक आदर्शवादी देशभक्त ,त्यागी, कर्मठ, वीर नायक थे इस युग में अधिकांश नायक किसी समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हुए भी कोई आदर्शवादी समाधान नहीं दे पाते । हरिकृष्ण प्रेमी के नायक हिन्दू मुस्लिम एकय के लिए प्रयत्नशील नायक हैं । सेठ गोविन्ददास के नायक गांधीवादी आध्यात्मिक विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हुए प्रेम, विश्व मैत्री, अहिंसा, संतोष, त्याग आदि द्वारा समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हैं । इस युगके नायक जनता के सच्चे सेवक है । नायक को उच्च कुल में जन्म लेना अनिवार्य नहीं है यहाँ तक कि जो नायक उच्च कुल में जन्म लेते हैं, राजकुमार होते हुए भी उनका व्यक्तित्व ऐसी परिस्थितियों में विकसित होता है कि वे जनता के सेवक बन जाते हैं । उद्धार के हम्मीर कीर्तिस्तम्भ के संग्रामसिंह, शपथ और समाधि के जैनेन्द्र ऐसे ही नायक हैं । स्वतन्त्रता से पूर्व प्रसादोत्तर युग में स्वाधीनता का आन्दोलन तीव्र गति पर था अतः नाटकों के नायकों में उत्कट देश प्रेम की भावना विद्यमान थी किसी युगीन समस्या को लेकर नायक उसका समाधान करने के लिये प्रयत्नशील रहते थे । स्वतन्त्रता के पश्चात देश[illegible] में देश की सुरक्षा संगठन तथा एकता की भावना उत्पन्न करने के लिये अनेक ऐतिहासिक [illegible] नायकों की आवश्यकता के अनुरूप अवतारणा की गई । ये नायक अभिजात कुल के होते हुए भी शासक के अहं अथवा अधिकार लिप्सा की भावना से ग्रस्त न हो जन-सेवक बन, स्वातन्त्र्य रक्षा, उत्थान तथा संगठन में सहायक होते हैं ।

स्वातन्त्र्योत्तर नाटक के नायक अनेक समस्याओं के समाधान में प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। प्रेमी जी का बप्पारावल, ऊँचनीच के भेदभाव को मिटाकर एक मानवता धर्म की स्थापना करता है, उद्धार का नायक हम्मीर विधवा विवाह में सक्रिय सहयोग देता है।

तृतीय अध्याय

प्रसादोत्तर नाटकों में नायक —

१. नायक का परिवर्तित रूप

२. नायक की पुनर्व्याख्या

३. नायक के नये रूप अथवा प्रकार

४. प्रसादोत्तरकाल के प्रमुख नाटककार और
   नाट्यकृतियाँ ।

प्रसादोत्तर नाटकों में नायक :-

जयशंकर प्रसाद के बाद प्राचीन नाट्यकला का प्रभाव धीरे धीरे कम होने लगा और इसके विपरीत पाश्चात्य विचारधारा तथा नाट्य विधान का प्रभुत्व बढ़ने लगा। हिन्दी के यथार्थवादी नाटककारों का हेनरिक इब्सन तथा जार्ज बर्नार्डशा अनुकरण करने लगे। रामलीला, रासलीला तथा नौटंकी आदि अ अर्थात् नाटक के मध्यकालीन रूपों का प्रचार बहुत कम हो गया। पारसी थियेटर कम्पनियों का प्रचार सिनेमा के आगे बहुत कम हो गया। सिनेमा की लोकप्रियता ने हिन्दी के साहित्यिक नाटक को भी कुछ हद तक क्षति पहुँचायी। इस तरह प्रसाद युग समाप्त होने के साथ प्रसाद की भाषा शैली विचार सब कुछ समाप्त हो गया।

प्रसाद युग की समाप्ति के बाद नवीन विचारों के साथ नवीन युग का प्रारम्भ हुआ। विचारों के परिवर्तन के साथ साथ नये नायक की रचना होना स्वाभाविक हो गया। पुरानी लीक पर चली आती नायक सम्बन्धी मान्यताओं का कुछ तो प्रसाद युग में ही खंडन हो चुका था, प्रसाद युग के बाद पुरानी मान्यताएं पूर्णतः समाप्त हो गयीं। अब नायक का उच्च कुल में जन्म लेना अनिवार्य न था। उच्चकुल में जन्म लेने वाला नायक जनता का सेवक ही दिखा दिया जाता था। उद्धार के हम्मीर, कीर्तिस्तम्भ के संग्राम सिंह शपथ और समाधि के जैनेन्द्र ऐसे ही नायक हैं।

नए नाटककारों ने साधारण व्यक्ति को भी नायक के उपयुक्त समझा। अतः आधुनिक नाटकका नायक कोई साधारण से साधारण व्यक्ति भी बन सकता है, किन्तु उसमें जनता की समस्याओं को समझने की क्षमता, एवं समस्या के समाधान करने की शक्ति होनी अनिवार्य है, चाहे वह निम्नकुल का ही क्यों न हो। किसान, मजदूर, अछूत सभी नायक बन सकते हैं। युगीन समस्याओं

के प्रति नाटककार की सजगता इस काल का एक अन्य गुण है ।

नाटककार नायक के माध्यम से किसी समस्या का समाधान प्रस्तुत करने की चेष्टा करते हैं । उदाहरण के लिये सेठ गोविन्ददास के कई नाटकों के नायक गांधीवादी ,आध्यात्मिक विचार धारा का प्रतिनिधित्व करते हुए प्रेम, विश्वमैत्री, अहिंसा, सन्तोष त्याग के द्वारा समस्या का समाधान प्रस्तुत करते दिखाई देते हैं । इस प्रकार प्रसादोत्तर नाटकों में नायक जनता के सच्चे सेवक के रूप में सामने आते हैं ।

देश की परतन्त्रता के कारण लेखकों का राष्ट्रप्रेम की ओर झुकाव होना स्वाभाविक था । फलत: देश प्रेम की भावना दिखाने की प्रवृत्ति भी इस काल के नाटककारों की रही है, यह भावना नायक के माध्यम से ही अधिकांशत: प्रकट की गई है । इसके अतिरिक्त युगीन समस्या को लेकर उसका समाधान करने के लिये प्रसादोत्तर नाटकों के नायक प्रयत्नशील दिखाई देते हैं । स्वातन्त्र्योत्तर काल के पश्चात् देश वासियों में देश की सुरक्षा , संगठन तथा, एकता की भावना उत्पन्न करने के लिये अनेक ऐतिहासिक पौराणिक नायकों की अवतारणा की गई । ये नायक अभिजात कुल के होते हुए भी शासक के अहं अथवा अधिकार लिप्सा की भावना से ग्रस्त होने के स्थान पर जन-सेवक बन स्वातन्त्र्य रक्षा, उत्थान तथा संगठन में सहायक होते हैं । इसके अतिरिक्त इन नाटकों में यह समस्या भी दिखाई पड़ती है कि कौन नाटक का नायक है । ऐसे दो तीन पात्र सशक्त व्यक्तित्व को लेकर खड़े हो जाते हैं जिनमें नायक कौन है ? यह निश्चित करना कठिन है । वैसे यह समस्या प्रसाद युग के कुछ नाटकों में भी दिखाई देती है किन्तु प्रसाद के बाद के अनेक नाटकों में यह समस्या उठ खड़ी हुई है । कोई कोई नाटक तो

ऐसे हैं कि उसमें किसी एक पात्र को विशेष पात्र कहना असम्भव जान पड़ता है, सभी पात्र सामान्य धरातल पर दिखाई देते हैं ।

प्रसादोत्तर युग में कुछ विदेशी पात्रों का भी भारतीय करण कर दिया गया । उग्र जीवन 'महात्मा ईसा' इसका उदाहरण है । आज का नायक केवल वर्ग प्रतिनिधि ही न रह कर व्यक्ति वैचित्र्यवाद से परिपूर्ण भी दिखाई देता है । स्वातन्त्र्ता के बाद के नाटककारों ने अपनी संस्कृति और सभ्यता को समुज्ज्वल रूप में चित्रित करने का प्रयास किया है । अब वे अपने राष्ट्र की प्रशंसा करने के लिए स्वतन्त्र हैं । आज नाटकों के द्वारा भारतीय संस्कृति को अत्यन्त श्रेष्ठ बताया जा रहा है , आज का नायक कहता है —

'जीवन एक संग्राम है । कर्तव्य की जागरूकता उस संग्राम की महत्ता है । व्यक्ति से समाज, समाज से राष्ट्र ऊँचा है । राष्ट्र के आगे व्यक्ति का , जाति का, नगर का, और प्रान्त का कोई मुल्य नहीं है । राजा का व्यक्तित्व कुछ भी नहीं है । वह प्रजा की इच्छा और राष्ट्र की थाती है । राष्ट्र उसकी माता, उसका पिता, उसका गुरु और उसका सर्वस्व है ।[१]

इसके अतिरिक्त प्राचीन संस्कृत नाटकों के नायकों ने जिस आदर्शवाद की प्रतिष्ठा की, वह पाश्चात्य प्रभाव के कारण आधुनिक काल तक आते आते क्षीण पड़ने लगी । आज का नायक आदर्शों की प्रतिमा नहीं चित्रित करता जिसकी पूजा की जा सके । अब तो गुण

---

१. समर विजय, उदयशंकर भट्ट (सेनापति, त्रिपुर का व्यक्तित्व)

दोषों से युक्त मानव की कल्पना ही यथार्थ मानी जाती है, जिससे पात्रों में अनेकरूपता एवं मनोवैज्ञानिक स्वाभाविकता के दर्शन होते हैं। इस प्रकार वह आदर्श एवं संयमित जीवन जहाँ परिस्थितियों की टकराहट से किसी प्रकार का आन्तरिक एवं बाह्य द्वन्द्व उत्पन्न नहीं होता था, अब कल्पित एवं निराधार माना जाने लगा। उसकी जगह अब आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद को स्थान मिला। इस प्रकार नाटक के नायक आदर्श का स्पर्श करते हुए भी यथार्थ के धरातल पर ही विचरण करते हैं। इधर समस्या नाटकों के नायकों में हम नग्न यथार्थवाद का रूप देखते हैं। इस प्रकार के नाटकों में आदर्शवाद का आवरण बिल्कुल उतारकर फेंक दिया गया है। इन नाटकों के नायक अपनी समस्त कमजोरियों, विकृतियों तथा चारित्रिक दुर्बलताओं के साथ चित्रित किये गये हैं।

आज का नायक प्राचीन युग के नायक से बहुत बदल गया है। इसका कारण आज के युग की परिस्थितियाँ हैं। प्राचीन युग का व्यक्ति सीधा सरल आत्मकेन्द्रित था, लेकिन पाश्चमी सभ्यता के प्रभाव तथा सम्पर्क से वह बहिर्मुखी होता चला गया, साथ ही उसके व्यक्तित्व में मन मस्तिष्क में भी परिवर्तन हुआ। यद्यपि यह ठीक है कि उसने अपनी परम्पराओं तथा संस्कारों का सर्वथा परित्याग नहीं किया लेकिन उसमें आधुनिक युग की परिस्थितियों के सम्मिश्रण के कारण कुछ नवीनता तो आ ही गई। यही नवीनता आधुनिक विचारधारा से प्रभावित नाटकों के नायकों में परिलक्षित होती है।

अतः आधुनिक युग में चरित्र चित्रण का विधान अब बदल गया है अब नायक प्रत्येक स्थिति में उच्चवर्ग का ही नहीं होता बल्कि वह हमारे

समाज का जाना पहचाना प्राणी होता है । वह सामाजिक जीवन की परिस्थितियों से संघर्ष करता हुआ उसके अनुसार अपने को ढालता हुआ दिखाई पड़ता है ।

मनोविज्ञान के आविर्भाव के कारण मनुष्य के अवचेतन के स्तर पर स्तर उद्घाटित किये जाने लगे हैं फिर भी आज वर्गीय पात्रों की कमी नहीं है । हाँ आज वर्ग का रूप अवश्य बदल गया है ।

किसान, मजदूर नेता, डॉक्टर, क्लर्क, प्रोफेसर भी किसी न किसी वर्ग से ही सम्बन्धित होते हैं । आज उच्चवर्ग या अभिजातवर्ग के अतिरिक्त मध्यवर्ग या निम्नवर्ग के पात्र भी नायक की संज्ञा प्राप्त कर सकते हैं ।

नायक का परिवर्तित रूप -

प्राचीन नाट्यशास्त्र के अनुसार नायक या तो इतिहास प्रसिद्ध कोई राजा होता था या कोई पौराणिक व्यक्तित्व । सामान्य व्यक्तित्व को नायक बनाने की बात हमारे नाटककार सोच ही नहीं सकते थे, किन्तु आज की परिस्थिति में प्रत्येक पुरुष नायक है चाहे वह जिस वंश का हो क्योंकि आज ऐसे नायक की आवश्यकता है जो समाज में विचरण करता हुआ उसके दुःख सुख को समझे । आज का समाज यथार्थता चाहता है अतः नाटक को यथार्थ बनाने के लिये आवश्यक है कि नायक की गति यथार्थ हो वह कल्पना में विचरण नहीं करे । संस्कृत [illegible] नायक के साथ दर्शक सहज ही तादात्म्य नहीं कर पाता । विशिष्ट गुणों से युक्त नायक को देखकर दर्शक चमत्कृत हो सकता है किन्तु उसके साथ उसका साधारणी-

---

करुणा नहीं हो सकता । तादात्म्य का भाव उन्हीं व्यक्तियों के साथ सम्भव है जो हमारे समान मानव सुलभ दुर्बलताओं से युक्त हों, जिनमें हमें अपना ही प्रतिबिम्ब दिखाई दे । अतः निम्न से निम्नतर और उच्च से उच्चतर प्रत्येक श्रेणी का व्यक्ति नायक बनने का अधिकारी है ।

आज की परिस्थिति में नायक का विजेता अथवा योद्धा होना अनिवार्य नहीं है । उसमें ऐसे नैतिक गुणों का होना अनिवार्य है जिससे समाज के सांस्कृतिक तत्वों का पोषण हो सके । इस तरह आज नायक का सामाजिक जीवन में सांस्कृतिक दृष्टिकोण से महत्व है ।

प्राचीन भारतीय नाटकों में नायक की पराजय कभी नहीं दिखाई जाती थी उसकी विजय होना अनिवार्य था । वह कितनी ही लोमहर्षक परिस्थिति से घिरा हो किन्तु अन्त में उसकी विजय होती ही थी, उसकी विजय पर देवतागण फूलों और आशीर्वादों की वर्षा भी करते थे ।

अब नाटककार की मनः स्थिति समाज के साथ बदल गई है । आजकल के नाटकों का नायक संघर्ष करते हुए कभी विजित होता है तो कभी पराजित । अब नाटककार नायक में मानवसुलभ सबलताओं के साथ दुर्बलताओं का भी निरूपण करते हैं । आज नायक के चरित्र की महानता उसके सद्वंश और उसके वैभव से नहीं परखी जाती बल्कि उसके उच्च मानवीय गुणों की सच्चाई और ईमानदारी से देखी जाने लगी है । अब नायक में देवत्व और राजसी गुणों की अपेक्षा मानवत्व की छाया अधिक है ।

नायक में प्रतिनिधित्व करने की शक्ति होती है, जिसके सहारे वह नाटककार के जीवनदर्शन का प्रतिनिधित्व करता है। वैसे तो जो कुछ नाटककार कहना चाहता है थोड़ा बहुत सभी पात्रों से कहलाता है किन्तु विशेष रूप से नायक ही इसका प्रतिनिधित्व करता है।

प्रत्येक नायक में अपनी कुछ विशिष्टताएँ होती है जिनसे वह अन्य पात्रों की अपेक्षा कुछ विशिष्ट जान पड़ता है, अतः यह कहना गलत है कि न ही नायक का चरित्र इतनी ऊँचाइयों को छूता है कि वह विशिष्ट लगे और न सामान्य पात्र इतना साधारण दीखता है कि उसकी भूमिका नगण्य प्रतीत हो। यदि नायक में चरित्रगत कुछ विशिष्टताएँ न हों तो वह भी सामान्य पात्रों में सम्मिलित कर लिया जाना चाहिये।

अतः नाटककार को नायक की सफलताओं और गुणों के साथ साथ दुर्बलताओं एवं दोषों को दिखाते हुए भी कुछ ऐसी [illegible] अवश्य दिखानी पड़ती हैं जिनके कारण उसकी गणना साधारण वर्गगत पात्र के रूप में नहीं वरन् विशिष्ट पात्र के रूप में की जाए।

होरेस के अनुसार नायक का चरित्र अपरिवर्तनीय होना चाहिये जैसे वह नाटक के प्रारम्भ में निरूपित किया जाए वैसे ही अन्ततक रहना चाहिये। किन्तु यह आज के नाटक में सम्भव नहीं है, क्योंकि अत्यन्त संघर्षमयी शक्ति मयी परिस्थिति आ जाने पर नायक के चरित्र में भी परिवर्तन हो सकता है। उदाहरणतः किसी नाटक का नायक कुख्यात डाकू अंगुलीमाल है, जो नाटक के प्रारम्भ में नृशंस व्यक्ति के रूप में चित्रित-किया जाता है, किन्तु नाटक के अन्त में वह एक विनम्र सज्जन पुरुष बन जाता है, तो क्या नाटक में ऐसे चरित्र परिवर्तन का स्थान नहीं दिया जाएगा।

हमारे यहाँ के नाटकों में नायक को सबसे अधिक उच्च उदार गुणों से युक्त माना गया है। उसमें अभिजात लोगों, भद्र पुरुषों के समस्त गुण आ जाते हैं भद्र पुरुष के लिये उनकी सम्मति से यह अनिवार्य है कि उसे उच्चकुल का होना आवश्यक है किन्तु क्या भद्र पुरुष निम्न कुल का नहीं हो सकता है। कीचड़ से कमल और कोयले से हीरा उत्पन्न होता है। अत: नायक में कुछ विशेष क्षमता होनी चाहिये, उसके वंश और कुल, कोई मान्यता नहीं ~~रखते~~ रखते।

शेक्सपियर के नायकों में कुछ विशेष गुण होते हैं। श्रेष्ठ वंश के अतिरिक्त उनके नायक में असाधारण सहनशक्ति भी होती है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि वे महान पुण्यात्मा होते हैं वरन् वे साधारण व्यक्तियों के गुणों को रखते हुए भी उनसे पृथक जान पड़ते हैं। उनमें वे ही साधारण गुण होते हैं जो हममें हैं किन्तु कल्पना शक्ति के सहारे उनकी महानता उच्च स्तर पर पहुँच जाती है।

शेक्सपियर के नायकों में एकांगिता का दोष है। उनके विचार स्वभावत: एक ऐसी दिशा और ऐसे पक्ष की ओर खिंचते चले जाते हैं कि वे इसके विपरीत कुछ सोच ही नहीं सकते। उनके इसी एकांगी दोष के कारण ही उनकी विफलता होती है। इस घातक त्रुटि के कारण अन्य पात्र भी जो उनके सम्पर्क में आते हैं वे दु:खी होते हैं और अन्त में अपनी जान खो बैठते हैं।

परन्तु उनके इस एकांगी दोष के कारण न हम उनसे घृणा करते हैं न ही हास्यास्पद समझते हैं वरन् इतने पर भी हम उन्हें श्रेष्ठ, प्रतिभा-शाली, तथा महान व्यक्ति मानते हैं।

उनकी विफलता और उनके पतन को देख कर हममें भय, सहानुभूति और करुणा का संचार होता है।

यद्यपि उनका शरीर मृत्यु का ग्रास बन जाता है फिर भी उनकी आध्यात्मिक और मात्मिक शक्ति से प्रभावित हुए बिना हम नहीं रह पाते। उनकी श्रेष्ठता, उनकी प्रतिभा किसी भी दृष्टि से हमारे सम्मुख कम नहीं होती।

नायकों का यह घातक अवगुण केवल दो ही रूप ले सकता है। या तो नायक अकर्मण्य होकर निश्चित व वांछनीय कार्य न करे अथवा वह कार्यशील हो और जानबूझ कर वांछित अथवा निश्चित कर्म करते करते एक अत्यन्त अवांछनीय कर्म कर डाले। नाटक के अन्त होते होते जब नायक स्वयं अपनी आत्महत्या या दूसरों द्वारा अपनी आत्महत्या या दूसरों द्वारा अपनी जान गंवाता है तो वह अपना घातक एकांगी दोष जान लेता है। इस तरह अपनी घातक त्रुटि का प्रायश्चित्त वह अपनी जान खोकर करता है।[१]

कीथ ने वर्गीकृत चरित्र विधान के कारण पूर्णरूपेण यह स्पष्ट कर दिया है कि —

"चरित्र चित्रण के लिए भारतीय नाटकों में यथेष्ट स्थान नहीं है। नायक के उच्चवर्गीय तथा राज परिवार का या राजा होने के कारण नाटकों में सामान्य जीवन का चित्रण सम्भव न था।" [२]

---

१. नाटक की परख, सुरजप्रसाद खत्री, पृ० ३८

२. हिन्दी नाटक, बच्चन सिंह, पृ० २८५

किन्तु अब रस दृष्टि के कारण नायक को सामान्य जीवन के स्तर पर देखना अनिवार्य हो गया क्योंकि विशेष प्रकार के पात्र ही विशेष प्रकार की रस निष्पत्ति में सहायक हो सकते हैं ।

अरस्तू का नायक भी नैतिकता में बंधा होने के कारण विख्यात समृद्ध और गुण सम्पन्न होता है । अरस्तू का कथन है -- भाग्य परिवर्तन में किसी सत्पात्र का सम्पत्ति में पतन न दिखाया जाए । इससे न तो करुणा की उद्बुद्धि होगी, न त्रास की, इससे तो हमें आघात ही पहुंचेगा ।[१]

नाटक के दुष्टपात्र का विपत्ति से सम्पत्ति में उत्कर्ष का चित्रण भी नहीं होना चाहिये ।

किसी प्रतिनायक का पतन दिखाना भी संगत नहीं है । इस प्रकार के कथानक से नैतिक भावना का परितोष अवश्य होगा । करुणा वह त्रास का उद्बोध नहीं हो सकता । क्योंकि करुणा तो किसी निर्दोष व्यक्ति की विपत्ति से ही जागृत होती है । ऐसा व्यक्ति जो अपने दुर्गुण और पाप के कारण नहीं वरन् अपनी भूल या कमजोरी के कारण दुर्भाग्य का शिकार हो जाता है यह व्यक्ति अत्यन्त विख्यात व सद्गम होता है । दर्शकों अथवा पाठकों को इसके प्रति पूरी सहानुभूति होती है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अरस्तू का आदर्श नायक एक विशेष प्रकार का होता है जो सामान्यतः सच्चरित्र होते हुए अपने स्वभाव दोष के कारण दुर्भाग्य का शिकार हो जाता है । इस तरह यह कहना गलत न होगा कि अरस्तू का नायक भारतीय नाटकों के नायकों की सीमाओं में बद्ध है ।

---

१. हिन्दी नाटक-बच्चन सिंह ,पृ० २४५

पाश्चात्य नाटकों का नायक अपनी परिस्थितियों में फँस कर उनसे संघर्ष करता था और उनसे विजय प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करता था। किन्तु प्राच्य नाटकों का नायक अपने सम्मुख एक विशेष कार्य रख कर उसे पूरा करने की ओर प्रयत्नशील होता था। उसमें उसे संघर्ष करना पड़ता है और बाधाओं को भी अतिक्रमण करना पड़ता है।

नायक की पुनर्व्याख्या –

नायक के सम्बन्ध में संस्कृत के काव्यशास्त्र में विस्तार से विवेचन मिलता है। हिन्दी नाटकों के सन्दर्भ में शास्त्रीय स्थापनाओं का अभाव है। हिन्दी के नाटककार और हिन्दी नाटकों के आलोचक शास्त्रीयता के सम्बन्ध में संस्कृत नाटकों का ही सहारा लेते रहे हैं।

संस्कृत नाट्यशास्त्र की स्थापनाएँ आज के युग में कहाँ तक स्वीकृत हो सकती है यह प्रश्न विचारणीय है।

भरत मुनि जिनका काल लगभग ई०पू० दो तीन शताब्दी माना जाता है, के समय की सामाजिक परिस्थिति और आज की सामाजिक परिस्थिति निश्चय ही नितान्त भिन्न है अत: आज के नाटकों में यदि पुरानी मान्यताओं का अनुसरण किया हुआ नहीं दिखाई पड़ता तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, वरन् यह अनुसरण नहीं किया जाना ही ठीक है।

संस्कृत नाट्यशास्त्र में नाटक के लिये मर्यादाएँ स्थापित कर दी गई थीं - "नायक को विनयशील, सुन्दर, त्यागी, कार्य करने में कुशल,

---

वीर, प्रियभाषी, लोकप्रिय, भाषण पटु, उच्चवंश का युवा, साहसी, शूर, तेजस्वी होना आवश्यक था, इन गुणों से विहीन पात्र नायक की संज्ञा से वंचित था।

परिस्थितियों के साथ साथ ये नायक की सीमाएँ भी बदलती गईं। आज के युग में प्रत्येक साधारण प्राणी भी नायक है, उसके लिये कोई सीमाएँ तथा मान्यताएँ नहीं हैं एक गरीब मजदूर कृषक से लेकर मध्यम श्रेणी के जमीन्दार उद्योगपति पूँजीपति, सरकारी नौकर सभी नायक बनने के अधिकारी हैं।

आज की समस्या हमारी समस्या है इन समस्याओं को वही युवक सुलझा सकता है जो हमारे बीच समाज में रहता है चाहें वह गरीब हो चाहे अमीर हो, चाहे गुणी हो अथवा अवगुणी हो। इस कारण पहले की मान्यताएँ आज के युग में पूर्णतः धराशायी हो चुकी है।

आज का युग समष्टि का युग है। आज के युवक में नई चेतना है, नई जागृति है। अब विचारधाराओं में परिवर्तन हो गया है अतः कला का रूप भी बदल गया है। काव्यशास्त्र में भी परिवर्तन हो गया है। भारतेन्दु के गद्ययुग से ही नाटक में यह बदलती हुई परिस्थिति दृष्टिगत होती है।

आज का युग बहुत कुछ कायरों का युग है युवकों में वह पौरुष समाप्त हो चुका है, जिससे कि वह किसी का नेतृत्व ग्रहण कर सकें। यही कारण है कि देश में किसी भी क्षेत्र में कोई भी व्यक्ति अपने में पूर्ण नहीं है, चाहे वह शिक्षा के क्षेत्र में हो, चाहे अध्यापन के क्षेत्र में, चाहे साहित्य के क्षेत्र में। यही समस्या हमारे नाटकों में भी है। कोई ऐसा सशक्त पात्र

नाटक में नहीं होता जिसे सर्वसम्मति से नायक कहा जा सके । नायक में न तो प्राचीन मान्यताएं रहती हैं न ही कुछ ऐसी विशिष्टताएं रहती हैं कि जिनसे समस्त पात्रों में वह विशिष्ट जान पड़े अत: उसके नायकत्व में सन्देह हो जाता है, फलत: नायक की समस्या बनी रहती है । कहीं कहीं ऐसे ऐसे सशक्त पात्र एकत्रित हो जाते हैं जिनमें किसे नायक कहा जाए इसकी समस्या हो जाती है । किन्हीं नाटकों में नारी प्रधान हो जाती है अत: वह नायिका प्रधान हो जाता है । किन्ही नाटकों में तो यह पता लगाना ही कठिन हो जाता है कि अमुक नाटक नायक प्रधान है अथवा नायिका प्रधान । सम्पूर्ण नाटक की परिधि किसी एक विशेष पात्र से सम्बन्धित न होकर समस्त पात्रों के मध्य घूमती रहती है । समस्त पात्र समय समय पर अपनी विशिष्टताओं के साथ सामने आते रहते हैं ।

जैसी कि आज देश की परिस्थिति है ठीक वैसे ही परिस्थिति आज नाटकों के नायक की है । आज देश में कोई ऐसा महापुरुष नहीं है जो देश की बागडोर पूरी की पूरी संभाल सके ठीक वैसे ही नाटकों में कोई एक ऐसा पात्र नहीं है जो नाटक को पूरा का पूरा अपने में समेट सके । इस तरह नाटक के समस्त पात्र ही थोड़े बहुत नायक हैं ।

कुछ नाटक तो ऐसे हैं जिनमें कि नायक अथवा नायिका रंगमंच पर ही नहीं आते 'बड़े खिलाड़ी' नाटक इस तथ्य का उदाहरण है । इसके प्रमुख पात्र राम और उसकी बहुनशीला मास्टरनी रंगमंच पर ही नहीं आते फिर भी नाटक उन्हीं के मध्य घूमता रहता है ।

मोहन राकेश द्वारा लिखित 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में नायक कालिदास प्रारम्भ में रंगमंच पर दिखाई पड़ता है फिर बिलकुल नाटक

के अन्त में मंच पर आता है मध्य में सिर्फ उसकी चर्चा मात्र रह जाती है किन्तु मंच पर उसके दर्शन नहीं होते । यह सब नाटक अपने में एक अनूठे उदाहरण है ।

प्राय: नाटक जिसके नाम से सम्बन्धित है वह नाटक का नायक नहीं होता । उपेन्द्रनाथ अश्क का नाटक 'छठा बेटा' के शीर्षक को पढ़ने से ऐसा लगता है इसका नायक छठा बेटा ही होगा किन्तु नायक बसन्तलाल , उसका पिता है जो मानव की उस आकांक्षा का प्रतीक है जो कभी पूरी नहीं होती । बसन्तलाल का छठा बेटा उनके पास नहीं है इस कारण से अपने अचेतन मन में इस विचार को धारण किये हुए हैं कि यदि उनका यह छटा बेटा होता तो अवश्यमेव ही उनकी सेवा करता । उनका आदर करता , जबकि यथार्थ में ऐसा नहीं हो पाता । इसलिये नाटककार छठे बेटे को नाटक के अन्त में रंगमंच पर स्वप्न के सहारे ला खड़ा करता है

विश्लेषणात्मक दृष्टि से देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि बसन्तलाल का स्वप्न में अपने छठे बेटे की वापसी देखना उनके अचेतनमन की इच्छाओं का अनुरूप है ।

कुछ ऐसे नाटक हैं जिनमें नायक का रूप स्पष्ट ही नहीं हो पाता । विष्णु प्रभाकर का 'टूटते परिवेश' इसका उदाहरण है । इसमें कई पुरुष पात्र हैं विश्वजीत विवेक, अशोक, शरत, विमल किन्तु इन सभी पात्रों में किसी का ऐसा चरित्र नहीं है कि उसे नायक की संज्ञा से अभिभूषित किया जा सके । ऐसे ही नाटकों में 'अब्दुल्ला दीवाना' और है, न ही उसकी कथा कोई अपने में महत्व रखती है ह और न कोई सशक्त पात्र किसी आदर्श के साथ उभरकर सामने आता है सभी पात्र सिर्फ अपने स्थान की पूर्ति करते

हुए दिखाई पड़ते हैं ।

दयाप्रकाश सिन्हा के 'साँभा सवेरा' नाटक में दो नायकों की समस्या है । वैसे कई एक पात्र हैं सभी पात्र अपने अपने व्यक्तित्व में हैं, सभी आदर्शमय हैं । प्रमुख पात्र बापू और उनका पुत्र निखिल है । ये दोनों ऐसे सशक्त चरित्र वाले हैं कि इन दोनों में किसे प्रमुख कहा जाए यह कहना कठिन हो जाता है ।[१]

नाटक के ये दो सशक्त पात्र अपने आदर्श का पालन करने में रत हैं । यद्यपि बापू अपने आदर्श का पालन नहीं कर पाता फिर भी उनका चरित्र अपने में महान है । इस तरह इस नाटक के सहारे दो नायकों की समस्या भी खड़ी हो जाती है। कि अधिकांशत: नाटकों में यह समस्या है कि नाटक नायक प्रधान है अथवा नायिका प्रधान । लक्ष्मी-

---

१. बापू बड़ी सच्चाई से नौकरी करता है, उसे घूसखोरी से सख्त नफरत है । इस कारण वह शोभा का विवाह नहीं कर पा रहा । किसी तरह से वह पाँच हजार रूपये जमा कर विवाह करना चाहता है तो निखिल उन रूपयों को चुरा लेता है । उसका कहना है हम दहेज देकर बहन का विवाह नहीं करेंगे । अन्त में बापू परेशान होकर रुपया घूस लेकर उसे उधार का बहाना बताता है । यह कृत्य उसका बेटा बर्दाश्त नहीं कर पाता उसे कार के नीचे ढकेल देता है ।

नारायण मिश्र का 'सिन्दूरी की होली' शील का 'हवा का रुख' हरिकृष्ण प्रेमी का 'छाया' मोहन राकेश का 'लहरों का राजहंस', डॉ० गोविन्ददास का 'विकास' आदि नाटक इस तथ्य के उदाहरण हैं।

'सिन्दूर की होली' नाटक की नायिका चन्द्रकला है। जो अपने एक विशेष व्यक्तित्व में सामने आती है। नायिका चन्द्रकला रजनीकान्त की उखड़ती सांसों के मध्य आकर उसके रक्त से अपनी मांग भर लेती है जबकि वह जानती है कि उसका वैधव्य काल निकट है। इस तरह वह अपने सिन्दूर की होली खेलती है।

पुरुष पात्रों में रजनीकान्त और मनोजशंकर दोनों का चरित्र महत्वपूर्ण है।

रजनीकान्त यद्यपि बार बार रंगमंच पर नहीं आता फिर भी उसके व्यक्तित्व की विशिष्टताओं से दर्शकों को परिचय प्राप्त हो जाते हैं।

मनोजशंकर मानसिक विकृति से पीड़ित है। यह मानसिक विकृति पिता की आत्महत्या के कारण है।

इस तरह पात्रों की विशिष्टता के ऊहापोह में प्रधान किसे कहा जाए यह असम्भव प्रतीत होता है। 'हवा का रुख' नाटक का नायक अमोल बेकारी की समस्या से ग्रसित है, जैसा कि वन्दना के साथ वार्तालाप से स्पष्ट हो जाता है --

दुकानदार के पास जाओ कोई जगह नहीं। कम्पनियों में नोबैकेन्सी, और काम दिलाऊ दफ्तरों में सिफारिश कुछ, दरख्वास्तों

के अम्बार, हजारों हाथों में डिग्रियों के उदास कागज, वन्दना में सोच नहीं पाता अपना और देश का भविष्य ।[1] वन्दना बोहरा डॉक्टर की लड़की है जो एम०बी०बी०एस कर चुकी है, जिसे छोटा दवाखाना खोलने का शौक है । अन्त में इस शौक की पूर्ति वह कीर्तिपुर के अस्पताल में नौकरी करके करती है ।

नायक अमोल भी छोटे मोटे ट्यूशन करके अपनी छोटी बहन, भाभी और पिता की देखभाल करता है ।

इस तरह नायक नायिका के बीच कौन प्रधान है यह स्पष्ट नहीं हो पाता ।

'छाया' नाटक का नायक प्रकाश है जो सहृदय और भावुक विचार का है जिसके फलस्वरूप ज्योत्स्ना और माया के प्रति उसे बहुत जल्द ही दया का भाव उमड़ आता है । उन्हें बहन बनाकर वह उनके कष्ट दूर करना चाहता है । उसकी प्रवृत्ति बड़ी ही उदार है । नारी का वह आदर करता है ।

दूसरी ओर नायिका छाया का व्यक्तित्व अपने में विशिष्ट स्थान रखता है । उसे अपने पतिपर पूरा विश्वास है ।

इस तरह नायक नायिका के गुणों के समक्ष किसे उत्कृष्ट बताया जाए यह कठिन है । मोहन राकेश के लहरों का राजहंस में भी यही समस्या उठ खड़ी हुई है ।

---

1. हवा का रुख, सीस, पृ० ३५

नायक नन्द का चरित्र अनेक विशिष्टताओं को लिये हुए सामने उभरा है। नायिका सुन्दरी का चरित्र भी अपने में पूर्ण है। दोनों के व्यक्तित्व में किसे प्रधान कहें यह [illegible] है।

डॉ० गोविन्ददास का (विकास) नाटक भी अपने में विशिष्ट स्थान रखता है। पूरा का पूरा नाटक स्वप्नवत है। स्वप्न में ही सभी पात्र अपनी विशिष्टताएं लिए हुए कुछ क्षण के लिये आते हैं, रंगमंच पर सिर्फ आकाश और पृथ्वी ही स्थाई रूप से आते हैं। इन सभी पात्रों में किसी को प्रधान पात्र कहा ही नहीं जा सकता। सभी पात्र अपने अपने में पूर्ण हैं। सभी का अपना अपना व्यक्तित्व है।

इस प्रकार विभिन्न नाटकों के नायक देखने से यह पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाता है कि आज नायक के लिये कोई सीमा या बन्धन नहीं है, न ही नायक के लिये कोई पूर्व योजना है कि नायक का अमुक रूप होना ही चाहिये। नायक के विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न रूप हो जाना स्वाभाविक हो जाता है।

नायक का कोई ऐसा [illegible] गुण नहीं है जो समस्त नाटकों के नायकों में होना अनिवार्य माना जाए।

यहाँ तक कि नाटकों की रचना बिना नायक के की जाने लगी है। नाटक के समस्त पात्रों को समानाधिकार दिया जाने लगा है जिससे उसमें कोई प्रमुख पात्र रह ही नहीं जाता। किसी किसी नाटक की कथा तक स्पष्ट नहीं है। अतः इन सभी परिस्थितियों को देखते हुए नायक के लिये किसी मर्यादित रूप का गठन किया ही नहीं जा सकता।

समाज की बदलती हुई परिस्थिति के अनुसार नाटकों का बदलता हुआ रूप हो जाना आवश्यक है क्योंकि यदि नाटक में प्राचीन परम्परा के अनुसार नायक को उच्चकुल व वीर आदि वाली परिभाषा अपनाने को विवश किया जाएगा तो अवश्यमेव नाटक अयथार्थ भासित होगा। श्रोता अथवा दर्शक कल्पना में उड़ाने भरने लगेंगे ,जो हमारे यथार्थ जीवन में घटित परिस्थितियां हैं। उनसे दूर हटि सिर्फ नाटक मनोरंजन का साधन मात्र बनकर रह जाएगा। अत: आवश्यक है कि नायक हमारे समाज का जाना पहचाना प्राणी हो जो यथार्थ जीवन में संघर्ष करता हुआ हमारी परिस्थितियों को समझता हुआ उन्हें सुल-झाने का पूरा प्रयत्न करे। ऐसे नायक के चरित्र से नाटक यथार्थ तो होगा ही साथ ही हमारी नवीन परिस्थितियों को सुलझाने में उपयोगी सिद्ध होगा।

अत: आज समाज अथवा देश की परिस्थितियों को देखते हुए नाटक के नायक का चयन किया जाना चाहिये। आज समाज में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसमें प्रतिनिधित्व करने की क्षमता हो। अत: नाटक के एक प्रमुख पात्र में समस्त विशिष्टताओं का दिग्दर्शन कराके उसे नायक की संज्ञा देना निरीमूर्खता ही साबित होगी। नाटक का नायक कुछ गुणों के साथ साथ मानव सुलभ दुर्गुणों को भी लिये हुए हो। नायक कठिन परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए सदैव विजित ही न हो वरन् पराजित भी हो जैसा कि हमारे समाज अथवा देश में होता है।

आज हमारे समाज के अधिकांश व्यक्ति गरीबी का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अत: ऐसे में यदि नायक को भी गरीब दिखाया जाए

तो दर्शकों का उसके साथ साधारणीकरण हो सकता है , अन्यथा उसके ऐश्वर्य एवं अमीरी में सिर्फ चमत्कृत होने की क्षमता ही दर्शक गण रख सकते हैं ।

अतः अब नायक का चयन निम्न वर्ग से भी किया जाने लगा है । एक गरीब मजदूर, किसान, सभी नायक बनने के अधिकारी हैं ।

अब नाटक के नायक का अन्त दुखान्त भी होता है । पहले नायक कितनी ही कठिन स्थिति में हो किन्तु उसकी विजय अवश्य होती थी । परन्तु आज के युग में नायक विजय के साथ साथ पराजय भी प्राप्त करता है ।

अतः इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए हम नायक की परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं --

"समाज के किसी भी वर्ग का कोई भी प्राणी जो विशेष परिस्थितियों से संघर्ष करता हुआ अन्य पात्रों की अपेक्षा कुछ निजी विशिष्टताएं रखता हो वही नाटक का नायक है ।"

इसका यह तात्पर्य नहीं है कि नाटक में नायक होना ही अनिवार्य है । यदि नाटक के पात्रों में किसी एक विशेष पात्र में कोई ऐसी विशेषता न दीख पड़ेगी तो उस नाटक की गणना नायक विहीन नाटकों में की जाएगी । आज के अधिकांशतः नाटक नायक विहीन भी हैं, जैसे अब्दुल्ला दीवाना, बकरी, टूटते परिवेश आदि ।

नायक के नए रूप अथवा प्रकार :-

संस्कृत के नाट्याचार्य नायकों में समस्त उत्तम गुणों का विधान मानते हैं । इन्हीं गुणों के आधार पर नायक के भेद करते हैं । यही मान्यता हिन्दी के नाट्याचार्य स्वीकार करते हैं । उनके अनुसार नायक स्वभाव की दृष्टि से ४ प्रकार के होते हैं :-

१. धीरोद्धत

२. धीरोदात्त

३. धीरललित

४. धीर प्रशान्त

सभी के आगे धीर विशेषण लगा हुआ है । उससे कभी कभी भ्रम पैदा हो जाता है कि जो उद्धत है, वह धीर कैसे हो सकता है । उद्धत तो स्वभाव से ही चपल और चंचल होता है । वस्तुत: धीर शब्द का संस्कृत में प्रचलित अर्थ इस भ्रम का कारण है ।

धनंजय और शारदातनय के अनुसार नायक उदात्त चरित्र वाले देवता और दानव होते हैं, किन्तु विश्वनाथ के अनुसार धीरोदात्त नायक देवता और मनुष्य ही होते हैं ।

अब नाटककार नायक में धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीर प्रशान्त एवं धीर ललित की सीमा नहीं मानते इन गुणों से विहीन नायक भी नाटक का नायक बन सकता है । कोई भी पुरुष किन्हीं भी परिस्थितियों में नायक बनने का अधिकारी है । बस उसमें उस परिस्थिति को समझ कर समझौता

करने की शक्ति हो अथवा उसके साथ कोई आदर्श कायम होता हो। उदाहरण के लिये "धरती की महक" का नायक सागर है जो विभिन्न कठिन परिस्थितियों में शान्ति से समझौता करते हुए अपना जीवन व्यतीत करता है। यद्यपि वह पढ़ा लिखा है, शहर में ज्यादा पैसा कमा सकता है किन्तु उसका दृष्टिकोण सुधारवादी है। वह वहाँ रहकर गाँव का सुधार करना चाहता है। इस संघर्ष के फलस्वरूप अन्त में उसे जेल जाना पड़ता है, किन्तु उसका उसे कोई दुःख नहीं है। इस तरह नाटक का अन्त सुखान्त नहीं होता है। दर्शकों की सहानुभूति नायक के प्रति बराबर बनी रहती है। इसी तरह "प्रकाश" नाटक का नायक प्रकाश गरीबी और अमीरी के भेद को मिटाने के लिए उद्यत है। इसके लिए वह बहुत कष्ट झेलता है।

अधिकांशतः आधुनिक नाटकों में नायक अपनी परिस्थितियों को समझ कर उनसे संघर्ष करने की शक्ति रखता है। वह अपने कर्म में सफल रहे अथवा असफल किन्तु संघर्षरत अवश्य रहता है।

अतः आज के युग में हम यह नहीं कह सकते कि नायक में अमुक गुण होना अनिवार्य है, नायक के प्रकारों का निर्धारण भी आधुनिक नाटकों के संदर्भ में कठिन है। परिस्थितियों के अनुसार नायक के गुण और प्रकार बदलते रहते हैं। किसी नायक के कुछ गुण मिलते हैं तो साथ ही साथ दुर्गुण भी मिलते हैं। दुर्गुणों के साथ भी नायक का चरित्र प्रकाशित ही होता है। अतः नायक में केवल गुणों का प्रतिपादन करना नाटक में अयथार्थता लाना है। क्योंकि यथार्थ जीवन में मानव में कुछ न कुछ मानव

१.

सुलभ दुर्बलताएं अवश्य होती हैं ।

प्राचीन नाटककार नायक में बुराई दिखाकर जनता के नैतिक विचारों के आघात नहीं पहुंचाना चाहते थे । किन्तु अब नाटककारों की इस सम्बन्ध में धारणाएं बहुत कुछ बदल चुकी हैं ।

आधुनिक युग में नायक का विधान अब बदल गया है, अब नायक हमारे समाज का जाना पहचाना प्राणी होता है । वह अपने सामाजिक जीवन में अनेक परिस्थितियों से संघर्ष करता हुआ अथवा उसके अनुसार अपने को ढालता हुआ दिखाई पड़ता है । पुरातन समाज व्यवस्था में केवल दो वर्गों में नायक का विभाजन किया गया था —

उच्च वर्ग और निम्न वर्ग ।

अंग्रेजी शासन काल में सामंतीय व्यवस्था के अवसान के साथ हमारे समाज की रूपरेखा बदल गई । इसके फलस्वरूप समाज के कतिपय पुराने स्तरों का पूर्णत: लोप हो गया और अनेक नवीन स्तर प्रकाश में आए । जैसे —

१. अंग्रेजों द्वारा पैदा किये गये जमींदार वर्ग
२. इन जमींदारों के अधीनस्थ किसान
३. कृषक मजदूर
४. दुकानदार
५. साहूकार
६. शहरी [illegible]
७. [illegible]
८. आधुनिक मजदूर
९. छोटे छोटे सौदागर
१०. पेशेवर लोग

इन सब को मिला कर मध्यवर्ग का सृजन किया गया । अब उच्चवर्ग को समाप्त कर नायक को दो ही वर्गों में बांटा गया ।

१. मध्यम वर्ग
२. निम्न वर्ग

मध्यमवर्ग के नायक –

नाटक में प्राय: मध्यम वर्ग के प्राणी ही रहे । वस्तुत: सामाजिक सुधार और राष्ट्रीय चेतना की बागडोर मध्यम वर्ग के ही हाथ में रही । मध्यमवर्ग के आत्म प्रदर्शक नायकों के अतिरिक्त तत्कालीन नाटकों में ऐसे नायकों भी मिलते हैं जो उच्च शिक्षा सम्पन्न, पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित, उच्च सरकारी पदाधिकारी हैं । यह समुदाय, आडम्बर प्रिय होने के साथ साथ आचार विचार और रहन सहन मे पश्चिमी समाज से अभिभूत है । नायक किसी कुसंगति में पड़कर अपना सर्वस्व गँवा बैठता है, लेकिन फिर उसका सुधार होता है ।

तद्युगीन नाटककारों की दृष्टि सुधारात्मक एवं आदर्शवादी थी, अत: नायकों का ऐसा होना स्वाभाविक है । नाटककार ने तटस्थ रह कर नायक के मनोभावों का पतन एवं सुधार का अंकन किया है । नायक मध्यवर्ग की मानवीय सबलताओं एवं दुर्बलताओं का प्रतिरूप है ।

२. निम्नवर्ग के नायक

दहेज देने की असमर्थता लोक लज्जा, रीतिरिवाजों में धन का अपव्यय मनुष्य के जीवन में बवंडर उपस्थित कर देता है । अवांछित सामाजिक रुढ़ियाँ मध्यवर्गीय प्राणी का पतन कर देती हैं । अस्तु वह निम्न वर्ग का

प्राणी माना जाता है। आज नाटक में इस निम्न वर्ग के प्राणी को भी नायक के रूप में चित्रित किया जाता है।

ये तो हुए वर्गगत नायक के रूप। इसके अतिरिक्त और भी नायक के स्वरूप हैं जो इस प्रकार हैं –

सामाजिक नायक –

इसके अन्तर्गत ३ प्रकार के नायक आते हैं –

१. सुधारक,

२. समाजसेवी,

३. लोक सेवी

सुधारक नायक –

सुधारक प्रकृति के नायक युग की आवश्यकतानुसार बने। उस समय समाज जीर्णशीर्ण अवस्था मे था। धर्म में आडम्बर और रीतिरिवाजों में रूढ़ियों ने अपना आसन जमाया था। हिन्दू धर्म का सच्चा अर्थ लुप्त हो गया था इन सब कारणों से नवशिक्षित समुदाय हिन्दू धर्म से विमुख हो कर पाश्चमी सभ्यता एवं धर्म से प्रभावित होने लगा। यह नवशिक्षित समुदाय अंग्रेजी रहन-सहन और तौर तरीके अपनाने लगा। पाश्चमी सभ्यता के अनुसार "फाशनेबुल" बन आधुनिकतम बनने की धुन उन्हें सवार हो गई। इस तरह हिन्दू धर्म और रीतिरिवाजों के प्रति यह नवशिक्षित लोगों में अवज्ञा का भाव आ गया और ये अपनी हिन्दू संस्कृति को हीन दृष्टि से देखने लगे। कुछ लोग तो ऐसे भी थे जो हिन्दू कहलाने मे अपने को अपमानित

समझने लगे और कुछ लोग ऐसे भी थे जो हिन्दू कहलाने में अपने को अपमानित ही नहीं समझते थे बल्कि पश्चिमी फैशन के अनुरूप इन्हें मिथ्या प्रदर्शन तथा वेश्यागमन आदि अनेक बुरे व्यसन लग गये। इसी समय इन सामाजिक रूढ़ियों का बहिष्कार करने और नवशिक्षितों की कुप्रवृत्तियों को रोकने के उद्देश्य से सुधारवादी आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। फलस्वरूप सुधारकों ने विभिन्न साहित्य क्षेत्रों में परिष्कार और परिमार्जन का कार्य किया। इन्होंने हिन्दू धर्म का वास्तविक अर्थ समझाया और अज्ञान से उत्पन्न उनकी कमजोरियों को दूर किया।

इन विभिन्न समाज सुधारकों के प्रतिरूप ही हमें आलोच्य कालीन नायकों में मिलते हैं जिन्होंने हिन्दू सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन एवं भारतीय सभ्यता के अनुरूप समाज के नव संगठन का प्रयास किया। नायक ही समाज की किसी कमजोरी का उद्घाटन और उसका दुष्परिणाम दिखा कर यह ध्वनित करता है कि हमें अमुक बुराई त्याग देनी चाहिये। किन्हीं नाटकों में नायक किसी कारणवश पतित हो जाता है लेकिन उसकी दु:खद स्थिति का ज्ञान करा के अंत में उसे सुधार देता है। कभी कभी सुधारक के रूप में नायक का कोई सच्चरित्र, बुद्धिमान और कर्मठ मित्र भी होता है जो कुमार्गी नायक को नीति की शिक्षा देकर सुमार्ग पर लाता है। इस प्रकार नाटककारों ने पथभ्रष्ट नायकों की अवतारणा कर उसके दुष्परिणामों का दिग्दर्शन कराकर लोगों में सुधार की प्रेरणा जाग्रत की है। या फिर किसी आदर्श नायक की उद्भावना कर उसी आदर्श को ग्रहण करने की प्रेरणा दी है।

समाजसेवी नायक —

यों तो अनेक नायक अप्रत्यक्ष रूप से सुधारक या समाजसेवी ही होते हैं, परन्तु वास्तव में समाजसेवी नायक वे हैं जो स्वयं सामाजिक क्षेत्र में समाजसेवी या सुधारक के रूप में प्रवृत्त होते हैं। इन नायकों में [illegible] रूढ़ियों और मिथ्याचारों को परिमार्जित करने की शक्ति लेखक दिखाता है। नायक अपने युग के विभिन्न सामाजिक पहलुओं में से किसी एक को चुन कर उस गलित अंग का परिष्कार करता दिखाया जाता है। इस प्रकार कुछ नायक नीति, सदाचार की शिक्षा देने में अग्रसर हुए हैं। कुछ धर्म-सुधारक हैं और कतिपय नायक समाज की कुरीतियों का सक्रिय बहिष्कार करने में संलग्न रहे हैं। इस तरह नायक के तीन रूप मिलते हैं —

(क) चरित्र सुधारक —

ऐसा नायक अपने चरित्र बल द्वारा अन्य पात्रों के चरित्र का सुधार करता है। प्रत्यक्ष रूप से इस प्रकार के सभी नायक सुधारने का उद्यम नहीं करते। कुछ नायक समाज की दुर्दशा देख कर प्रत्यक्ष उद्यम कर सार्वजनिक सुधार करते हैं और उसमें अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देते हैं।

(ख) विशिष्ट समाजसेवी —

ऐसा नायक किसी व्यक्ति विशेष, परिवार विशेष या समाज के किसी अंग की दुर्बलता और बुराइयों को चुन कर उसके सुधार का संकल्प करता है।

(ग) धर्म सुधारक नायक :-

सच्चे हिन्दू धर्म को बताने वाले तथा धर्माडम्बरों का पर्दाफाश करने वाले सुधारक के विस्तृत क्षेत्र में आते हैं। स्त्री समानाधिकार के समर्थक बाल विवाह के विरोधी विधवा विवाह के प्रशंसक, अछूतोद्धार दलित वर्ग- आदि का सुधार करने वाले नायक भी इसमें रख दिए जाते हैं। पहले के नायक क्रियात्मक उत्साह सुधार में नहीं दिखाते थे, वे इस प्रकार की सुधार की बातों के प्रशंसक मात्र ही थे पर आधुनिक नायक विचार के साथ कर्म भी करते देखे जाते हैं।

समाजसेवी के साथ जनसेवी नायक भी हैं जो अपने ऐश्वर्य और सुखों को तिलांजलि देकर ग्रामीण तथा पीड़ितों की सेवा करता है। प्रपीड़ित जनता में आत्मचेतना की भावना का संचार करता है। दलितों के उद्धार के लिये जेल की यातनाएँ सहता है। लोगों की कटु आलोचनाएँ सहता है, क्योंकि उसका आन्दोलन अहिंसा पर आधारित है।

ऐसे नायक भी हैं जो निर्माणात्मक कार्य से अधिक विध्वंसात्मक कार्य करते हैं, ये समाज के शोषक पूंजीपतियों और सामाजिक रूढ़ियों का प्रबल विरोध करते हैं। निस्सार, अर्थशून्य रीति रस्मों के ये कट्टर शत्रु होते हैं। ये जाति पाँति का कोई बन्धन नहीं मानते। इन सबके लिये विभिन्न नाटकों में नायक विभिन्न कार्य करते दिखाई देते हैं।

(३) लोक सेवी नायक —

समाज सेवी नायकों के कार्यों में अब अधिक गरिमा आ गई है। उन्होंने अपने क्षेत्र को और अधिक विस्तृत और व्यापक बनाया। उसमें

केवल अपने समाज अपने देश और अपने देशवासियों के कल्याण की कामना नहीं रही, वरन् लोक मंगल और जनसेवा की भी भावना का पोषण हुआ । अतएव इस काल के नायक को हम लोकसेवी नाम से अभिहित कर सकते हैं । नायकों में लोक मंगल की भावना को प्रश्रय देने में तत्कालीन समाजवादी विचारधाराओं का महत्वपूर्ण हाथ रहा है ।

लोक सेवी नायक अपने ऊपर किसी बात का कठोर बन्धन नहीं रखते थे नैसर्गिक भावनाओं का दमन नहीं करते । उनमें प्रेम की नैसर्गिक शुचिता ,गरिमा और भाव प्रवणता होती है । एक ओर लोक सेवा उनके जीवन का मुख्य ध्येय होता है , किन्तु प्रेम उनके इस क्षेत्र में व्यतिक्रम उपस्थित नहीं करता । अनेक नाटकों में यहाँ तक हुआ है कि कर्तव्य के अग्निपथ पर चलते हुए आवश्यकता पड़ने पर नायक के प्यार के कोमल अंकुर को समाप्त कर देने में भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई देता है । उनका सात्विक प्रेम कर्तव्य पथ पर सहायक रहा है, अवरोधक नहीं । अनेक बार तो उनका प्रेम एकत्व और समता की प्रतिष्ठा करने का साधन भी बन गया है ।

इस प्रकार नायक का विकास क्रम इस प्रकार कहा जा सकता है - समाजसुधारक, समाज सेवी, लोकसेवी ।

समाजसेवी के अन्तर्गत ३ प्रकार के नायक हैं - चरित्र सुधारक, विशिष्ट समाजसेवी, धर्म सुधारक । सभी सेवा व्रत नायक ध्यानवर्णनीय हैं जिन्होंने शोषण और पूंजी की निन्दा की है और निम्न वर्ग में आत्मविश्वास और जागरूकता के भाव संचारित किये हैं ।

प्रसादोत्तर काल के प्रमुख नाटककार और नाट्यकृतियाँ --

प्रत्येक युग के नाटककारों ने अपने युगानुकूल नाटकों का सृजन कर नाटक की समृद्धि में पूर्णतः सहयोग दिया । प्रसादोत्तर युग के सभी नाटककार इस ओर सतत् प्रयत्नशील रहे । फलतः अनेक नाटककारों का जन्म हुआ , जिनके विभिन्न विचारों से आज के युग में नाटक की समृद्धि बढ़ती ही जा रही है ।

नाटक के माध्यम से ही हिन्दी नाटककारों के विविध विचार व्यक्त हुए हैं । नाटककारों ने विविध परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उनके अनुकूल नाटकों का सृजन किया है । उनके नाटक सिर्फ हमारे मनोरंजन का साधन मात्र न बन कर हमारे यथार्थ धरातल पर मानवी समस्याओं को सुलझाने में भी समर्थ सिद्ध हुए हैं । प्रमुख नाटककार इस प्रकार हैं :-- लक्ष्मीनारायण मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी, उपेन्द्रनाथ अश्क, उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविन्ददास, वृन्दावनलाल वर्मा, गोविन्दवल्लभ पन्त, जगदीशचन्द्र मिश्र ,पुरुषोत्तम महादेव जैन, सियारामशरण गुप्त, रामावतार चेतन, भगवतीचरण वर्मा, रेवती शरन शर्मा, हरिश्चन्द्र खन्ना, मोहन राकेश, लक्ष्मीनारायण लाल, दशरथ ओझा , रांगेय राघव, मिलिन्द, शील प्रभाकर, रामवृक्ष बेनीपुरी ,चन्द्रप्रकाश सिंह सत्यजित राय, मन्नू भण्डारी रामलक्ष्मण सिंह श्रीयुत ओंकारदास, विमला रैना , सुरेन्द्र वर्मा, विनोद रस्तोगी , दयाप्रकाश सिन्हा, सुशीलकुमार सिंह, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ।

प्रसादोत्तर युग में लक्ष्मीनारायण मिश्र के सिन्दूर की होली, मुक्ति का रहस्य, वत्सराज, वितस्ता की लहरें, गरुणध्वज, सन्यासी, राक्षस

का मन्दिर आदि उनके विशिष्ट नाटक हैं, इनके माध्यम से उनके विविध विचार हमारे समक्ष व्यक्त होते हैं।

नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी के नाटक आदर्श उपस्थित करने वाले हैं। प्रेमी जी ने अपने पात्रों में जहाँ मानव जीवन की साधारण और व्यापक भावनाओं का चित्रण किया है वहीं असाधारण और विशेष भावनाओं को भी चित्रित किया है। प्रेमी जी के प्रधान पात्र प्राय: विचारशील प्रवृत्ति के हैं। उनके हृदय में क्षमा, दया, आदि उदात्त गुण वर्तमान हैं।

वृन्दावनलाल वर्मा हिन्दी के एक सफल नाटककार सिद्ध हुए हैं। उन्होंने नाटक रचना की ओर उस समय ध्यान दिया, जब हिन्दी नाट्य-कला की रूपरेखा अधिकांशत: स्थिर हो चुकी थी। वर्मा जी ने प्राचीन और आधुनिक दोनों कालों को अपने नाटक में स्थान दिया है।

सेठ गोविन्ददास जी के नाटकों की विशेषता है उनके विचार। विचार ही उनके नाटकों का आकर्षक केन्द्र रहा है जिसके चारों ओर घट-नाएं और परिस्थितियाँ एवं पात्र भ्रमण किया करते हैं। 'कर्त्तव्य' में 'कर्त्तव्य, सेवापथ में सेवा' कुलीनता' में 'कुलीनता', स्पर्द्धा' में 'स्पर्द्धा' को ही महत्त्व दिया गया है।

नाटककार उदयशंकर भट्ट के भी नाटकों का साहित्य में अपना एक अलग ही महत्वपूर्ण स्थान है। भट्ट जी के नाटकों का विषयक्षेत्र पौराणिक ऐतिहासिक और सामाजिक रहा है। ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों के माध्यम से उन्होंने भारतीय जनता को देश प्रेम संगठन एकता, मानवता, विवेक और आत्म बल दिया है। सामाजिक नाटकों में समाज में उत्पन्न

नवीन समस्याओं और उनसे संघर्ष की नई भावनाओं और जीवन की जटिलताओं का चित्रण है ।

इस तरह नाटककारों ने अपने विविध विचार नाटक के माध्यम से स्पष्ट कर साधारण जनता के समीप पहुँचाने का सतत् प्रयत्न किया है ।

कुछ नाटककार नाटक में प्रधान पात्र को स्पष्ट रूप से सामने रखते हैं । कुछ प्रधान पात्र स्त्री को मानते हैं । कुछ नाटक कार स्वयं प्रधान-पात्र का निर्धारण नहीं करते वे समस्त पात्रों का चरित्र अपनी अपनी विशिष्टताओं से परिपूरित दिखाते हैं । इनमें कौन प्रधान पात्र है यह समस्या उठ खड़ी होती है ।

अधिकांशत: नाटककारों ने तीनों प्रकार के नाटकों की रचना की है । जैसे लक्ष्मीनारायण मिश्र के कुछ नाटकों में नायक का स्वरूप पूर्णत: स्पष्ट है किन्तु कुछ में नहीं स्पष्ट हो पाता, कुछ में स्त्री प्रधान हो जाती है ।

अधिकांशत: नाटकों में कौन प्रधान पात्र है यह विवादास्पद रहा है ।

प्रमुख नाटककार और उनके प्रमुख नाटकों की सूची इस प्रकार है :-

लक्ष्मीनारायण मिश्र

मुक्ति का रहस्य	१९८९ विक्रम
दशाश्वमेध	१९५० ई०
वत्सराज	१९५१ ई०
सन्यासी	१९६१ ई०
गरुड़ध्वज	१९६४ ई०
सिन्दूर की होली	२००८ वि०
वीरसिंह	२०२४ वि०
अपराजित	२०११ वि०
नारद की वीणा	१९४६ ई०
राक्षस का मन्दिर	
कल्काल	
वितस्ता की लहरें —	१९६९ ई०

हरिकृष्ण प्रेमी—

मित्र	१९४८ ई०
स्वप्न भंग	१९४९ ई०
विषपान	१९५१ ई०
छाया	१९५२ ई०
बन्धन	१९५६ ई०
नईराह	१९५६ ई०
उद्धार	१९५१ ई०
रक्षाबन्धन	१९६५ ई०
साँपों की सृष्टि	१९६६ ई०

---

(१) राक्षस का मन्दिर, कल्काल में सन् नहीं दिया गया है।

दशरथ ओझा

महल और झोंपड़ी १९६८ ई०

रांगेय राघव

रामानुज १९५५ ई०

जगदीशचन्द्र माथुर

कोणार्क १९५१ ई०

मिलिन्द

अशोक की आशा १९७० ई०

किसान १९६२ ई०

सेठ

तीन दिन तीन घर १९६१ ई०

कथा का रूप १९६२ ई०

धर्मवीर भारती

अंधा युग १९५४ ई०

विष्णु प्रभाकर

समाधि १९५४ ई०

युगे युगे क्रान्ति १९६९

चन्द्रहार १९५४ ई०

टूटते परिवेश १९७४ "

[illegible]

[illegible] १९७१ "

[illegible]वाली १९७२ "

<u>शंकर शेष</u>

बन्धन अपने अपने १९७० ई०

<u>सुशीलकुमार सिंह</u>

सिंहासन खाली है १९७४ ई०

<u>सर्वेश्वरदयाल सक्सेना</u>

बकरी १९७४ ई०

<u>ब्रजमोहन शाह</u>

त्रिशंकु १९७३ ई०

<u>विपिनकुमार अग्रवाल</u>

लौटन १९७४ "

---

६. छोटी दीदी, भँवर, राजमुकुट, आहुति, वासवदत्ता का चित्रफलक, अपनी धरती, दीपशिखा , अमरबेल, दर्पन अंधाकुआं, रातरानी, आम्रपाली, बर्फ़ की मीनार ।

२. ऐसे नाटक जिनमें अनेक पात्र प्रमुख हैं :-

सिन्दूर की होली, वीरांगना, मित्र छाया, अंधी गली, बड़े खिलाड़ी, विकास, कोर, धर्मयुद्ध, लहरों का राजहंस, आधे अधूरे, अब्दुल्ला दीवाना, कर्फ्यू मादा कैक्टस, हवा का रुख, अंधायुग, चन्द्रहार, टूटते परिवेश, अंकन-बंधा, बिनादीवारों के घर, शकुन्तला, जिन्दा लाशें भूखे भेड़िया, सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की प्रथम किरण तक , सांझ सवेरा, अन्धा अपने अपने सिंहासन खाली है ।

चतुर्थ अध्याय

नायक प्रधान नाटक -

प्रमुख पात्र - पुरुष

नायक प्रधान नाटक

(प्रमुख पात्र पुरुष)

~~पुरुष~~ — हिन्दी में अनेक नाटक ऐसे लिखे गये जिनमें नायक का स्वरूप पूर्णतः स्पष्ट है।

प्राचीन विचारधारा यही रही है कि नाटक में नायक का स्वरूप पूर्णतः स्पष्ट होना चाहिये, बिना नायक के नाटक सम्भव नहीं है।

ऐसे नाटकों में समस्त पात्रों के मध्य नायक अपनी चरित्रगत विशेषताओं के कारण स्वतः ही अपना स्वरूप स्पष्ट कर देता है। दर्शक अथवा श्रोतागणउसकी महानता के कारण बिना कुछ सोचे ही उसे नायक की संज्ञा से अभिभूषित कर देते हैं।

नायक प्रधान नाटकों में सर्वप्रथम लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटक आते हैं।[१] लक्ष्मीनारायण मिश्र के मुक्ति का रहस्य दशाश्वमेध, वत्सराज सन्यासी, गरुणाध्वज, नारद की वीणा, राक्षस का मन्दिर, कल्कारु, वितस्तता की लहरें, आदि नायक नायक प्रधान नाटकों की श्रेणी में आते हैं।

सर्वप्रथम 'मुक्ति का रहस्य' नाटक में नायक के रूप में उमाशंकर का चरित्र आता है, जिसने एम०ए० कर लिया है। डिप्टीकलक्टरी में भी जिसका नामिनेशन हो गया था, लेकिन असहयोग की लहर में उसने इस्तीफा दे दिया और दो वर्ष के लिए जेल चला गया।

दूसरी ओर आशा देवी का चरित्र नायिका के रूप में आता है। वह साधारण युवती की भाँति बहुत ही भावुक है। आशादेवी उमाशंकर से प्रेम करती है। उमाशंकर उसकी ओर जरा भी ध्यान नहीं देता, तो आशादेवी उसकी बीबी को जहर देकर मार डालती है। वह सोचती है, अब यह मेरी ओर ध्यान देंगे, किन्तु स्वामी जी का ध्यान जरा भी उसकी ओर नहीं जाता। आशा देवी (जहर) इस रहस्य को छुपाने के लिए डाक्टर को अपना सर्वस्व दान कर देती है। वह इस रहस्य को छुपा कर

शर्मा जी के सामने अपने को आदर्श रूप में साबित करना चाहती है किन्तु शर्मा जी पर इन सब का कुछ असर नहीं होता । अन्त में जब आशा देवी उसके व्यक्तित्व से परिचय प्राप्त करती है तो इस रहस्य को उसके सामने रख देती है , फिर भी शर्मा जी अपने विशाल हृदय का परिचय दे उसे माफ कर देते हैं । शर्मा जी यद्यपि उससे प्रेम नहीं करते फिर भी मानवतावश अपने परिवार वालों को छोड़ कर उससे विवाह करने को तैयार हैं, किन्तु [illegible] तैयार नहीं होती वह कहती है - "तुम मेरे उपास्यदेव हो........... तुम्हें छूने का भी अधिकार मुझे अब नहीं................ और फिर मैं डॉक्टर को प्रेम करने लगी हूँ । मेरे लिये वही पहले पुरुष"............... ।[1]

रमाशंकर स्वतंत्र विचारक के रूप में सामने आता है । सामाजिक जीवन व्यक्ति के विकास में बाधक है, उसकी ऐसी अपनी धारणा है । उसका कथन है -

" हमें जिन्दगी का मज़ा नहीं मिलता और नहीं हम खुली हवा में साँस ले पाते हैं । प्रेम करने में पाप है, दान देने में भी पाप है ।"[2]

इस तरह अब उनके व्यक्तित्व की विशिष्टताओं के कारण उन्हें ही इस नाटक का नायक मानना उचित होगा ।

---

१. मुक्ति का रहस्य, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ० ११३

२. वही, पृ० ३३

मिश्र जी का 'दशाश्वमेध' नाटक भी नायक प्रधान है। नाटक में दो महत्वपूर्ण पात्र आए हैं वीरसेन, अंगारक। इन दोनों में वीरसेन का चरित्र नायक रूप में है अंगारक का प्रतिनायक के रूप में। यद्यपि यह शत्रु पताका रखता है, किन्तु कुषाण वंश में नायक पद पर आसीन होता है। इसे नायक बनाने के पूर्व इसकी परीक्षा ली जाती है जिसका प्रमाण इसमें मिलता है -

'आपके भाई कनिष्क ने समझा, मैं अपनी जीविका के लिये उनकी सेना में आया हूँ नायक बनाने के पूर्व मेरी परीक्षा ली गई तब मुझे यह पद मिला है।'[1]

वह अपनी जन्मभूमि को विदेशी दासता से मुक्त कराता है दूसरी ओर कौमुदी के प्रति किये गये प्रण का पालन दृढ़ता से करता है। इसमें उसके दृढ़ संकल्प होने का प्रमाण मिलता है --

'विन्ध्याचल में अष्टभुजा के सामने संकल्प करूंगा....... इस विदेशी राज्य के अंत के लिये। आज के दिन..... ठीक एक वर्ष बाद लौटूंगा। राजपुत्री! आपके नायक के रूप में नहीं....... विजयी नागराज वीरसेन के रूप में...... देवपुत्री तब पुरुष पुर में रहेगी इस पर्व पर भारशिव नागों की पताका फहरायेंगी.......... भगवान शंकर की पताका।'[2]

----

1. दशाश्वमेध, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ० ४०
2. वही, वही, पृ० ४३

वह प्रेम का प्रतिदान नहीं चाहता वरन् उसे वीरता से प्राप्त करता है। कौमुदी उसकी चारित्रिक दृढ़ता से प्रभावित होकर उससे प्रेम करती है क्योंकि वह देखती है वह नारी के प्रति नहीं झुकता। उसे कोई भी नारी आकर्षित नहीं कर पाती। वीरसेन की चारित्रिक दृढ़ता कौमुदी के इस वाक्य से प्रकट होती है --

'किसने कुमारी को नहीं जीत लिया उस एक ने पर उसे कोई नहीं जीत सकी .... गोपियों का वह छैला गोपाल दक्षिण का साधारण नागयुवक.......... कितना बल है उसमें आँखों में न लालसा है और न मन में कोई कामना।'[1]

वीर सेन के दृढ संयमी होने का आभास हमें उसके इन शब्दों में मिलता है --

'दास वह है जो अपनी प्रवृत्ति न रोके............. जो अपने हृदय पर अधिकार न कर सके।'[2]

शंगारक को द्वन्द्वयुद्ध में हराकर वीरसेन कौमुदी को प्राप्त करता है, इस तरह उसकी वीरता स्पष्ट होती है। पहले कौमुदी उससे प्यार नहीं करती किन्तु उसकी वीरता से प्रभावित होकर अन्त में जब उसका सारा परिवार भाग जाता है वह अपनी सेविका नन्दनी के साथ उसकी प्रतीक्षा करती है, उसके गले में जयमाल डाल कर उसकी हो जाती है। इस तरह वीरसेन उसे लेकर अपना अश्वमेध यज्ञ पूरा करता है। इस तरह अपनी प्रतिज्ञा पूरी करता है। सम्पूर्ण दृष्टि से वह नाटक का नायक सिद्ध होता है।

---

1 बलात्कैः- लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ० २७

मिश्र जी का वत्सराज नाटक भी नायक प्रधान है जिसका नायक उदयन है । वह धीर उदात्त संयमी, आदर्श गुणों से युक्त उच्चकुल का प्रतिनिधित्व करने वाला पुरुष है । वह उन समस्त गुणों से सम्पन्न है जो एक आदर्श नायक में होने चाहिये । वह सखा के साथ सखा पत्नी के साथ पति, और नारी जाति का आदर करने वाला युवा पुरुष है । परिस्थिति विशेष में राज-नीतिक आवश्यकता के कारण वह दूसरा विवाह करता है, किन्तु उसका प्रेम, अपनी पूर्व पत्नी की ओर भी रहता है । पद्मावती को वह प्यार अवश्य करता है ,किन्तु उसको इतना स्नेह नहीं दे पाता जितना उसके लिए आव-श्यक है ।

वह एक भावुक युवक है उसकी भावुकता संयम की शृंखला में बद्ध है । भावुक, संयमी होने के साथ साथ वह आदर्शयोगी राजा भी है । वह स्थान - स्थान पर दार्शनिक के रूप में सामने आता है । प्रेम की व्याख्या करते हुए वासव-दत्ता से कहता है —

" प्रणयविकार नहीं है प्रिये ! प्रकृति का सबसे सात्विक धर्म यही है । इस धर्म से भागने वाले प्रकृति के धर्म से भाग रहे हैं । नर और नारी का आकर्षण न केवल मनुष्य योनि में है........ सभी जीव योनियों में है । जीव धर्म नहीं मिटेगा............... मनुष्य के धर्म की मर्यादा मिटेगी ।"[१]

वह बौद्धधर्म पर आर्य धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करने वाला है । वह गीता का अनुगमन करने वाला कर्मयोगी है । वह अपने पत्नी सोमन्धनारायणा को कुमार के मोह से इन शब्दों में मुक्त करना चाहता है —

---

१. वत्सराज, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ० १०८

वह गीता का अनुगमन करने वाला कर्मयोगी है। वह अपने मन्त्री यौगन्धनारायण को कुमार के मोह से इन शब्दों में मुक्त कराना चाहता है --

"गीता की अमृतवाणी तब आप भी भूल गये।[1] फिर कुमार के आचरण से क्या ? गौतम सब कुछ छोड़ कर निर्वाण में आसक्त हो रहे हैं.... .... हमारे पूर्वज तो रण में भी आसक्त न रहे। शंकर की तरह इस विष को उठा कर पी जाइये....... कुमार में भी आसक्त हम क्यों हों ? इतना ही नहीं वह गौतम और धर्म की इस प्रकार भर्त्सना करता है -"मैं काल को निमन्त्रित करता पर गौतम को नहीं। काल का धर्म मैं जानता हूँ..... गौतम का धर्म मेरी समझ में नहीं आता। जन्म लेने का ऋण भरने के लिये जन्म देना होता है........ यहाँ गौतम किशोरों को सिर मुड़ा कर श्रमण बना रहे हैं।"[1]

उदयन वासवदत्ता को चाहते हुए भी, काम के उदात्त भाव से प्रेरित होकर उसे स्वीकार नहीं करता। वह अपने बल पौरुष से उसे अपहृत करके ही अपना मानने को तैयार है।

इस तरह नाटककार ने उसमें विभिन्न विशिष्टताओं को दिखाकर उसे नाटक का नायक [illegible] किया है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'सन्यासी' नाटक भी नायक प्रधान श्रेणी में आता है। विश्वकान्त इस नाटक का नायक है। विश्वकान्त कालेज का विद्यार्थी

---

१. वत्सराज, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ० १२६

तथा महत्त्वाकांक्षी युवक है, साथ ही मानवीय दुर्बलताओं से युक्त भी है। वह एक ओर मनस्वी है तो दूसरी ओर भावुक गीतकार, एक ओर समाजशाही का विरोध करने वाला क्रान्तिकारी सम्पादक है तो दूसरी ओर अपने कौटुम्बिक जीवन से भागने वाला। मालती के पिता के अनुरोध पर वह कहता है--

" किन्तु मैं अपने को बंधना नहीं चाहता। माता के मरे बहुत दिन हुए -याद नहीं पड़ता पिता जी ने अपनी इच्छा से बन्धन कर दिया - अब मनुष्य अब कोई नया बन्धन नहीं चाहता जो बात पहले असम्भव मालूम पड़ती थी वह सुगम हो गई।"[1]

विश्वकान्त मालती से प्रेम करता है जो उसकी कक्षा में पढ़ती है। मालती से रमाशंकर भी प्रेम करता है। इस बात को विश्वकान्त बर्दाश्त नहीं कर पाता। विदेश में रहते हुए उसे उसकी याद झकझोर देती है। मालती के विवाह की सूचना उसके अन्तर्मन को हिला देती है। फिर भी वह अपने को सँभालता है। पत्र द्वारा उसे बधाई भेजता है। मालती के प्रति वह सहानुभूति भावना रखता है। अन्त में इस प्रसंग का अन्त उसके सन्यासी रूप में होता है। वह सन्यासी बन कर संघ की सेवा करने को उद्यत होता है।

इस नाटक में और भी पुरुष पात्र आए हैं --

दीनानाथ, रमाशंकर, सुधाकर, मुरलीधर, मोती। इन सभी में विश्वकान्त का चरित्र महत्वपूर्ण है यही इस नाटक का नायक है।

---

१. सन्यासी, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ० १०६

गरुणाध्वज

लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'गरुणाध्वज' में विदिशा के शत्रु सेनापति विक्रम-मित्र नायक के रूप में आए हैं। नाटक का नायक सर्वशक्ति सम्पन्न होते हुए भी अपनी महत्ता से अधिक अपने राष्ट्रध्वज को महत्व देता है। इसीकारण मिश्रजी ने नाटक का नाम विक्रममित्र न रख कर प्रसिद्ध राष्ट्रध्वज के अनुरूप 'गरुणाध्वज' रक्खा है। यह वही राष्ट्रध्वज है जिसकी मानरक्षा के लिये गुप्त राज्य के बड़े-बड़े सम्राट सेनापति और योद्धा अपने प्राण समर्पण करते रहे हैं। जिस पराक्रमी विक्रममित्र को नायक बनाकर नाटक लिखा गया है वह नित्य ब्रह्ममुहूर्त में उठकर पूजा यज्ञ और अनुष्ठान के बाद गरुणाध्वज को अपनी आँखों से लगाता है।

इस बालब्रह्मचारी योद्धा ने सारे जीवन यह जाना ही नहीं कि रमणी का सुख कैसा होता है। नारी जाति की रक्षा के लिये देशी और विदेशी अत्याचारों से युद्ध किया। अशरण को शरण दी इसके लिए नारी जाति भी अभिवन्द्य है। चाहे वह भारतीय हो अथवा विदेशी हो। यवन कन्या कौमुदी को भगाने वाले अन्तिम शुंग शासक कुमारदेव मुर्ति को विक्रममित्र बन्दी बनाता है। यवन बालिका के अपहरणकर्ता देवभूति को आश्रय देने वाले काशिराज भी विक्रम मित्र के कोप के भाजन बनते हैं। विक्रममित्र अपने चरित्रबल और निःस्वार्थ सेवा से जनता की श्रद्धा का भाजन बनता है। उसके राज्य में अनुशासन भंग करने का साहस किसी को भी नहीं है।

एक दिन एक सैनिक भूलवश विक्रममित्र को महाराज कहकर अनुशासन भंग करता है उस दिन वह भयभीत हो काँपता हुआ कहता है —

"मैंने सेनापति की जगह महाराज जो कह दिया- यह अपराध अक्षम्य है। कदाचित सेनापति विक्रममित्र के राज्यविधान में इससे बड़ा दूसरा कोई भी अपराध नहीं है।"[१]

---

१ गरुणाध्वज, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ० ६

इस प्रकार विक्रममित्र अपने चरित्र के बल से राज्य में सुव्यवस्था और न्याय के प्रति निष्ठा उत्पन्न करता है । उसकी न्यायप्रियता सदाचार, और पराक्रम से यवन विदेशी भी भारत को अपना देश समझने लगे ।

इस तरह अपनी विशिष्टताओं के कारण ही वह इस नाटक का प्रधान पात्र सिद्ध होता है ।

नारद की वीणा –

मिश्र जी के 'नारद की वीणा' नाटक का नायक सुमित्र दुर्बल प्राणी है । वह आश्रम के कठोर नियमों के कारण मन की स्वाभाविक प्रकृति का स्वच्छन्द रूप से स्वागत नहीं करता । उसे वीणा बजाने का बहुत शौक है । चन्द्रभागा उसकी वीणा से आकर्षित हो उसके पास आ बैठती है । वह चन्द्रभागाकी ओर नहीं देखता । अपनी वीणावादन में संलग्न रहता है । इसलिए नहीं कि उसकी ओर आकर्षित नहीं है वरन् इसीलिये कि कहीं देखने से आकर्षण बढ़ न जाए । आचार्य नर उसके आश्रम से भाग जाने पर उसकी इस प्रकृति का विश्लेषण करते हुए उपाध्याय देवदत्त से कहते हैं –

"वो कभी कुमारी की ओर नहीं देखता................ इसलिए नहीं कि वह इन्द्रिय जयी है बल्कि इसलिये कि वह निर्बल है । वह जानता है .... उसकी ओर देख लेने पर वह अपनी रक्षा नहीं कर सकेगा ।"[१]

---

१. नारद की वीणा, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ० ६२

सुमित्र अपनी इस मानसिक दुर्बलता को समझता है जब चन्द्रभागा व्याघ्र के भय से मूर्च्छित हो जाती है उसे उन उठाकर लाता है उसके शारीरिक स्पर्श से वह अपने को संयमित करने के प्रयास में चन्द्रभागा की ओर न देखकर, इधर उधर ही देखता है । उसकी यह दशा देखकर आश्रम के आचार्य उसे सीधे देखने के लिये कहते हैं । उस समय की दशा को वह चन्द्रलेखा से कहता है —

'सीधे देखने में मेरी आँखें जो.......... तुम्हारी खुली बाहों पर पड़ गईं....... पैरों के नीचे से धरती भाग निकली[1]।'

आश्रम वासियों के लिये वह आदर्श है । आश्रम वासियों के लिये वह उपास्य हैं । करुणा के शब्दों में — जिधर से निकल पड़ता था यह धरती और आकाश धन्य हो उठते थे ।'

इस तरह नायक चन्द्रभागा से प्यार करते हुए भी उसे स्पष्ट नहीं कर पाता । मेनका इसमें सह नायिका का कार्य करती है वह आकर इन दोनों के प्रेम प्रसंग के रहस्य को खोलती है दोनों के प्रणय सूत्र में बाधने में समर्थ होती है इस तरह सभी विशिष्ट चरित्रों के मध्य यह नाटक नायक प्रधान है, क्योंकि इसी के माध्यम से नाटककार ने आश्रम के कठोर नियमों की व्याख्या कर इस पर बल दिया है ।

<u>राक्षस का मन्दिर —</u>

मिश्रजी के 'राक्षस का मन्दिर' नाटक का नायक [illegible] मुनीश्वर राक्षस का प्रतीक है । मुनीश्वर के व्यक्तित्व में सबसे बड़ी विशेषता है दूसरों

---

१. नारद की वीणा, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ० २२

से छल करना और अपनी चतुराई के कारण दूसरों को इसका ज्ञान न होने देना । वह अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये पिता, पत्नी, पुत्र, मित्र, प्रेमिका समाज सभी से छल करता है । परन्तु कोई भी उसकी यथार्थ प्रवृत्ति को नहीं समझ पाता । प्रत्येक उचित अनुचित उपाय द्वारा अपना काम निकालने पर भी वह समाज का सम्मानित पात्र है । इस प्रकार वह समाज के उस वर्ग का प्रतीक है जो जीवन संघर्ष में अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिये दूसरों की सरलता से लाभ उठाता है । समाज में ऐसे ही व्यक्ति अपनी सक्रियता के कारण प्रतिष्ठित और प्रगतिशील कहलाते हैं । मुनीश्वर इस तरह स्वार्थसिद्धि का प्रतीक है ।

वह अपने को परिस्थितियों के अनुकूल ढालना भली भाँति जानता है । वह अपनी परिस्थितियों से मजबूर हो कर अपने को राक्षस की संज्ञा से अभिभूषित करता है । समय समय पर कहे गये वाक्यों से इस बात का प्रमाण मिलता है । वह जिन्दगी से बहुत ऊब चुका है —

'मालूम होता है मैं नरक में बहर जाऊँगा ।'[1]

x x

'तबियत ऊब गई है । दुनिया में अब ऐसी कोई चीज़ नहीं देख पड़ती जिसके लिए मैं जीता रहूँ ।'[2]

....

---

१. राक्षस का मन्दिर , लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ० ३३
२. वही, वही, पृ० ३३

असगरी से बात करने के मध्य उसकी पत्नी दुर्गावती के उपस्थित हो जाने से पहले तो वह अवश्य घबड़ा जाता है फिर परिस्थिति का सामना भली भाँति करता है ।

वह अब असगरी से प्रेम करता है ।

इस नाटक में और भी पुरुष पात्र आए हैं । रघुनाथ, रामलाल, मिस्टर बेनर्जी भवानीदयाल ,लेकिन इन सबके बीच मुनीश्वर का व्यक्तित्व खुल कर सामने आया है । स्त्री पात्रों में असगरी का चरित्र प्रमुख है । इस तरह राक्षस का मन्दिर नाटक का नायक मुनीश्वर सिद्ध हो जाता है ।

कल्पतरु –

'कल्पतरु' नाटक में मिश्रजी ने छः पुरुष पात्र रखे हैं – रघुवीर शर्मा, चन्द्रमोहन, दीनबन्धु, रामप्रसाद, सोमनाथ, विभूतिभूषण । इन सभी पात्रों में विभूतिभूषण का व्यक्तित्व उत्कृष्ट है अतः वह ही नाटक के नायक हैं । स्त्री पात्रों में ऊषा का चरित्र श्रेष्ठ है अतः वह नाटक की नायिका है । नायिका ऊषा का चरित्र, विभूतिभूषण के सामने मद्धिम पड़ जाता है । अतः नाटक का प्रधान पात्र विभूतिभूषण ही है ।

विभूतिभूषण को कृषि से प्रेम है । अतः वह [illegible] की नौकरी को छोड़ कर कृषि कर्म में संलग्न हो जाता है । वह जयन्ती से प्यार करता है , किन्तु नौकरी छोड़ देने पर वह जयन्ती से विवाह नहीं कर पाता । क्योंकि जयन्ती अधिक धन की चाह रखती है ।

उसे पशुओं से बहुत प्रेम है । उसके घर में २० पशु हैं, वह सबसे बहुत स्नेह रखता है, उसके आठ दिन तक प्रयाग चले जाने से गाय उन आठों दिन भोजन

नहीं करती । जब वह लौट कर स्वयं अपने हाथों से भोजन कराता है, तब वह भोजन ग्रहण करती है, जिसका प्रमाण हमें उषा के कहे वचन से मिलता है—

"माता आठ दिन से नाँद में मुँह नहीं डालती पाँचसेर दूध सूख कर ....।"[1]

वह अपने परिवार की ही देख रेख नहीं करता वरन् दूसरे परिवार पर भी आई विपत्ति में सहायता करता है। क्षयरोग से मरती हुई हरिजन की पत्नी में पुन: प्राणों का संचार करने में विभूतिभूषण का ही हाथ है। दीनबन्धु के शब्दों में विभूतिभूषण के प्रति कथन से यह बात सुस्पष्ट हो जाती है —

"हरिजन नारी के लिये आपने वसूल किया गाँव भर के चन्दे से कुल ५० रुपये मिले थे शेष रकम तो आपकी थी।"[2]

दर्शन के अतिरिक्त धर्म, और सामाजिक स्थिति का उसे अच्छा ज्ञान है। समय समय पर उसके स्वयं के उदाहरणों से उसकी इस विशेषता का पता लगता है। उसे अपने पिता रघुवीर पर अपार श्रद्धा है। यद्यपि वे घर पर नहीं रहते किन्तु नित्य ही उनका ध्यान करके उनके लिए घर पर वह कुछ न कुछ किया करता है।

विभूतिभूषण का त्याग विश्वसनीय है। पिता के आगमन का तार देने वाले डाकिया सोमनाथ को वह प्रसन्न होकर अपना बेटा देने को तैयार हो जाता था है। जयन्ती एवं चन्द्रभूषण को अपनी छोटी लड़की दे देता है।

---

१. कल्पतरु, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ० ३
२. वही, वही, पृ० २३,२४

इस तरह उसमें नायकोचित कई गुण हैं, अतः वही नाटक का नायक है ।

मिश्र जी के वितस्ता की लहरें नाटक का नायक पुरु है । पुरु के व्यक्तित्व और उसके सुचारु रूप से प्रजा की व्यवस्था के सम्मुख, उसका शत्रु अलिक सुन्दर नतमस्तक हो जाता है ।

वितस्तता के तट पर दो विभिन्न जातियों और संस्कृतियों की टक्कर हुई थी जो अपने विधि विधान और जीवन दर्शन में एक दूसरे के विपरीत थीं । यवन सैनिकों में विजय का उन्माद तो पुरु और कैकय जनपद के नागरिकों पर देश के धर्म और पूर्वजों के आचरण की रक्षा का भाव था, दोनों ने एक दूसरे को जाना समझा और बहुत अंशों में बैर मिटाकर शील और सहयोग के बढ़ने का अवसर दिया ।

नाटक में कई पुरुष पात्र हैं --विष्णु गुप्त, पुरु, आम्भी, रुद्रदत्त, भद्रबाहु, शशिगुप्त, अलिकसुन्दर, सिल्यूकस, नियरकस, टियोनस, अश्वकर्ण, अमग्रीव आदि । स्त्री पात्रों में रोक्सणी, तारा, वसन्तसेन आदि हैं । इन सभी पात्र पात्राओं में पुरु का चरित्र ही महान् है, अतः वही नाटक का प्रधान पात्र है ।

पुरु ने विवाह नहीं किया था । ब्रह्मचारी जीवन व्यतीत करते हुए स्त्री की ओर देखना भी पुरु पाप समझता था । जिस समय अलिकसुन्दर तारा को वरण करने का आरोप स्वार्थवश उस पर लगाता है उस समय पुरु विह्वल हो उठता है और कहता है --

"तुम जान लो यह सोने का चन्द्रमा हुआ होगा । उस चन्द्रमा के सामने मैं सोना हूं ।"[१]

---

१. वितस्ता की लहरें, लक्ष्मीनारायण मिश्र , पृ० ११५

उसकी दृष्टि में नारी के प्रति अनुराग पुत्र फल के लिए होता है, वह कहता है --

"कह दिया नारी के प्रति हमारा अनुराग पुत्र के फल के लिए होता है।"[1]

एक ओर जहाँ कलिकसुन्दर अपने कार्य की प्रेरणा स्त्री को मानता है वहीं पुरु स्त्री को धर्म के लिए मानता है, विलासिता के लिये नहीं। वह कहता है - यही कारण था उस दिन जो मैं तुम्हारी सुन्दरी को देखता रहा विलासिता का रूप किस कर्म की प्रेरणा देता है, यही देख रहा था।"[2]

पुरु के राज्य में अपनी पत्नी को छोड़ कर सभी स्त्रियों को माता की दृष्टि से देखा जाता था। पुरु शत्रु के प्रति भी मित्र का भाव रखता था। उसके लिये छल कपट करना धर्म के विरुद्ध था जो ताया के शब्दों में स्पष्ट है --

"मेरी आँख फूल रही है इस धरती में सब कहीं विस्मय है, विजयी शत्रु के प्रति दया और नारी के प्रति आदर।"[3]

सम्पूर्ण नाटक पुरु की विशेषताओं को लिये हुए है। इस तरह वे नाटक के नायक सिद्ध होते हैं।

---

१. वितस्ता की लहरें, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ० १२५
२. वही, वही, वही,
३. वही, वही, वही

हरिकृष्ण प्रेमी के अधिकांशत: नाटकों में नायक का स्वरूप पूर्णत: स्पष्ट है। उनके 'स्वप्नभंग', 'बन्धन', 'नई राह', 'उद्धार', 'रक्षा-बन्धन', 'सांपों की सृष्टि', 'सीमा संरक्षण' 'शिवा साधना', 'अग्नि-परीक्षा', रक्तदान, कीर्ति स्तम्भ', 'ममता' 'शपथ' आदि नाटक नायक प्रधान नाटकों की श्रेणी में आते हैं।

'स्वप्नभंग' नाटक का नायक शाहजहाँ का बड़ा पुत्र 'दारा' है। वह मानवता का पुजारी होते हुए भी दुर्भाग्यवश परिस्थितियों की प्रतिकूलता के कारण दु:ख ही उठाता है। युद्ध की भयानक परिस्थिति में उसका शान्त-प्रिय मन विह्वल हो उठता है। वह साहित्यसेवा के लिये व्याकुल होता है परन्तु कर्तव्य की पुकार और देश की पुकार उसको खींचती है। वह हिन्दु-मुस्लिम ऐक्य से देश को स्वर्ग तुल्य बनाने की कामना से विमुख नहीं हो पाता। वह जीवन भर संघर्षों से जूझता हुआ औरंगजेब द्वारा क्रूरता से मारा जाता है। मृत्योपरान्त उसके सन्देश को प्रकाश में जो मजदूर वर्ग का एक व्यक्ति है, इस प्रकार प्रसारित करता है —

'यहाँ न कोई हिन्दु है न कोई मुसलमान। केवल उस एक' - उस खुदा उस ब्रह्म का कण कण घर में प्रतिबिम्ब है।'[1]

दारा को गद्दी का लोभ नहीं था। जबकि उसका छोटा भाई औरंगजेब गद्दी के लोभ में ही उससे बैर करता है। दारा का कथन है —

---

१. स्वप्नभंग, हरिकृष्ण प्रेमी, पृ० १२८

" मैं सम्राट नहीं मनुष्य बनना चाहता हूं, मनुष्य रह कर सम्राट बनना चाहता हूं । मैं धनी निर्धन विद्वान अविद्वान, छोटे बड़े का भेद मिटाना चाहता हूं । मैं चाहता हूं कि संसार एक मजदूर के पुत्र की मृत्यु के दुःख का अनुभव भी उतना ही करे जितना कि शाहजहाँ की पत्नी की मृत्यु का करता है । "[1]
यही दारा का सुन्दर स्वप्न था, इसी स्वप्न को पूरा करने के लिये वह अपने प्राणों की बाजी लगा देता है, किन्तु यह स्वप्न उसका अधूरा ही रह जाता है ।

इस स्वप्न को पूरा करने के लिये उसकी बीबी नादिरा, उसकी बहन जहाँनारा पूरा सहयोग देती है । इस तरह सभी पात्रों का चरित्र अपने में पूर्ण है । चरित्र में कुछ विशिष्टता होने के कारण ही दारा को प्रधान पात्र मानना उचित है ।

हरिकृष्ण प्रेमी जी के बन्धन नाटक का नायक मोहन, स्वार्थी समाज से मारे गये दुखित मजदूर वर्ग का नेता है । वह एक पढ़ा लिखा नवयुवक है, उसकी वाणी में चामत्कता है । मोहन रायबहादुर लक्ष्मी राम की मिल में काम करता है । रायबहादुर मजदूरों पर मनमाने अत्याचार करते हैं । उन्हें उचित मजदूरी नहीं देते । सभी मजदूर भड़क उठते हैं । मजदूरों का नेतृत्व मोहन करता है । मोहन में एक ओर तो परोपकार की भावना है, दूसरी ओर अपने घर की दरिद्रता से उत्पन्न प्रतिशोध की भावना भी है । अपनी बहन सरला की करुण अवस्था उसके हृदय में उथल पुथल मचा देती है । वह सरला से कहता है -" तुम्हारी यह

---

१. स्वप्नभंग, हरिकृष्ण प्रेमी पृ०२६

फटी हुई साड़ी, तुम्हारे यह रूखे बाल, तुम्हारा यह रक्तहीन शरीर...... । बहन मैं यह रूप नहीं देख सकता ।"[1]

मोहन तीन महीने से बेकार रहता है, घर पर चिट्ठी भेजकर रुपया मांगता है, किन्तु वहाँ से पिता का नकारात्मक उत्तर आ जाता है। इस परिस्थिति में भी मोहन अपनी विधवा सरला बहन का भार सहर्षता से वहन करता है। मोहन सरला से कहता है - "तुम मेरा सब हो बहन। एम०ए० तक पढ़ने के बाद भी इन मजदूरों रह कर मजदूर बन कर मैं काम कर रहा हूँ, वह सब तुम्हारे स्नेह के आशीर्वाद से।"[2]

इतनी दयनीय परिस्थिति में जब मालती समाज सेवा के लिये कुछ गहने ला कर सरला को सौंप जाती है, तो मोहन उसे स्वीकार नहीं करता। उन्हें जाकर खजांची राय को सौंप देता है, खजांची राय उसे चोर कह कर थाने भिजवा देते हैं। वहाँ उसे आठ मास की कड़ी सजा हो जाती है।

प्रकाश के कथनानुसार जब लक्ष्मण रुपये के चक्कर में खजांची राय का खून करना चाहता है, तब भी मोहन आकर यह हत्या अपने ऊपर ले लेता है। प्रकाश कहता है यह छुरी मैंने चलाई, मोहन कहता है मैंने चलाई। फल-स्वरूप दोनों बन्दी बना लिये जाते हैं। नाटक का अन्त बड़े ही सुखान्त ढंग से खजांची राय का हृदय परिवर्तन कराके होता है। जिस मोहन को वह शत्रु समझते थे, उसके गुणों के कारण उसका आदर करते हैं। मोहन के गुणों के सम्मुख सभी को नतमस्तक होना पड़ता है। इस तरह नायकोचित सभी गुणों को देखते हुए मोहन इस नाटक का नायक सिद्ध होता है।

---

१. बन्धन, हरिकृष्ण प्रेमी, पृ० १२

२. वही, वही, पृ० ३२

'प्रेमी' जी के 'नई राह' नाटक का नायक किशोर है। जिसका जन्म गाँव में हुआ है। करोड़ीमल की सहायता से वह बम्बई में रह कर उच्च शिक्षा प्राप्त करता है। उच्च शिक्षा लेने के बाद भी उसका मन गाँव में ही लगा रहता है, उसमें हर तरह से गाँव सुधार की भावना रहती है। करोड़ीमल अपनी बेटी लता का विवाह उसके साथ कर, उसे अपना पूर्ण कारोबार सौंपना चाहते हैं किन्तु किशोर को ऐसा धोखाधड़ी वाला कारोबार पसन्द नहीं है। अतः इस ओर बिना रुचि दिखाए करोड़ीमल और लता को टका सा उत्तर देकर वह अपने गाँव वापस आ जाता है।

किशोर को कृषि के प्रति बहुत ही रुचि है उसका कहना है --

'कृषि की शिक्षा से कोई सस्ता है नहीं। मैं खेती करता हुआ भी स्वाध्याय का कार्य कर सकता हूँ - काव्य रचना के लिये समय और प्रेरणा पा सकता हूँ किसान बन जाने से मेरी मनुष्यता में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा।'[1]

उसे नारी के आँसू से बहुत ही सहानुभूति है जैसा कि वह लता से कहता है --

'नारी के आँसू उसकी सबसे बड़ी शक्ति हैं। तुम्हारे तर्क मेरे हृदय पर कोई प्रभाव नहीं कर सके किन्तु ये अश्रु मेरे पाँव की जंजीर बन गये।'[2]

उसे सम्पत्ति के प्रति कोई लगाव नहीं है। इस सम्बन्ध में उसके विचार सेठ करोड़ीमल के सामने प्रकट होते हैं।

---

१. नई राह, हरिकृष्ण प्रेमी, पृ० २५

२. वही, वही, पृ० ३१

'सम्पत्तिशाली होना भारत का आदर्श कभी नहीं रहा - सेठ जी ! राजमुकुट सर्वस्वत्यागियों के चरणों पर झुकते रहे हैं।'[1]

वह लता से बहुत प्यार करता है, किन्तु उससे विवाह करने को नहीं तैयार है क्योंकि वह अपनी पत्नी को गाँव में लाकर ग्राम सुधार सेवा में लगाना चाहता है, जिसके लिये लता नहीं तैयार हो सकती क्योंकि लता उच्च कुल में ऐश्वर्य धनधान्य के साथ पली है। वह कान्तिमा से कहता है -

'कान्तिमा ! वह महलवाली गद्दों को छोड़कर गाँव की धूल में मेरे साथ कदम से कदम मिला कर चलने को प्रस्तुत हों, प्रस्तुत ही न हों अपितु इसमें आनन्द पावें तो मैं उसका स्वागत करूँगा।'[2]

नाटक का अन्त बड़े ही सुखान्त ढंग से दोनों का हृदय परिवर्तन कराके हुआ है। लता किशोर के मन की करने को तैयार हो जाती है। इस तरह सेठ करोड़ी मल भी मान जाते हैं और लता का हाथ किशोर को दे देते हैं।

इस नाटक में सेठ करोड़ी मल और विनोद का चरित्र भी उभर कर सामने आया है। स्त्री पात्रों में जानकी का चरित्र भी कुछ निखरा है। नायिका लता का चरित्र तो पूरे नाटक में किशोर के साथ रहा है। फिर भी समस्त पात्रों में किशोर का चरित्र अधिक सशक्त है, अतः वही नाटक का नायक है।

---

१. नई राह, हरिकृष्ण प्रेमी, पृ० ४०
२. वही, वही, पृ० ५७

'उद्धार' नाटक के नायक हमीर का व्यक्तित्व हरिकृष्ण प्रेमी ने जन-सेवी के रूप में चित्रित किया है। उसकी माता सुधीरा हमीर को मेवाड़ की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये राजमहलों से दूर झोंपड़ी में पालती है। वह चाहती है उसका हमीर जनता के सुख दुःख का सहचर बने। उसकी इच्छानुकूल हमीर के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। अपने सखा दलपति से कहे निम्न शब्दों में हमीर का मानवता प्रेम अभिव्यक्त होता है --

" मैं मानवता की हत्या करने वाली प्रभुता को ठोकर मार दूंगा। तुम लोगों के हृदय पर राज्य करना ही मुझे तो स्वर्ग साम्राज्य का उपभोग करना है।"[1]

उसे मेवाड़ का सेवक बनना इष्ट है उसका कथन है --

मेवाड़ के भाग्य के कर्णधारों परिस्थिति दुश्चक्र ने मुझे राज सिंहासन पर ला बिठाया है, किन्तु वास्तव में मैं तो आप लोगों का, और सम्पूर्ण लोगों का सेवक हूं। आप लोगों के सहयोग और आशीर्वाद के सहारे ही मैं अपना कर्तव्य निभा सकूंगा।"[2]

वह विधवा राजकुमारी कमला से विवाह करता है। उसकी सम्मति है :--

"समाज की मर्यादा! दुधमुंही बच्चियों का विवाह कर देना और उनके विधवा हो जाने पर उन्हें जीवन के सभी सुखों से वंचित करना, इसे तुम समाज की मर्यादा कहती हो? नहीं कमला, यह घोर अत्याचार है। मैं समाज के पाखण्डों के विरुद्ध विद्रोह करता है।"[3]

---

1. उद्धार, हरिकृष्ण, प्रेमी, पृ० ३८
2. वही, वही, पृ० ७४
3. वही, वही, पृ० ६३

इस तरह विभिन्न विशिष्टताओं को रखते हुए वह नाटक का नायक सिद्ध होता है।

प्रेमी जी के 'रक्षाबन्धन' नाटक का नायक हुमायूं आदर्श पुरुष है। नीति, धर्म, मानवता, दया, उदारता आदि गुणों का वह अवतार है। अपने राज्य और व्यक्तिगत सुरक्षा को खतरे में डाल कर वह कर्मवती की राखी को स्वीकार करता है। सेनापति लाल खाँ से वह कहता है —

'हिन्दुस्तान की तारीख कह रही है कि राखी के धागों ने हजारों कुर्बानियाँ कराई हैं। मैं दुनिया को बता देना चाहता हूँ कि हिन्दुओं के रस्म और रिवाज मुसलमानों के लिये भी उतने ही प्यारे हैं उतने ही पाक हैं।'[1]

इस तरह हुमायूं कर्मवती की रक्षा करने को उद्यत होता है। वह इस राखी को दुनिया के समस्त सुखों, ताकत एवं बादशाहत से बड़ा समझता है। इसके अतिरिक्त वह शत्रुओं को भी स मान्यता देता है। उसका कहना है —

'भाई को ही नहीं दुश्मन को भी गले लगाना चाहिये। दुनिया के हर एक इन्सान को अपने दिल की मुहब्बत के दरिया में डुबा लेना है।'[2]

दूसरा महत्वपूर्ण चरित्र कर्मवती का है जो वीरता के साथ ही साथ हिन्दू मुस्लिम के भेद को मिटाकर मेवाड़ की मर्यादा हेतु हुमायूं को भाई बनाती है, हुमायूं के समय पर न पहुँचने से वह जौहर की ज्वाला में अपने को समर्पित

---

१. रक्षाबन्धन, हरिकृष्ण प्रेमी, पृ० ४७
२. वही, वही, पृ० ११०-१११

कर देती है । इस तरह यह इसकी नायिका है । फिर भी नाटक नायक प्रधान है । इसका नायक वीर हुमायूं है ।

हरिकृष्ण प्रेमी के सांपों की सृष्टि नाटक का नायक है अलाउद्दीन । अलाउद्दीन के जीवन के अन्तिम दिनों की झांकी इस नाटक में प्रस्तुत की गई है । अलाउद्दीन अन्तिम समय में अपनी असफलता में बीते हुए दिनों के प्रति पश्चाताप प्रकट करता है । सम्राट बनने की महत्वाकांक्षा में उसने जो बहुत सी क्रूरतायें तथा अत्याचार किये, और उसकी आकांक्षा सफल भी हुई । पर वही खिल्जी हुकूमत जो तलवार की ताकत से उसने स्थापित की थी मिटने लगी । अतः उसे अपने कार्यों पर पश्चाताप होता है वह कमलावती से कहता है -

"यह हुकूमत तलवार की ताकत से स्थापित की गई है और तभी तक यह स्थिर रह सकती है जब तक तख्त पर बैठने वालों के हाथों में मजबूती से तलवार पकड़ने की ताकत है । जमीनें जीतने के बजाय अगर मैंने दिलों को जीतने का यत्न किया होता तो आज मुझे चिन्ता न करनी पड़ती ।"[१]

अलाउद्दीन अपनी युवा अवस्था के उन्माद में सभी को मुसलमान बनाना चाहता था । हजरत मोहम्मद की तरह नया धर्म चलाना चाहता था । सिकन्दर की तरह सारी दुनिया को जीतना चाहता था उसकी अपनी युवावस्था का सारा समय संघर्ष तथा वासना-वैभव की तृप्ति में ही बीत गया ।

वृद्धावस्था में वह अनुभव करता है कैसे दोस्त भी दुश्मन हो गये हैं, और सांप बन कर उसके चारों ओर रेंग रहे हैं । उसने अपने जीवन में जो

---

१. सांपों की सृष्टि, हरिकृष्ण प्रेमी, पृ० ४१

क्रूरताएं की थीं, उनकी प्रतिक्रियास्वरूप उसका हृदय परिवर्तन होता है और वह अपने बेटे खिज़्र ख़ाँ को समझाता हुआ कहता है -

"भेड़िये का धर्म मैंने खूब निभा लिया। शाहज़ादे कल-चाहे तुम सुलतान न बन सको लेकिन मैं तुम्हें भेड़िया नहीं बनने दूंगा।"[१]

वह अपने जीवन के अन्तिम दिनों में हृदय में अतृप्ति तथा असन्तोष का अनुभव करता है। इन्हीं भावनाओं को वह अपने बेटे से कहता है -

"मैंने आज तक जो कुछ पाया तलवार की ताक़त से पाया, प्यार भी इसी प्रकार पाना चाहा - एक नहीं - दो नहीं - अनेक विवाह किये - लेकिन मेरा हृदय प्यासा ही भटकता रहा।"[२]

सुलतान बनने की आकांक्षा में उसका जीवन कितना अभिशप्त बना इसे वह अनुभव करता है, वही कहता है -

"काफ़ूर मैं अपना निजी अनुभव तुम्हें देना चाहता हूँ। इस मस्तिष्क में सुलतान बनने की आकांक्षा मत जागने देना।"

अलाउद्दीन ने जीवन के अन्तिम दिनों में समझ लिया था कि दिल्ली सिंहासन भयानक ज्वालामुखी है जिसमें कभी भी विस्फोट हो सकता है। उसका पुत्र भी उसकी मृत्यु के बाद दिल्ली के सिंहासन के विषय में कुछ ऐसी ही धारणा रखता है। अतः दूर रह कर देवल के सहवास से अपने जीवन को मधुर और संगीतमय बनाता है।

---

१. साँपों की सृष्टि, हरिकृष्ण प्रेमी, पृ० ८६
२. वही, वही, पृ० ८७
३. वही, वही, पृ० ८०

नाटककार का प्रमुख उद्देश्य भारतीय समाज की उन दुर्बलताओं को अभिव्यक्त करना है, जिनके कारण विदेशी यहाँ सफलता प्राप्त कर सके । नाटककार अलाउद्दीन के माध्यम से अपने उद्देश्य को सफलता से अभिव्यक्त कर स सका है ।

हरिकृष्ण प्रेमी का 'सीमा संरक्षण' नाटक एक आदर्श नाटक है । प्रसिद्ध यूनानी वीर सिकन्दर ने जब भारत पर आक्रमण किया था, तब यह महान देश अनेक गणराज्यों एवं राजाओं के अधीनस्थ राज्यों में विभाजित था । इस कारण अद्भुत वीरता का परिचय देने पर भी भारतीय पराजित हुए, किन्तु यही भारत चन्द्रगुप्त और चाणक्य के समय में एक हो गया । उसने यूनानियों को बुरी तरह पराजित किया । इसी तथ्य का अंकन इस नाटक में हुआ है । नाटक का नायक चन्द्रगुप्त है जिसमें नायकोचित सर्व विशेषताएँ हैं ।

वह देशद्रोही को कड़ी सजा देता है । जब धनदास शत्रुपक्ष को अन्न देने को तैयार हो जाता है तब कणिका उसे चन्द्रगुप्त के पास पकड़ कर लाती है चन्द्रगुप्त उसे मृत्यु दंड देता है और कहता है —

'धनदास, देशद्रोह छूत की बीमारी है । इसे पनपने नहीं दिया जा सकता । तुम्हें क्षमा करेंगे तो दूसरे देशद्रोहियों को प्रोत्साहन प्राप्त होगा इसीलिये इस नगर के चौराहे पर सर्वसाधारण के सामने तुम्हें मृत्यु दण्ड दिया जायेगा ।'[१]

---

१. सीमा संरक्षण, हरिकृष्ण प्रेमी, पृ० ७२

वह एक प्रेमी हृदय भी रखता है। कर्णिका को वह बेहद प्यार करता है। उससे विवाह करना चाहता है, किन्तु चाणक्य इसके लिये मना कर देते हैं।

चन्द्रगुप्त रणकौशल में प्रवीण है वह युद्ध करता है किन्तु नैतिकता का हनन नहीं करना चाहता। जब चाणक्य कहता है हमें जैसे के साथ तैसा करना चाहिये, तो चन्द्रगुप्त कहता है —

'तब क्या हमें हर बात में यूनानियों के पदचिह्नों पर चलना चाहिये ? क्या हम भी शत्रु के प्रदेश में घुस कर नगर-ग्रामों में आग लगावें ? क्या स्त्री-बच्चों का भी वध कर डालें ? अपने सैनिकों को शत्रु के प्रदेश में लूट करने और नारियों का अपमान करने की अनुमति दे दें ?'[1] एक इस कथन से चाणक्य अपनी कही बात की सफाई पेश करता है।

उसे गुरु की अवहेलना या गुरु के प्रति कठोर वचन ज़रा भी स्वीकार नहीं है। तभी तो जब कर्णिका चाणक्य को कुटिल और क्रूर कहती है तो चन्द्रगुप्त कहता है —

'तुम्हें क्या हो गया है, कर्णिका, जो अकारण ही आचार्य पर बरस पड़ी ? कोई और होता तो मैं उसका मस्तक धड़ से अलग कर देता।'[2] चन्द्रगुप्त गुरु की आज्ञा मानना अपना परम कर्तव्य समझता है। तभी तो

---

१. शीश दान, हरिकृष्ण प्रेमी, पृ० ५६
२. वही, वही, पृ० ८६

गुरु की आज्ञानुसार सिल्युकस की पुत्री हेलन का हाथ बिना इच्छा के भी थाम लेता है। कार्निका के प्रेम को उसे छोड़ देना पड़ता है। इतनी बड़ी गुरु परीक्षा में वह सफल होता है। इस तरह इन सभी रूपों में वह महान है। उसकी महत्ता को शब्दों में नहीं आँका जा सकता, अतः वह नाटक का प्रधान पात्र है।

'प्रेमी' जी के 'शिवा साधना' का नायक शिवाजी केवल अपने राज्य की स्वतन्त्रता के लिये नहीं वरन् सारे भारतवर्ष की रक्षा के लिये तत्पर राष्ट्र नायक के रूप में चित्रित हुआ है। उसके जीवन का उद्देश्य है —

"भारतवर्ष को स्वतन्त्र कराना, दरिद्रता की जड़ खोदना, ऊँच-नीच की भावना और धार्मिक तथा सामाजिक दोनों प्रकार की क्रान्ति करना।"[1]

शिवाजी के राज्य में मुसलमान भी उसी सुख और शान्ति से रहते थे, जिस सुख शान्ति से हिन्दू रहते थे। वह जितना हिन्दू धर्म का सम्मान करता था उतना ही इस्लाम का भी। अठारहवें वर्ष के प्रथम अरुणोदय में ही नायक शिवाजी को स्वराज्य की संस्थापना के लिए भिक्षा माँगते हुए हम देखते हैं। उनका कथन है —

"मा भवानी! इस उज्ज्वल आकांक्षा की आग को अपने आशीर्वाद से तीव्र कर दो। मुझे बल दो साहस दो और वह अदम्य पागलपन दो, जिससे मैं स्वातन्त्र्य साधना में केवल सांसारिक सुखों की ही नहीं, बल्कि प्राणों की आहुति दे सकूँ।"[2]

---

१. शिवा साधना, हरिकृष्ण प्रेमी, पृ० १६
२. वही वही, पृ० १६

नाटक में नायक का स्वरूप सच्चे दानवीर, कर्मवीर, शूरवीर और युद्धवीर नायक के रूप में चित्रित हुआ है। अधिकार सुख ने उन्हें विलासी या पाखण्डी नहीं बनाया। वह शत्रु पक्ष की स्त्रियों के साथ भी अपनी माँ, बहन जैसा व्यवहार करता था। इस तरह उनमें नायकोचित सभी गुण हैं।

शिवाजी के अतिरिक्त और भी पुरुष पात्र इस नाटक में आए हैं --

शाहजी, ताना जी, जयसिंह, बाजी पासलकर, जसवन्त सिंह आदि। सभी का अपना अपना महत्वपूर्ण व्यक्तित्व है। इन सभी में सबसे विशिष्ट चरित्र शिवाजी का है अतः वे ही नाटक के नायक हैं।

प्रेमी जी के "अग्नि परीक्षा" नाटक का नायक हरदौल है। हरदौल यद्यपि थोड़े समय ही जीवित रहता है, किन्तु अल्पायु में ही वह अपने साहस, पराक्रम और देशभक्ति का परिचय दे देता है। ओरछा के राज्य को पूर्णरूप से अपने अधीनस्थ करने के लिये, मुगलशासन ने बार बार आक्रमण किये थे। हरदौल, और चम्पतराय इन दोनों व्यक्तियों ने ही हरबार आक्रमण को विफल कर दिया। उस समय हरदौल के बड़े भाई जुझार सिंह ओरछा की गद्दी पर थे, पर उनकी ओर से हरदौल ही युद्ध का संचालन करता था। इसके अतिरिक्त हरदौल जन सेवा भी करता था। गरीब लोगों की बेटियों के विवाह का सर्व वहन करना उसके स्वभाव में था। इसलिये वह बुन्देलों का हृदय सम्राट बन चुका था।

इतिहास में उसका नाम युद्धों में पराक्रम दिखाने के कारण नहीं अपितु अपनी भाभी की चरित्र सम्बन्धी कीर्ति रक्षा करने के कारण अमर हुआ। वैसे तो इतिहास में जहर पीने पिलाने की अनेक कथाएं हैं, किन्तु जिन

महान आत्माओं ने यह जानते हुए कि हमें विष पिलाया जा रहा है हंसते-हंसते स्वेच्छा से, अपने देश के लिये, अपने आदर्श के लिये या नारी जाति के लिये उसे ग्रहण किया उनमें मेवाड़ की राजकुमारी कृष्ण-भक्त-शिरोमणि मीरा, और बुन्देलखण्ड के देवता स्वरूप लाला हरदौल, अपने भाई जुझार सिंह को पिता और भाभी को माता मानता था ।

वह चम्पतराय से कहता है –

"मैं हूँ ही साधारण मनुष्य और वही मैं रहना चाहता हूँ । महाराजा जुझार सिंह मेरे लिये पिता के तुल्य हैं, क्योंकि भाभी, ओरछा की महारानी, हरदौल को पुत्रवत् प्यार करती हैं ।"[1]

चम्पतराय हरदौल को बहकाता है किन्तु वह उनके बहकावे में नहीं आता । हरदौल चम्पतराय से कहता है –

"तुम ठीक कहते हो, चम्पतराय जी । तुम आयु में मुझसे ज्येष्ठ हो, अनुभव में श्रेष्ठ, मेरे पिता और गुरु के तुल्य हो किन्तु मेरी प्रार्थना यही है कि एक अच्छा मानव बनने के लिये तुम मेरा मार्ग दर्शन करो । मेरे हृदय में मैं अपने किसी भाई से प्रतिद्वन्द्विता को प्रज्वलित करने का प्रयास न करें ।"[2]

जुझार सिंह को भी अपने भाई हरदौल पर पूरा विश्वास है । पहाड़ सिंह (सगे उनके छोटे भाई) उन्हें उसके प्रति कितना ही बहकाते हैं, गलत लांछन लगाते हैं, किन्तु वे बड़े ही शान्त भाव से कहते हैं –

"जुझार सिंह के मन में अपनी भुजाओं के समान भाइयों के प्रति एक क्षण के लिये भी दुर्भावना नहीं आई ।"[3]

---

1. अग्नि परीक्षा, हरिकृष्ण प्रेमी, पृ० ६
2. वही, वही, पृ० ६
3. वही, वही, पृ० ३१

अन्त में वह पहाड़ सिंह जी की नीति से छला जाता है । एक छद्मवेशी साधु आकर उसे बहका देता है । उसको अपनी पत्नी और हरदौल पर अविश्वास हो जाता है । वह अपनी पत्नी से हरदौल को ज़हर पिलाने के लिए कहता है । उसकी पत्नी यद्यपि इसके लिये तैयार हो जाती है, किन्तु हरदौल को सामने देख फिर विचलित हो जाती है, तब हरदौल आकर स्वयं अपने हाथों से विषपान करता है । भाभी से कहता है - 'नहीं भाभी, तुम सम्पूर्ण नारी-जाति की प्रतिनिधि हो-मातृत्व का प्रतीक हो । मैं जानता हूं कि जन्मभूमि को मेरी आवश्यकता है, लेकिन यह भी ध्रुव सत्य है कि किसी देश का भविष्य किसी एक व्यक्ति पर निर्भर नहीं रहता । विंध्यभूमि के प्रत्येक व्यक्ति को हरदौल बनना होगा और ऐसा है भी ।'[1]

इस तरह भाभी के चरणों में अपने प्राण त्याग कर सदैव के लिए अमर हो जाता है ।

हरदौल के अतिरिक्त अन्य और भी पात्र हैं —पहाड़ सिंह, स्वर्ण-कुंवरि, चम्पतराय । इन सब में हरदौल ही अपने महान व्यक्तित्व के कारण प्रधान पात्र अथवा नायक है ।

'प्रेमी' जी के 'रक्तदान' नाटक का नायक सम्राट बहादुर शाह ज़फर है ।

१८५७ में अंग्रेजों को भारत से निकाल बाहर करने के लिये जो विप्लव हुआ था उसमें अन्तिम मुगल सम्राट बहादुरशाह ने जो सराहनीय काम किया उसी की एक झांकी इस नाटक में है ।

---

१. अग्नि परीक्षा , हरिकृष्ण प्रेमी, पृ० ७२

सम्राट बहादुरशाह जफर के जो गुण इस संघर्ष में उभर कर सामने आए उनके कारण भारत के इतिहास में उनका नाम अमर अमर हो गया ।

जफर ने इस बात का प्रयत्न किया कि एक ऐसे राज्य की स्थापना होनी चाहिये जिसमें शक्ति केवल राजा तक ही केन्द्रित न हो बल्कि प्रजा के विविध वर्गों के हाथ में उसका दायित्व हो । भारत में जिस प्रजातन्त्र का आज उदय हुआ है, उसकी आवश्यकता सम्राट उसी समय अनुभव कर चुके थे । यह बात उनकी दूरदर्शिता की द्योतक है ।

क्रान्तिकारियों को, प्रजा सताने वालों को वे कठोर दण्ड देते थे । वे प्रजा और अपनी सेना को अपनी संतान से ज्यादा प्यार करते थे । यही कारण है कि वे राज्य के नाम पर भूमि के स्वामी नहीं थे किन्तु भारत के हृदय में उनके प्रति गहरी आस्था थी ।

१८५७ की क्रान्ति में सम्राट ने दूरदर्शिता,दृढ़ता,धैर्य, उदारता और वीरता का परिचय दिया । इस प्रकार के उच्च गुण उनके शहजादों में नहीं पाए गये , इसके लिये वे इतने दोषी नहीं थे यदि शहजादों में भी सम्राट के समान बल होता तो उस क्रान्ति का परिणाम ही दूसरा होता ।

इस प्रकार यह नाटक सम्राट की अद्भुत वीरता, कुशलता, कार्यपटुता का द्योतक है । इसी कारण इस नाटक का नायक इन्हें ही मानना उचित है ।

'प्रेमी जी' के 'कीर्ति स्तम्भ' नाटक का नायक महाराणा रायमल का ज्येष्ठ पुत्र संग्राम सिंह धीर और साहसी है । अनेक दैवी गुणों से भी वह

युक्त है ।

महाराणा कुम्भा बहुत ही वीर शासक थे, जिनका अन्त अपने पुत्र ऊदा जी के द्वारा मुकुट मोह में होता है । इस घटना के बाद मेवाड़ में कलह का ताण्डव होता है । मेवाड़ राजवंश के उज्ज्वल यश को इस बात ने धब्बा तो लगाया ही, साथ ही मेवाड़ का विस्तार भी कम कर दिया । ऊदाजी के हाथों से राजपूतों का नेतृत्व भी छिन गया । महाराणा रायमल के ज्येष्ठ पुत्र संग्राम सिंह (राणा साँगा) की दूरदर्शिता, त्याग, वीरता एवं साहस ने इस अन्त:कलह की ज्वाला को शान्त किया । मेवाड़ के गत गौरव को पुन: प्राप्त ही नहीं कराया अपितु उसे भारत का सबसे शक्तिशाली राज्य बना दिया ।

इस कार्य के लिये संग्राम सिंह को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा । वहाँ भीलों की सहायता से सेना तैयार कर संग्रामसिंह ने युद्ध में पृथ्वीराज की सहायता की । संग्राम सिंह को सिंहासन का लोभ नहीं था , राजगृह की इस युद्धाग्नि को शान्त करने का चाव था । यह बात निम्न कथन से स्पष्ट होती है —

"संग्राम सिंह के हृदय में अनेक आकांक्षाएं हैं । मेवाड़ का महाराणा पद उसकी आकांक्षाओं की परिधि नहीं है । उसके कारण मेवाड़ में गृहकलह का जन्म हो इससे बड़ा दुर्भाग्य उसके लिये और क्या हो सकता है । सत्य और असत्य , न्याय और अन्याय पर विचार करने से पहले हमें मेवाड़ भूमि के हित-अनहित पर विचार करना है । हत्यारे ऊदा जी के पुत्र के पक्ष में मेवाड़ के विदेशियों के चंगुल में फंसने से बचने के लिये महाराणा रायमल का ज्येष्ठ पुत्र संग्राम सिंह युव राज पद का परित्याग करने को प्रस्तुत हैं ।"[1]

---

1. कीर्तिस्तम्भ, हरिकृष्ण प्रेमी, पृ० ५७

संग्राम सिंह अपनी बहन ज्वाला से बताता है कि प्रत्येक मेवाड़ी का अपनी जन्मभूमि के प्रति क्या कर्तव्य है। उसके इस कथन से उसकी देश सेवा की भावना तथा उसके प्रति उसका क्या कर्तव्य है यह भी प्रकट हो जाता है --

"राज्य का स्वामी होना, क्या केवल ऐश्वर्यभोग के लिये है? हम तो अपने देश के प्रहरी मात्र हैं और महाराणा हम सबके मुखिया है। हम सब को अपने उत्तरदायित्व के पालन में होड़ करनी चाहिये न कि प्रभुता के उपभोग में।"[1]

इस नाटक में और भी पुरुष एवं स्त्री पात्र आए हैं। पुरुष पात्रों में महाराणा रायमल, पृथ्वीराज, जयमल, सूरजमल, राजयोगी, कर्मचन्द, स्त्री पात्रों में शृंगार देवी, तारा, ज्वाला, यमुना इन सभी में संग्राम सिंह का व्यक्तित्व अधिक सुगठित रूप में है, अत: वे ही इस नाटक के नायक हैं।

हरिकृष्ण प्रेमी के "ममता" नाटक का नायक रमनीकान्त एक प्रेमी, सहृदय, तथा भावुक युवक हैं। वह उदार सहानुभूति परक दृष्टिकोण रखने वाला है। वह प्रारम्भ से ही "ममता" से प्रेम करता है। उसके गरीब होने पर भी वह उसे अपने अनुपयुक्त नहीं समझता। उसकी सम्मति में --

"भगवान की दृष्टि में न कोई निर्धन है न धनी। न कोई छोटा है न कोई बड़ा। विषमता तो मनुष्य मनुष्य की स्वार्थवृत्ति की सृष्टि है। प्रेम वह शक्ति है, जो हमें कृत्रिम सीमाओं से ऊपर उठाती है। मनुष्य की प्यास सोने चाँदी, हीरे जवाहरात और सांसारिक सम्मान से तृप्त नहीं होती। प्रेम न प्राप्त हो तो भंडार पा कर भी मनुष्य अतृप्ति की आग में जलता रहे।"[2]

---

1. कीर्तिस्तम्भ, हरिकृष्ण प्रेमी पृ० ५६

2. ममता, हरिकृष्ण, प्रेमी, पृ१३

लता से विवाह करके रजनीकान्त अपने को उसी तक सीमित रख कर अपना पारिवारिक जीवन सुखी बनाना चाहता है, पर उसकी यह इच्छा अधूरी रह जाती है। विनोद के छल प्रपंच से लता के घर से निकल जाने पर भी, वह लता पर पूरा विश्वास रखता है।

लता के चले जाने के बाद कला सिर्फ उसके पुत्र अरविन्द के लिये विवाह करने को तैयार हो जाती है, किन्तु रजनीकान्त नहीं तैयार होता उसे अपने घर तक आने के लिये मना कर देता है। इसके बाद वह शराब और बाजारू औरतों से अपना मन बहलाव करता है। ऐसे समय में कला पुन: आकर उसे रोकती है। अरविन्द के लिए रजनीकान्त को जीना सिखाती है। यहाँ तक कि कला अरविन्द के लिए अपने को रजनीकान्त को देने के लिए तैयार हो जाती है। अन्त में बेटे के लिये रजनीकान्त कला से विवाह कर लेता है।

रजनीकान्त जातिपाँति के भेदभाव को मेंट कर मनुष्यता को ही ही सच्चा धर्म बनाता है उसका कहना है —

"जातियों की सीमाएं कृत्रिम हैं, जो हमें दुर्बल बनाने वाली हैं, मनुष्यता के टुकड़े करने वाली हैं। स्वभावत: प्रत्येक मनुष्य एक ही जाति का है - मनुष्यता ही उसका धर्म है।"[१]

वह कर्तव्य परायणा भी है, इसका प्रमाण तब मिलता है जब वह वकील के नाते कला के भाई की रक्षा करता है। इस तरह उसमें नायकोचित अनेक गुण हैं। अत: वही नाटक का नायक अथवा प्रधान पात्र है।

---

१. बन्धन, हरिकृष्ण प्रेमी, पृ० ८८

हरिकृष्ण प्रेमी के शपथ नाटक का नायक यशोवर्मन (विष्णु ...) ओजस्वी, आत्मविश्वासी, वीर तथा साहसी एवं प्रतिज्ञा परायण युवक है। उसके जीवन का लक्ष्य है - जनता में निर्भीकता आत्मविश्वास जीवन के प्रति आस्था, देश के प्रति कर्तव्य भावना पैदा करना। वह कर्तव्य पथ को महत्व देते हुए कहता है -

"जब तक काया है, तब तक काया की आवश्यकतायें हैं। उन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पुरुषार्थ को चिर जागृत रखना मानव का स्वभाव होना चाहिये।"[1]

वह ब्राह्मण क्षत्रिय में कोई भेद नहीं मानता। उसका कहना है- कर्मक्षेत्र में बढ़ने के लिये सबका समान अधिकार है। वह वीरता का प्रशंसक है, मालवों की वीरता के सम्बन्ध में वह कहता है -

"मालव विचलित नहीं होते, उनके वक्षस्थल में हृदय के स्थान पर तो लोह खण्ड रक्खा हुआ है। विष्णुवर्धन के लोचन ज्येष्ठ की दुपहरी की भाँति प्रज्वलित होंगे, सावन के आकाश की भाँति द्रवित नहीं, उसका हृदय लोह खण्ड भगवान भास्कर का भाग बन कर खेलेगा।"[2]

वह विष पुकता है, तथा वीरता से अपने देश को मुक्त करवाने की शपथ लेता है उसमें उसके देश प्रेम की झलक मिलती है -

"महाकाल के इस बिजली वाले चमकते अस्त्र की शपथ खा कर कहता हूँ कि बर्बर हूणों को भारत से निर्वासित किये बिना अब यह असि म्यान में

---

1. शपथ,हरिकृष्ण प्रेमी, पृ० १०
2. वही, वही, पृ० १३

मुँह न छिपाएगी ।"[1]

यशोधर्मन एक प्रेमी के रूप में भी चित्रित किया गया है । सुहासिन जब उसका पाणिग्रहण करती है तो वह उसे स्वीकार कर लेता है । साथ ही सुहासिन को सैनिक जीवन की अनिश्चितता का भान कराता है । तब सुहासिन उसे मुक्त कर उसकी महानता तथा वीरता को लक्ष्य कर कहती है —

"मुझे विश्वास है जो कार्य मालव गणाधिपति शिकारी विक्रमादित्य पूर्ण रूप से सम्पन्न न कर सके चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य भी अनवरत संग्राम रत रह कर कठिनाई से पूर्ण कर सके, गुप्त साम्राज्य की विशालवाहिनी की अंकिता बना परम महाराज पराक्रमांक स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य भी साध न सके, वही भारतभूमि को मुक्त कराने का कार्य तुम सहज ही कर पाओगे ?"[2]

विष्णुवर्धन पुरुषत्व में विश्वास करता है । वह दृढ़ प्रतिज्ञ इतना है कि जब एक बार प्रतिज्ञा कर लेता है कि हूणों से भारतभूमि को मुक्त करूँगा तो उनको निकाल कर ही दम लेता है । हूणों से भारतभूमि को मुक्त करने का श्रेय स्वयं न लेकर जनता को देता है । विष्णुवर्धन का व्यक्तित्व तत्कालीन क्रान्तिकारी नेता का है जो जनता में स्वाधीनता की चिनगारी फूँककर उनका [illegible] ग्रहण कर देश की स्वाधीनता के प्रयत्न में संलग्न था ।

इन्हीं सब विशिष्ट कारणों से उसे इस नाटक का नायक मानना आवश्यक है ।

---

1. उद्धा, हरिकृष्ण प्रेमी, पृ० १३
2. वही, पृ० ४१

उपेन्द्रनाथ अश्क का 'कैद' और 'उड़ान' नाटक का 'कैद' नाटक नायक प्रधान है। इसके अतिरिक्त स्वर्ग की झलक, अलग अलग रास्ते, छठा बेटा, जय पराजय आदि नाटक भी नायक प्रधान है।

'कैद' में दो पुरुष पात्र मुख्य रूप से आए हैं :-

१. प्राणनाथ, २. दिलीप ।

प्राणनाथ की अपेक्षा दिलीप का चरित्र अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। अतः इस नाटक का नायक दिलीप ही है।

दिलीप बुद्धि प्रधान है, इसीलिये अपनी प्रेमिका अप्पी का विवाह प्राणनाथ के साथ हो जाने पर भी अपना मानसिक सन्तुलन नहीं खोता।

दिलीप में अप्पी को पाने की अधिकार लिप्सा की अपेक्षा, आत्मदान, वासना के स्थान पर पूजा की भावना है। इस शोधन प्रवृत्ति से उदात्त मनोवृत्ति का परिचय मिलता है। उसके विख्यात कवि बनने की लालसा काम के उदात्तीकरण पर ही निर्भर करती है।

इस नाटक की मुख्य कथानुसार —अप्पी की बड़ी बहन से प्राणनाथ का विवाह होता है। उसकी मृत्यु हो जाने के बाद, अप्पी का विवाह उसका पिता दिप्पों के परिवार संरक्षण हेतु प्राणनाथ से कर देता है। अप्पी दिलीप से प्रेम करती है अतः मनसा प्राणनाथ की नहीं हो पाती। इस तरह दिलीप अप्पी से अलग होकर, उसकी निराशा को दूर करने के लिये अप्पी को समझाता है —

"मैं सोचता हूँ जब किसी तरह भी इससे मुक्ति नहीं, हर हालत में यह अपरि-हार्य अनिवार्य, है तो क्यों इसकी चिन्ता की जाए, काट सकें तो हन

जंजीरों को काटा जाए, नहीं तो क्यों न उनमें जकड़े जकड़े उन्हें भुलाया जाय ।[1]

कवि होने के कारण वह निराशा में आशा कुरूपता में सौन्दर्य का दर्शन करता है । अपनी इसी भावना को वह अप्पी के सम्मुख प्रकट करता हुआ कहता है —

'कवि जब कुरूपता को देखता है, तो अप्पी, वह सुन्दरता को नहीं भुलाता । अतीत की गहरी गुफाओं से निकल कर वह उस सुन्दरता को अपने वातावरण की कुरूपता पर छा देता है ।'[2]

अप्पी से अलग होकर भी वह बड़ी बहादुरी से जीता हुआ है । अप्पी को भूलने के लिये वह घुमक्कड़ बनता है, कवि बनता है अपनी अतृप्त काम भावना को इस कल्पनामय सान्त्वना प्रदान करता है । इस प्रकार इन विशेषताओं के कारण इसे नायक मानना उचित है ।

उपेन्द्रनाथ अश्क के 'स्वर्ग की झलक' नाटक का नायक रघुनन्दन है जिसका विवाह हो चुका है । पत्नी के मर जाने पर दूसरे विवाह की समस्या उठ खड़ी हुई है । रघु एक पढ़ी लिखी ग्रेजुएट नृत्य कला में निपुण, संगीत-कला में निपुण सुयोग्य लड़की से विवाह करने की इच्छा रखता है । इसलिये

---

१. वहीं, पृ० ७४
२. वहीं, पृ० ८०,८१
[illegible] 'नायिका प्रधान' नाटक है ।

भाई साहब के द्वारा दिये गये रक्षा के प्रस्ताव को ठुकराते हुए कहता है— 'शिक्षित साथी की आवश्यकता मुझे पहले से कहीं अधिक है।'[१] किन्तु जब परिस्थितियों से परिचित होता है तो 'रक्षा' से विवाह करना श्रेयस्कर समझता है।

वास्तव में यह नाटक समाज के उस अंग का प्रतिनिधित्व करता है जहाँ शिक्षित लड़कियाँ सिर्फ ऊपरी दिखावटी बनाव शृंगार से काम चला कर अपना घर बिगाड़ती जा रही हैं। नाटक का नायक रघुनन्दन पहले मिसेज राजेन्द्र, मिसेज अशोक जिनका उदाहरण दिया करता था, उनकी जैसी पत्नी लाने की कामना करता था परन्तु लोगों की वास्तविक स्थिति जान लेने पर कम पढ़ी लिखी, अपनी भाभी की बहन रक्षा जिसकी वह हँसी उड़ाया करता था, उसी से विवाह करने को तैयार हो जाता है। उसी को अपने अनुकूल ढाल कर सुखी जीवन बिताने की कल्पना करता है।

इस नाटक में अन्य पुरुष पात्र भी आए हैं - राजेन्द्र, अशोक, भाई-साहब। किन्तु रघु को मध्य में रख कर ही नाटक पूरी परिधि में घूमता है अतः वही नाटक का नायक है।

अश्क जी के 'अलग अलग रास्ते' नाटक में पुरुष पात्रों में पण्डित ताराचन्द, पूरन, त्रिलोक, मदन आदि आए हैं। स्त्री-पात्रों में रानी और राजो का चरित्र सुस्पष्ट है। इन सभी पात्रों का अपना एक व्यक्तित्व

---

१. स्वर्ग की झलक, उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० २८

है, सभी की अलग अलग विशेषताएं हैं। सभी पात्रों से अलग पूरन का व्यक्तित्व कुछ विशिष्टताओं को लिये हुए है, अतः वही नाटक का प्रधान पात्र अथवा नायक है।

पूरन नये मूल्यों और नवीन भावनाओं का प्रतीक है। वह नव-युग की विचारधारा का पूरा समर्थक है। वह अत्याचार, यन्त्रणा और रूढ़ि का विरोधी है। उसके अन्तःस्थल में आशा और प्रकाश की नयी चेतना है। फरेब और झूठ से उसका दम घुटता है। इसलिये वह रेडियो की नौकरी छोड़ता है, उसकी नस नस में विद्रोह है। वह त्रिलोक से अपनी बहन रानी की बात करना उचित नहीं समझता, क्योंकि वह जानता है कि धनलोलुपी और लोभवृत्ति से समझौता नहीं कर पाएगा। इसलिये रानी को उस नर्क में ढकेलने का विरोध करता है। रानी को भी स्वाभि-मान की शिक्षा देता है। वह परम्परागत चले आते सड़े गले पुरातन विचारों के विरुद्ध है। वह उन मान्यताओं को अस्वीकार करता है, जो उसकी बुद्धि की मस्तिष्क की कसौटी पर खरी नहीं उतरती।

घर परिवार बहन, पिता आदि के रिश्तों से पूरन दूर नहीं है, वह क्षुद्र स्वार्थों से ऊपर उठ कर सोचता है, यही कारण है कि वह विपदा में घिरी राज के आंसूमय जीवन को देख कर सच्चाई से मुंह नहीं मोड़ पाता। अन्य भाइयों की तरह वह पति मदन को दोषी ठहरा सकता था, पर वह जानता है कि इसमें दोष उसके पिता का है। अतः वह निःसंकोच राज के सामने कह देता है —

"तुम उन्हें नहीं समझ सकती और वे भी शायद तुम्हें नहीं समझ सकते। वह प्रोफेसर है वे (सुदर्शन) एम०ए० हैं। दोनों एक दूसरे के स्वभाव कों और भावनाओं को समझते होंगे।"[१] इतना होते हुए भी उसे

---

१. अलग अलग रास्ते, उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० ४५

नारी के प्रति पूरी सहानुभूति है। नारी की परवशता के लिये वह पुरुषमात्र को दोषी मानता है उसका कथन है –

'पुरुष एक स्त्री के रहते दूसरा ब्याह कर सकता है तो स्त्री क्यों नहीं कर सकती, विशेष कर पुरुष के ठुकरा देने पर ?' [1]

पूरन का विद्रोह केवल विध्वंस के लिये ही नहीं है वरन् उसका व्यक्तित्व आज के बुद्धिवादी यौवन का प्रतीक है जो नये स्वर और नये निर्माण का द्योतक है। इस तरह से सभी पात्रों में विशेष व्यक्तित्व पूरन का है अतः वही नाटक का नायक है।

अश्क जी के 'जय पराजय' नाटक का नायक चण्ड है जो जय और पराजय के बीच निरन्तर संघर्ष करता है। चण्ड की प्रतिज्ञा में राजपूती आन-बान-शान है। जिसके लिये वह निर्वासित होता है, कष्ट उठाता है, अन्त तक भटकता रहता है, किन्तु राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य को निभाने से नहीं चूकता।

नायक चण्ड सामंती गर्व से प्रभावित है। उसका यह गर्व ही उसे अपने आदर्श पर दृढ़ रहने में सहायता प्रदान करता है।

मंडोवर का राठौर युवराज चंड के लिये नारियल लाता है, तो राजा लक्ष्मण सिंह हँसी में कह देते हैं –

'युवराज के लिये होगा हम बूढ़ों के लिये कौन लाएगा।' [2] प्रारम्भ में राजा लक्ष्मण सिंह की इतनी सी बात पर चंड की इतनी भीष्म प्रतिज्ञा

---

१. अलग अलग रास्ते, उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० २०४

२. जय पराजय, ,, पृ० ३६

कुछ अस्वाभाविक ,अविवेकपूर्ण, अतर्क संगत सी प्रतीत होती है, किन्तु अन्त तक पहुँचते पहुँचते इस प्रतिज्ञा के कारण चण्ड के व्यक्तित्व में जिस चिन्तन हीन, दृढ़ नैतिक आदर्शवादिता का विकास होता है, वह उसके सामन्ती व्यक्तित्व को साकार कर देता है। साथ ही स्वाभाविक सा प्रतीत होने लगता है।

पिता की आकांक्षा के सम्मुख वह अपनी वासना का दमन करता है। रानी [illegible] के सम्मुख आचरण में उसकी उदात्त वृत्ति लक्षित होती है। माँ [illegible] से आशीर्वाद माँगते हुए वह कहता है - "माँ मुझे साहस दो, बल दो, शक्ति दो कि मैं अपनी प्रतिज्ञा को पूरा उतारूँ कठिन से कठिन परिस्थितियाँ मुझे अपने शिखर से न डिगा सकें, बड़े से बड़ा प्रलोभन मुझे अपने पथ से विचलित न कर सके।"[१]

रानी हंसाबाई के प्रति उसमें मातृत्व भावना की पवित्रता है -

"युवराज नहीं माँ। पुत्र कहो। मैं तो केवल अपनी माँ के चरणों में प्रणाम करने आया हूँ, और कहने आया हूँ अब इस तुच्छ सेवक को सदैव अपना सेवक समझें।"[२]

भावना की पवित्रता उसकी दृष्टि से बहुत बड़ी वस्तु है। पिता के सम्मुख अपनी विचारधारा प्रकट करते हुए वह कहता है -

"मैं कुछ नहीं जानता, मैंने ऐसा ही समझा है और रिश्ते की पवित्रता को किसी अवसर पर न्योछावर नहीं कर सकता। जिसे मैंने अपने मन

---

१. जय पराजय, उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० ७२
२. ,, ,, पृ० १००

में माँ के रूप में देखा, उसे किस भाँति अपनी पत्नी के रूप में देख सकता हूँ।"[1]

प्रतिज्ञा के सम्मुख अधिकार, राज्य, सिंहासन आदि का प्रलोभन उसके लिए कुछ महत्व नहीं रखता। वह कर्तव्य निष्ठ नायक होने के कारण अपने कर्तव्य के प्रति सदैव जागरूक है। कर्तव्यरत होने में [illegible] हीन है। युद्ध करना कर्तव्य है, उसमें वह जय पराजय की चिन्ता नहीं करता।

इस प्रकार नाटक का नायक मानव जीवन की जय पराजय का प्रतीक है, जो जीवन पथ पर क्रमागति से अग्रसर होता जाता है।

उपेन्द्रनाथ अश्क के छठा बेटा नाटक का नायक ६ पुत्रों का पिता बसन्तलाल है। पुत्र उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते, क्योंकि वह आधुनिक सभ्यता में रंगे हुए हैं। पिता पुरानी परिपाटी के हैं, साथ ही उनका स्वभाव भी कुछ टेढ़ा है। शराबी पिता एक शराबी के सभी [illegible] से युक्त है। शराबी की [illegible], [illegible], भावुकता, पूरे तौर पर इस चरित्र में विद्यमान है। पं० बसन्तलाल का चरित्र बड़ा सुन्दर और सहानुभूतिपूर्ण उभरा है।

यह नाटक मानव की उस आकांक्षा का प्रतीक है जो कभी पूरी नहीं होती। बसन्तलाल का पुत्र दयालचन्द्र उनके पास नहीं है इस कारण वे अपने अवचेतन मन में इस विचार को धारण किये हैं कि यदि उनका यह छठा बेटा होता तो अवश्य उनकी सेवा करता, जबकि यथार्थ में उनके स्वभाव के कारण ऐसा नहीं हो पाता।

---

१. जय पराजय, [illegible]नाथ अश्क, पृ० ५२

नाटक का मुख्य भाग पंडित जी के स्वप्न में रंगमंच पर उपस्थित किया जाता है। नाटक का अन्तिम दृश्य छायाओं के रूप में आया है क्योंकि स्वप्न बराबर जारी है, समाप्ति पर वह धुंधला और अस्पष्ट हो जाता है।

विश्लेषणात्मक दृष्टि से यह स्पष्ट हो जाता है कि बसन्तलाल का स्वप्न में अपने रूठे बेटे की वापसी देखना उनके अचेतन मन की इच्छाओं का अमूर्त रूप है। जीवन में जिन वस्तुओं को प्राप्त करने की इच्छा हमारे मन में छिपी होती है वह हमारे सपनों में धुंधले रूप में आ उपस्थित होती हैं। हमें ऐसा आभास होता है जैसे हमने अपना मनोवांछित पा लिया। इसी-तरह पं० बसन्तलाल के साथ होता है उनके मन में दयाचन्द द्वारा सुख शान्ति की इच्छा छिपी हुई है, वही इच्छा अमूर्त रूप से स्वप्न द्वारा साकार हो कर थोड़ी देर के लिए पंडित जी को सुख पहुंचाती है। पंडित जी को वह सुख प्राप्त होता है जो जीवन में कभी भी नहीं मिलता। यदि दयालचन्द लापता न होता, और बराबर उनके सामने बना होता तो वह भी अपने भाइयों के समान पिता से मुख मोड़ लेता।

दयालचन्द सामने नहीं है अतः बसन्तलाल अपने मन में यह विचार लिये हुए हैं। इस तरह बसन्तलाल नाटक के नायक सिद्ध होते हैं।

उदयशंकर भट्ट के 'सगर विजय' नाटक का नायक सगर है, जिसका जन्म कठिन परिस्थितियों में होता है। प्रारम्भ से ही उसे कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। उसका जन्म वशिष्ठ ऋषि के आश्रम में होता है, जहाँ एक ओर उसकी माँ का स्नेह है दूसरी ओर सौतेली

माँ उसके प्राण लेने को उद्यत । दो तीन बार उसे वह मौत के घाट तक ले जाती है किन्तु मार नहीं पाती, फिर भी, उसे अपनी माँ से अलग कर देती है । उसका पालन वशिष्ठ की पत्नी अरुन्धती करती हैं । अतः सगर अपनी माँ को बहुत बड़े हो जाने तक नहीं जान पाता ।

वह अपना सबसे पहला कर्तव्य अपने पिता के शत्रु से बदला लेना समझता है । इसी कर्म की ओर वह प्रयत्नशील होता है और अन्त में अपने इस कर्तव्य में वह सफल होता है । वह प्रजा का सच्चा हितैषी बनना चाहता है यह बात गुरु वशिष्ठ के प्रति उसके कथन से स्पष्ट है :-

"गुरुवर राजा प्रजा की रक्षा के अतिरिक्त कुछ नहीं है वह केवल प्रजा का मूर्त स्वर है । इसलिये राजा बनने से पूर्व मैंने निश्चय किया है कि मैं प्रजा में शान्ति स्थापित करूँगा । इस समय सम्पूर्ण आर्यावर्त में त्राहि-त्राहि मची हुई है - ऐसी अवस्था में मेरा कर्तव्य है कि मैं राज्य स्थापना की परीक्षा दे दूँ । मैं आज यही करने चला हूँ गुरुवर ! तब तक आप शासन सँभालिए ।"[1]

प्रजा रक्षा हित ही सगर का आदर्श है, वह प्रतिज्ञा करता है :-
"मैंने प्रतिज्ञा की है जब तक सम्पूर्ण देश के शत्रुओं, अत्याचारियों को पराजित न कर लूँगा तब तक अयोध्या में पैर न रखूँगा ।............... मैं दिग्विजय करके ही अपने को राज्य का अधिकारी समझता हूँ । राजा

---

1. सगर विजय, उदयशंकर भट्ट, पृ० ६६

विलास की वस्तु नहीं है वह साधारण मनुष्यों में से ही एक समझदार प्राणी है। प्रजा का सुख उसका सुख है। प्रजा की शान्ति उसकी आत्मा की प्रसन्नता।"[१]

सगर की सौतेली माँ उसका विनाश चाहती थी किन्तु अन्त में वह भी उसकी तेजस्विता पर मुग्ध हो जाती है, और उसे हृदय से प्यार करने लगती है। सगर भी उसे हृदय से प्यार करता है तभी तो जब उसकी मृत्यु का समाचार सुनता है तो दु:खी होते हुए कहता है - "हा माता तुम धन्य हो। तुमने देश के लिये प्राण अर्पित किये।"[१]

माता की मृत्यु के बाद अपने कर्तव्य पथ से वह विचलित हो उठता है। त्रिपुर के समझाने पर वह अपने कर्तव्य के प्रति पुन: सचेत होता है और प्रतिज्ञा करता है -

"मेरे सामने कर्तव्य पथ का महासागर लहरा रहा है। राष्ट्र के उनींदे प्राणी मुझे पुकार रहे हैं................ यह सम्पूर्ण वसुमती जिसने मेरा लालन पालन किया, माता [illegible] की प्रतिमा बन कर मेरी ओर देख रही है। ये सरितायें और ये महासागर उस माँ के मन्द हास हैं उसकी प्रतिध्वनि हैं, उसे अट्टहास में बदलना होगा .... मेरी सारी साध, माँ की धूलि मस्तक पर चढ़ा कर प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेरा रोम रोम उसकी सेवा के लिये होगा।"[३]

---

१. सगर विजय, उदयशंकर भट्ट, पृ० ९९
२. ,, पृ० १००
३. ,, पृ० १११

अन्त में, सभी शत्रुओं को परास्त कर जब वह अयोध्या लौटना चाहता है तो सब की मृत्यु का समाचार सुन जंगल में ही निवास की इच्छा प्रकट करता है। अन्त में त्रिपुर के आग्रह पर जीवन को एक संग्राम समझ कर सगर पुनः लौटता है।

इस तरह सगर अत्यन्त तेजस्वी, भावुक और वीर पुरुष है। वैसे इस नाटक में अन्य पात्रों का चरित्र भी महत्वपूर्ण है, किन्तु सबसे महत्व पूर्ण चरित्र सगर का ही है।

उदयशंकर भट्ट के 'क्रान्तिकारी' नाटक का नायक 'दिवाकर' है जो नाटक में प्रारम्भ से ही देश की स्वतन्त्रता हेतु क्रान्ति करता हुआ दिखाई पड़ता है, और अन्त में इसी उद्देश्य की पूर्ति में उसकी मृत्यु हो जाती है।

मनोहर उसका बचपन का सहपाठी है वह क्रान्तिकारियों का घोर शत्रु है, जब कि दिवाकर घोर क्रान्तिकारी है। मनोहर दिवाकर को मूर्च्छित अवस्था में देखता है और उसे अपने घर ले जाता है। वह उसकी उचित सेवा सुश्रुषा करता है किन्तु यह राज छिपाए रखता है कि वह क्रान्तिकारी है। एक दिन अचानक अपनी पत्नी वीणा के सामने वह उसका नाम ले लेता है। वीणा पहले सन्देह में थी, किन्तु अब उसे पूरा विश्वास हो जाता है कि यही क्रान्तिकारी दिवाकर है तब वह अपने आपको सेना का सिपाही स्वीकार कर लेने का आग्रह दिवाकर से करती है।

यद्यपि मनोहर दिवाकर का शत्रु है किन्तु उसकी रक्षा करता है। यहीं मनोहर का व्यक्तित्व उभरकर आता है। मनोहर को नाटक में सहनायक माना जा सकता है।

वीणा और रेणु के चरित्र भी अपने में पूर्ण हैं । रेणु अपने पति से दूर रह कर देश की स्वतन्त्रता के लिये अनेक कष्टों का सामना करती है, दूसरी ओर वीणा स्वयं अपने हाथों पति का खून कर देश के लिए लड़ती है । इस तरह स्पष्ट है कि दिवाकर के साथ अन्य महत्वपूर्ण चरित्र भी नाटक में आए हैं ।

दिवाकर एक सच्चा देश भक्त है, उसे देश के आगे अपनी पत्नी, बच्चे और माँ किसी की कोई चिन्ता नहीं है । उसकी पत्नी उससे अलग रह कर सोचती है —

"प्राणनाथ, क्या हम लोग एक दूसरे से अलग रहने के लिये ही मिले थे ।"[1]

दिवाकर अत्यन्त वीर और निर्भीक व्यक्तित्व का धनी है । इसका उदाहरण टृयूडर की मृत्यु के समय मिलता है । वह निर्भयता पूर्वक पेड़ की आड़ से टृयूडर को गोली मारता है । टृयूडर की गोली उसके पैरों में लगती है और वह मूर्च्छित हो जाता है । होश में आने पर उन्हीं घायल पैरों से ३-४ मील दौड़ जाता है, किन्तु अन्त में वही पानी माँगते हुए उसकी मृत्यु हो जाती है ।

वह अपने कार्य में तत्पर है यही शिक्षा वह मनोहर को भी देता है —

"मैं चाहता हूं तुम अपने पेशे के प्रति ईमानदार हो । तुम मुझे पकड़वा दो ।"[2]

१. गान्धारी, उदयशंकर भट्ट, पृ० ५१
२. ,, ,, पृ० ८८

दिवाकर वाक्पटु भी है । सिर्फ अपनी वाक् पटुता के सहारे ही वीणा को वह प्रभावित करता है । वीणा भी देश के लिए मर मिटने को तैयार हो जाती है ।

सभी पात्रों में अपनी अपनी कुछ विशिष्टताएं हैं, किन्तु इस नाटक का कथानक दिवाकर से ही सम्बन्धित है । अत: उसे ही इस नाटक का नायक मानना उचित होगा ।

उदयशंकर भट्ट का 'मुक्तिपथ' नाटक नायक प्रधान है । इसका कथानक राजकुमार सिद्धार्थ के जीवन-वृत्त से सम्बन्ध रखता है । सिद्धार्थ के गृह-त्याग और ज्ञानप्राप्ति की घटनाओं को लिया गया है । नाटक के नायक सिद्धार्थ सरल हृदय, स्नेहमय एवं अनुकम्पाशील हैं, साथ ही वे दया के भंडार तथा करुणा के सागर भी हैं । वे जो कुछ-कुछ भी देखते हैं सुनते हैं उसका उनके अन्तस्थल पर तुरन्त गहन प्रभाव अंकित हो जाता है, वह सोचने लगते हैं —

'जीवन रोग, मृत्यु....... । दु:ख रोग मृत्यु यह सब क्या है ? क्या सदा से ही ऐसा चल रहा है ? क्यों क्या इनका कोई उपाय नहीं ।'[1]

पर दु:ख कातरता भी उनमें तीव्र रूप में विद्यमान है । देवदत्त द्वारा पक्षी के मारे जाने पर उसे घायल देख उनकी आंखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है । शरणागत की रक्षा धर्म का पालन करते हुए सिद्धार्थ कहते हैं —

"देखो यह पक्षी कैसी दया भरी दृष्टि से मेरी ओर देख रहा है, नहीं भाई यह पक्षी मेरा है मैं इसे नहीं दे सकता ।"[2]

---

१. मुक्तिपथ , उदयशंकर भट्ट, पृ० १३
२. वही, वही, पृ० १६

भावुक, चिंतनशील, दार्शनिक व्यक्तित्व के साथ सिद्धार्थ के व्यक्तित्व में यौवन सुलभ भावनाओं तथा तदनुरूप व्यवहार की किंचित् झलक भी मिल जाती है । इससे स्वाभाविकता तथा मानवीयता की रक्षा होती है, एवं सिद्धार्थ का व्यक्तित्व रूढ़िवादिताओं से मुक्त हो आधुनिक परिप्रेक्ष्य में मुखरित हो उठता है ।

प्रबल वैराग्य भावना के साथ समष्टिहित की भावना को लेकर सिद्धार्थ साधना की उत्तरोत्तर अवस्थाओं को पार करते हुए निर्वाण प्राप्त कर विश्व को ज्ञान दीप से आलोकित करते हैं ।

इस तरह सिद्धार्थ प्रख्यात, सामाजिक चेतना सम्पन्न लोक सेवी नायक हैं ।

सेठ गोविन्ददास के प्रकाश, भिक्षु से गृहस्थ, गृहस्थ से भिक्षु, सेवापथ आदि नाटक नायक प्रधान नाटकों की श्रेणी में आते हैं ।

इनके "प्रकाश" नाटक का नायक प्रकाशचन्द्र है । जो राजा अजय सिंह का सुपुत्र है । अजयसिंह अपनी पत्नी इन्दु को, गर्भ में जब प्रकाश आता है, तब व्यभिचारिणी कह कर घर से निकाल देते हैं । इन्दु अपना नाम तारा रख कर उस बच्चे को जन्म देती है । सिर्फ उसी के लिये वह जीवित रहती है । इस तरह केवल माँ का प्यार पा कर प्रकाश बड़ा होता है । उसमें [illegible] बहुत से गुण हैं । वह अपनी माँ को बहुत प्यार करता है उसके प्रति उतनी ही निष्ठा रखता है --

"माँ, तेरी आवश्यकता ? तेरी आवश्यकता तो मुझे सोते जागते, उठते बैठते, चलते फिरते सभी वक्त रहती है । तू मेरे हृदय में न रहे तो क्या

मेरा एक क्षण भी सुख से बीत सकता है ?¹ उसे शहर और ग्रामीण जीवन के अन्तर का पूर्ण परिचय प्राप्त है —

. 'ग्रामीण जीवन स्वाभाविक और नगर का जीवन अस्वाभाविक है। छोटी छोटी पहाड़ियों से घिरे वे गाँव, ऊँचे ऊँचे वृक्षों की छाया में बने हुए नन्हें नन्हें घरों के झोंपड़े शान्त, नीरव, संकरी संकरी वीथियाँ खिले हुए कमलों से भरे हुए निर्मल सरोवर कलकल करते हुए नाले, आमके बगीचे, हरे भरे खेत, घुटनों तक चढ़ी हुई धोती और सफेद मिरजई पहने हुए पुरुष, मोटी-मोटी लाल लाल साड़ी पहने हुए स्त्रियाँ नंगे और धूल में खेलते हुए बालक गाय बैल और भैंस ऐसी स्वाभाविक वस्तुएँ हैं।'²

प्रकाश निर्धन होते हुए भी सन्तुष्ट है।

'तेरा पुत्र होकर, संसार में सबसे अच्छी माँ का पुत्र हो कर, निर्धन हुआ तो क्या ?'³

वह धनी और निर्धन का भेद मिटाने का पूरा पूरा यत्न करता है।

प्रकाश सहृदय प्रेमी भी है। मनोरमा उसे बहुत प्यार करती है। सुशीला से वह कहती है —

'उन्हें हृदय से निकाल देना, असम्भव, सर्वथा असम्भव है।'⁴

----

१. प्रकाश, गोविन्ददास, पृ० ३६

२. वही वही, पृ० ३६

३. वही, पृ० ४०

४. वही, पृ० ६१

प्रकाश निर्भीक है । जनता के समक्ष कटु सत्य बोलने की वह सामर्थ्य रखता है । राजा अभयसिंह के दृष्टान्त,दामोदर के दृष्टान्त बड़ी निर्भीकता से वह जनता के समक्ष रखता है । विपक्षीदल इसका विरोध करता है । इसके लिये उसे जेल जाना पड़ता है, बड़े से बड़े कष्ट को झेलना पड़ता है — उसका कहना है —

"कर्तव्य पालन में मुझे शूली पर भी चढ़ना पड़ा तो भी हँसते हँसते चढ़ जाऊँगा।

[1]अभयसिंह इसकी वीरता से प्रसन्न हैं । कई बार अपनी दूसरी पत्नी कल्याणी से कहता है आज मेरा पुत्र भी इतना ही बड़ा होता । उन्हें शक होता है कहीं यही मेरा पुत्र तो नहीं है बाद में यह राज स्वयं तारा बनी हुई इन्दु ही खोलती है । इस तरह नाटक का नायक प्रकाश ही है ।

सेठ गोविन्ददास के "भिक्षु से गृहस्थ से भिक्षु" नाटक का नायक कुमारायन है । जो युवावस्था में ही अपना सारा वैभव छोड़कर बौद्ध भिक्षु हो गया था । कुमारायन महान विद्वान था । भिक्षु होकर बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये देश देशान्तरों में घूमता हुआ वह भारत के उत्तर में कूची नामक राज्य में पहुँचा कुमारायन अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य के कारण कूची नरेश द्वारा राजगुरु बनाया गया । कुमारायन के कूची पहुँचने पर उसके जीवन से सम्बन्ध रखने वाली एक विलक्षण घटना घटित हुई । कूची नरेश के जीवा नामक

---

१. प्रकाश, गोविन्ददास, पृ० १६३

कन्या थी। जीवा का कुमारायन से प्रेम हो गया, जीवा और कुमारायन का विवाह हुआ, उनके एक पुत्र कुमारजीव हुआ, जब वह ६ वर्ष का हो गया तब जीवा भिक्षुणी होकर कुमारजीव के उच्च शिक्षा के लिये कश्मीर लाई। कुमारायन, पुत्र के दस वर्ष के हो जाने पर पुन: सन्यास ले लेते हैं। इस तरह नाटक का अन्त होता है। इसमें कई पात्र आए हैं।

उत्पलवर्णा, सुभद्र, जीवा, मैत्रेयनाथ पद्मांगी, कुमारजीव, फाहियान। इन सभी पात्रों में कुमारायन और जीवा का चरित्र अधिक सुगठित रूप से सामने आया है। कुमारायन इसके नायक हैं, जीवा इस की नायिका।

गोविन्ददास के "सेवापथ" नाटक का नायक एक निर्धन युवक दीनानाथ है। जो बहुत ही ईमानदार कार्य पटु और परिश्रमी है। दीनानाथ परिश्रम के द्वारा कमाए गये धन पर ही विश्वास करता है। वह अपने परिवार का भरण पोषण ठीक प्रकार से नहीं कर पाता, उसकी बीबी नित्य प्रति उसे बच्चों की बातें लेकर ताने सुनाती है। किन्तु इन सब का उस पर कोई भी असर नहीं होता वह वैसे ही रूखा सूखा खा कर सेवापथ पर रत रहता है। वह घर की परिस्थितियों से परिचित है :-

"नहीं कमला, मुझे तुम्हारी और तुम्हारे बच्चों की चिन्ता है अपने शरीर से भी अधिक।"[1] वह ईमानदारी के साथ अपने कर्तव्य का पालन

---

१. सेवापथ, गोविन्ददास, पृ० ३६

करता है वह सार्वजनिक रुपये को खाना पाप समझता है तभी तो कमला से कहता है -

"मैं और सार्वजनिक रुपया खाऊँ क्या कहूँ ?"[1]

इस तरह कर्तव्य पथ पर सच्चाई के साथ लगे रहते शक्तिपाल और श्रीनिवास के बीच की लड़ाई को शान्त करने के चक्कर में शक्तिपाल की गोली उसे लग जाती है । शक्तिपाल कहता है -

"दीनानाथ जी मेरे हाथ से इतना बड़ा पाप हुआ कि इसका कोई प्रायश्चित भी नहीं है ।"[2]

अन्त में वही शक्ति पाल जो सदैव धोखा धड़ी से कार्य करता था दीनानाथ के लिये आदर्शपात्र बन जाता है । वह कह उठता है -

"दीनानाथ जी मेरे दिल में हमेशा आपके प्रति इज्जत रही है, किन्तु जितनी वह आज हो गई उतनी कभी नहीं थी ।"[3]

इस तरह इन सभी प्रसंगों के आधार पर वही नाटक का नायक सिद्ध होता है ।

---

१. सेवापथ, गोविन्ददास, पृ० २१
२. वही, वही, पृ० ८३
३. वही, वही, पृ० ८४

वृन्दावन लाल वर्मा के फूलों की बोली, मयूर, खिलौने की खोज, शकुन, नीलकंठ, पूर्व की ओर, राखी की लाज, निस्तार, बीरबल, आदि नाटक नायक प्रधान है ।

वृन्दावनलाल वर्मा के फूलों की बोली नाटक का प्रधान उद्देश्य, सोना बनाने के रसायन शास्त्र की ठगविद्या का वर्णन है । नाटककार ने भूमिका में स्वयं इस उद्देश्य को प्रगट किया है ।

नाटक का नायक माधव, स्वर्ण रसायन के लोभ में अन्धा होकर अपनी सारी सम्पत्ति गँवा बैठता है । जब सिद्ध ठग द्वारा कामिनी और माया तथा अन्य नायिकाओं तथा नर्तकियों के आभूषण अपहरण कर लिये जाते हैं, तब उसकी आँखें खुलती है, और वह सिद्ध ठग को पकड़वाता है ।

नाटक में नायक का चरित्र उभर कर नहीं आ पाया है, क्योंकि नाटक कार का ध्यान तो मुख्यत: स्वर्ण रसायन की क्रियाओं की ओर है । नायक भी उन्हीं क्रियाओं को सीखने में संलग्न रहता है ।

माधव धनी विख्यात व्यापारी है । वह कामिनी नर्तकी से उसकी कला से सच्चा प्यार करता है । उसके मन में कामिनी से विवाह करने की चाह है, लेकिन कामिनी की ओर से बंधन में बंधने की अस्वीकृत पर वह उस ओर से उदासीन हो जाता है तथापि उसके मन में उसके प्रति आकर्षण में कोई कमी नहीं आती । वह मनही मन उसे पूर्ववत प्यार करता है । वह कामिनी से कहता है ।

'तुम्हारे मन में चाह होनी ही क्यों चाहिये । चाह तो मेरे मन की निधि है ।'[1]

कामिनी के प्रति आकर्षण तथा प्रणय को वह स्वरचित पुस्तक में फूलों के माध्यम से व्यक्त करता है । कामिनी का नाम कुमुदनी तथा अपना मुचकुन्द । अपने प्रेम सम्बन्ध का नाम परिमल व्यक्त करता है । पुस्तक के इन पन्नों को पढ़ कर कामिनी माधव की आन्तरिक व्यथा से अवगत हो उसे ग्रहण करती है ।

इस तरह नाटक का अन्त-सुखान्त होता है । इसका नायक माधव, नायिका कामिनी है । एक प्रकार से नाटक नायक प्रधान ही कहा जायेगा ।

'हंसमयूर' नाटक का नायक इन्द्रसेन है । जिसका बाद में नाम कुलसेन हो जाता है । यह वैष्णव था । शैव और वैष्णव का सुन्दर समन्वय किस प्रकार कल्याणकारी है, यह बात वह विदशा के नाग राजा रामचन्द्र को बताता है –

'शम्भ ही वरदान देने वाले शंकर, पालन-पोषण करने वाले होते हुए भी रुद्र हैं । दुष्टों और पीड़कों का विनाश करने के लिये, उनको अपना अत्यन्त विशाल कर्म, ताण्डव नृत्य करना पड़ता है । उनकी संहार-वृत्ति में नये उद्गम, नवीन उत्पत्ति के बीज रहते हैं । यह ठीक है, परन्तु हमारे लिये अकेला रुद्र पर्याप्त नहीं है । हमको सत्य और सुन्दर भी होना चाहिये -

---

1. फूलों की बोली, वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० ४६

रुद्र का शिव रूप । नाश करने में समय कम लगता है, सौन्दर्य और कल्याण के लिये बहुत समय चाहिये । इसलिए परमात्मा का जो रूप इस कल्याणकार्य के लिए अधिक व्यापक हो सके उसकी ओर विशेष ध्यान देना ठीक होगा । इस समय तो इसकी ओर भी अधिक आवश्यकता है ।" [1]

उसके विचार से प्रगतिशील समाज के साथ आचार विचार में परिवर्तन आवश्यक है । तभी वे जनता के लिए ग्राह्य हो सकेंगे ।

इन्द्र सेन कुशल नीतिज्ञ और सहृदय प्रेमी भी है । एक नायक मुख की पुत्री तन्वी से वह प्रेम करता है । इन्द्रसेन कर्तव्य परायण है । इसका उदाहरण हमें तब मिलता है जब उसके सोते हुए देखकर बकुल आक्रमण कर उसे घायल कर देता है । उसी समय उसे शकों के आक्रमण की सूचना मिलती है । वह युद्ध में जाने को तैयार हो जाता है । तन्वी उससे नहीं जाने का आग्रह करती है परन्तु आर्य संस्कृति की रक्षा के लिये वह अपना जाना आवश्यक समझता है और कहता है -" राजकुमारी मुझको जाने दो हंस मयूर के प्रतिनिधि को हंसमयूर के ध्वज के नीचे जाने दो । क्या तुम चाहती हो आर्यहार जाएँ ? रणक्षेत्र में मेरे पहुँच जाने से सेना को दुगुना बल मिल जाएगा और राजा रामचन्द्र को चौगुना उत्साह । हमारी सेना में कदाचित कोई यह झूठा समाचार फैला दे कि मेरा वध हो गया है, तो आर्य सेना की उमंगें शिथिल पड़ जाएंगी । जाओ कवच पहिनने में सहायता करो ।" [2]

---

१. हंसमयूर, वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० ११६

२. वही, वही, पृ० १५०

इस तरह उसमें नायकोचित गुण हैं अत: वही नाटक का नायक है ।

वृन्दावनलाल वर्मा के 'खिलौने की खोज' नाटक को नायक प्रधान कहना अधिक तर्क संगत होगा । सरूपा का चरित्र भी इस नाटक में सुव्यवस्थित रूप में उपस्थित हुआ है, फिर भी नाटक नायक प्रधान ही है और उसका नायक डॉ० सलिल है, जो यक्ष्मा का रोगी है । सलिल शहर छोड़कर गाँव में आ कर बस जाता है । जीवन न चाहते हुए भी वह अपना, निदान स्वयं करता है । सरूपा और सलिल का बचपन से प्रेम है, किन्तु विवाह नहीं हो पाता । सलिल के पास सरूपा का एक खिलौना, उसकी मूर्ति है । सरूपा जब उसके पास उस खिलौने को देखती है, तो उसके जीवन की पुरानी स्मृतियाँ जाग उठती हैं । सरूपा का पुत्र उसके घर आकर उस खिलौने को उठा ले जाता है किन्तु सलिल पर उसका कोई असर नहीं होता । वह नन्दिनी से कहता है --

'नन्दिनी, यह खिलौना भी तुमको वसीयत में मिलना था । (सोचकर) शायद न भी देता, क्योंकि किसी बड़ी पुरानी स्मृति का चिह्न था ।'[१]

यद्यपि सलिल गाँव में किसी को भी दवा नहीं करता किन्तु सेठ और उसके बेटे केवल के कहने पर सरूपा को स्वस्थ करने की मन ही मन ठानता है । यद्यपि सरूपा सेठ सेवानन्द की हो चुकी है फिर भी मन ही मन सलिल से प्यार करती है । सलिल भी उससे प्यार करता है किन्तु कभी कुछ कहता नहीं है। जब दवा के बहाने उसके घर जाता है तब दोनों की बातों से ही पिछले सम्बन्ध का पता चलता है ।

---

१. खिलौने की खोज, वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० ९८

उसी गाँव में डॉ० सलिल के दोस्त डॉ० भवन गठिया के रोगी हो कर आते हैं सलिल उन्हें ठीक करता है। रूपा के प्यार के कारण सलिल की मन:स्थिति विचित्र रहती है तभी तो डॉ० भवन की लड़की नीरा कहती है —

'आप ठीक कहते हैं पिता जी, यह बहुत सनकी है।'[1]

पूरे नाटक में विशिष्ट नायकोचित गुणों को धारण किये हुए भी डॉ० सलिल विक्षिप्त से नजर आते हैं। नाटक के अन्त में जो सलिल नाटक करवाता है उसी से नाटक की पूर्ण कथा स्पष्ट होती है।

'सगुन' नाटक का नायक कुंवर जो कई कारखानों का मालिक है वह प्रत्येक व्यापार का कार्य सगुन उठा कर ही आरम्भ करता है। वह अपने विश्वास को अपने सेक्रेटरी चोखेलाल से कहता है —

'चोखे भाई, मेरा दायाँ हाथ फड़क रहा है, बहुत अच्छा सगुन है[2]।'

वह जब व्यापार के काम से जा रहा होता है तो रास्ते में बिल्ली रास्ता काट जाती है। उसका मन आशंका से भर जाता है तभी एक पानी से भरा घड़ा दिखाई देता है तो वह चोखे लाल से कहता है —

'दायाँ हाथ फड़का, भरा घड़ा मिला इन दो सगुनों के मुकाबिले में एक असगुन। एक से बढ़े दो बढ़ीं।'[3]

---

१. खिलौने की खोज, वृन्दावन लाल वर्मा, पृ० ४०

२. सगुन, वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० २३

३. वही, वही, पृ० २४

सगुन से काम करने पर भी उसे मनचाहा लाभ नहीं होता । नाटककार ने पुरानी सगुन परम्परा की आस्था को मात्र अन्ध विश्वास सिद्ध कर दिया है । नायक के व्यक्तित्व की विशिष्टता इस नाटक में नहीं दिखाई जाती । इसी सगुन परम्परा पर हल्का सा व्यंग्य करने के लिये नाटक की रचना की गई है ।

वृन्दावनलाल वर्मा के 'नीलकंठ' नाटक का नायक हरनाथ है । जो प्रारम्भ में वैज्ञानिक प्रयोगों में विश्वास करता है । एक्सरे मशीन के आधार पर वह एक ऐसे पारदर्शी यन्त्र का आविष्कार करना चाहता है जो पृथ्वी में, दीवार में या तिजोरियों के अन्दर रखे सोने का पता पारदर्शिता के गुण के द्वारा लगा सके । किन्तु बाद में उसकी मन:स्थिति बदल जाती है, वैज्ञानिक प्रयोगों से वह मानवीय प्रयोगों पर आ जाता है । पारदर्शी यन्त्र का आविष्कार उसकी प्रममूलक स्थिति थी इसे अपने साथी को बताते हुए कहता है --

'परन्तु वह विश्वास, मोह, अहंकार और दम्भ से उत्पन्न हुआ था'[1]।

वह अपनी प्रयोगशाला के प्रयोग बन्द नहीं करता । अन्तर इतना ही रहता है, पहले वैज्ञानिक प्रयोग करता था अब मार्क्स की विचारधारा के । वह प्रकृति विजय और मनोविजय दोनों-साथ में समन्वय करना चाहता है । काशीनाथ से वह कहता है - 'प्रकृति की विजय और मन की विजय का सामंजस्य और समन्वय अनुमति-बोध और बिना किसी भी पुरस्कार की चाह किये हुए पर सेवा का नित्य एक काम करने के द्वारा, किया जाए, बस । मानव-समाज इसी प्रक्रिया के द्वारा आगे बढ़ सकेगा ।'[2]

----

1. नीलकंठ : वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० ६७
2. वही, वही, पृ० ६८

इस प्रकार अपनी नई भिन्न भिन्न विचारों को धारणाकरता हुआ वह नाटक का नायक सिद्ध होता है।

वृन्दावनलाल वर्मा के "पूर्व की ओर" नाटक का नायक अस्वर्तुन है। अस्वर्तुन का चरित्र गतिशील है। वह प्रारम्भ में बहुत ही क्रूर तथा अत्याचारी है। वह नागार्जुन के रसायन शास्त्र को प्राप्त करने के लिये [illegible] कोण्डा (श्रीपर्वत) के एक विहार का तान्त्रिक बौद्ध भिक्षु जय स्थविर का अपमान करता है, उन्हें मारता पीटता है, और प्रतिष्ठान के जनपद में किसानों के खेत उजाड़ता है। इन अपराधों के दण्ड स्वरूप अपने चाचा (धान्यकटक का राजा) वीरवर्म्मा द्वारा पूर्व की ओर समुद्र या किसी द्वीप में निर्वासित किया जाता है, जिससे वह अपनी आदतों में परिष्कार करे। उसके साथ सात सौ सैनिक भी हैं। जिस जहाज पर ये लोग जा रहे हैं वह तुफान आने के कारण टकरा जाता है। ये सब नागद्वीप समूह में पहुंच जाते हैं वहाँ अस्वर्तुन के ऊपर वहाँ की प्रधान स्त्री धारा, जो मगध से निर्वासित नागरिक जिष्णु की सेवी है, उसकी ओर आकर्षित होती है और उससे विवाह कर लेती है। अस्वर्तुन के चरित्र में परिवर्तन यहीं से प्रारम्भ हो जाता है उसकी क्रूर तथा ध्वंसात्मक प्रकृति समाप्त हो जाती है। नागद्वीप की कठिनाइयों को सहने से उसके चरित्र में दृढ़ता तथा निर्माण की भावना आती है। वह सक्रिय रूप से प्रजा के हित के लिए श्रमिकों के साथ कार्य करता है और सैनिकों को सम्बोधित करते हुए कहता है –

"कौन किसका आदर्श है? तुम्हारा श्रम, त्याग और कर्तव्यनिष्ठा मुझको अनुप्राणित करती रहती है।"[१]

इस तरह नाटककार ने उसका पूर्ण परिवर्तन करके उसे [illegible] गुणों से युक्त [illegible] है।

वृन्दावनलाल वर्मा के 'राखी की लाज' नाटक का नायक मेघराज सपेरा है, जो गाँव के धनाढ्य व्यक्ति बाबाराम की लड़की चम्पा के द्वारा राखी बँधवा कर उसे बहन मान कर राखी की मर्यादा का निर्वाह करता है। चम्पा जब राखी बाँधती है तो वह कहता है — "आज से बेटी तुम मेरी धर्म की बहन हुई।"[1]

डाकुओं के सरदार से चम्पा की रक्षा करता हुआ वह कहता है—

"खबरदार सनीचर जो इस प्रकार की बात बकी। मैं भले माँ बाप का लड़का हूँ मेरी मौज ने मुझे सपेरा और आवारा बनाया है, परन्तु वह मौज बहन को पहिचानने और बचाने से नहीं रोक सकी।"[2]

चम्पा के सान्निध्य से उसके चरित्र में परिवर्तन होता है। वह गाँव में मजदूरी करके ही रहने लगता है।

मेघराज का चरित्र आदर्श गतिशील चरित्र है सच्चे भ्राता के रूप में उसका चरित्र बहुत सुन्दर है।

चम्पा का विवाह वह उसके प्रेमी सोमेश्वर से कराता है। इस तरह अपनी धर्म से बनाई गई बहन की पूर्ण रूप से रक्षा करता है। इस तरह नाटक का नायक सिद्ध हो जाता है।

वृन्दावनलाल वर्मा के 'निस्तार' नाटक का नायक उपेन्द्र सुधारवादी है। वह गाँधीवादी विचारों का पक्षपाती है। अस्पृश्यता निवारण

---

1) राखी की लाज, वृन्दावन लाल वर्मा, पृ०१८

2. राखी की लाज, वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० ३१

में वह गाँधी जी के समान सक्रिय सहयोग देता है । हरिजनों के अधिकारों का समर्थन कर,समाज में उन्हें यथोचित स्थान प्रदान करता है ।

हरिजनों को वह मानव मानता है । अतः उनके समर्थन में जयकिंकर से जो,ऊँची जाति का व्यक्ति है, और रूढ़ियों का भक्त है तथा हरिजनों को हेय दृष्टि से देखता है - वह कहता है -

"मानव को नीच समझना कहाँ का धर्म है....." हम तुम कौन हो ऊँचे कर्म करते हैं ? ऊँची जाति के कहे जाने वालों में ही इतने नीच और कुकर्मी हैं कि परमात्मा को अपनी दृष्टि में ग्लानि होती होगी ।"[1]

वह हरिजनों को पानी खींचने का तथा मन्दिरों में प्रवेश का अधिकार दिलाता है, पर क्रान्ति में विश्वास नहीं करता उसका कहना है कुएं से पानी खींचो यदि कोई लाठी मारने आए तो सिर झुका दो । लीलाधर विधानसभा का हरिजन सदस्य क्रान्ति का सहारा लेना चाहता है तो उसे समझाते हुए कहता है -

"सिर न फोड़ कर हृदय जीतना है । झगड़ा से हानि होगी ।"[2]

वह क्रान्ति में ध्वंस का सहारा न ले कर निर्माण का सहारा लेता है । उसका विचार है -

---

१. निस्तार, वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० ५८

२. वही, वही, पृ० २२

"बार बार हड़ताल और सत्याग्रह, सत्याग्रह और हड़ताल करने से कठिनाइयाँ बढ़ेंगी, लोगों का उत्साह घट जावेगा।"[1]

इस तरह विशिष्ट गुणों को धारण कर वह नायक की संज्ञा प्राप्त करता है। वैसे इस नाटक में अन्य कई पुरुष पात्र आये हैं जैसे- लीलाधर, नन्दू, बरसातीलाल रामदीन, जटाशंकर। इन सभी में महत्वपूर्ण चरित्र उपेन्द्र का है अतः वही नाटक का नायक सिद्ध होता है।

स्त्री पात्रों में बाई का व्यक्तित्व महत्वपूर्ण है।

वृन्दावनलाल वर्मा के 'बीरबल' नाटक का नायक 'बीरबल' ऐतिहासिक रूप में इस नाटक में अंकित किया गया है। वह सदैव अकबर के पास रह कर उसे सदैव कर्तव्य के प्रति सजग रखता है और उसके गुणों अवगुणों का विशेष विवेचन मित्र के रूप में करता है।

बीरबल का परिचय पूर्व निश्चित धारणानुसार एक हास्यप्रिय पात्र के रूप में ही दिया जाता, लेकिन नाटककार ने इसमें बीरबल के गम्भीर दायित्व पूर्ण व्यक्तित्व को चित्रित किया है।

जीवन जगत के रहस्य को, ईश्वर की पहचान वह रखता है अकबर से ईश्वर के विषय में बातचीत करते हुए कहता है -

"क्योंकि जहाँपनाह परमात्मा को कोई देख नहीं सकता, क्योंकि सूर्य सब संसार को सब ऋद्धियाँ सिद्धियाँ देता है, क्योंकि सूर्य परमात्मा की शक्ति का चिह्न है।"[2]

---

१. निस्तार, वृन्दावनलाल वर्मा, पृ ३५

२. बीरबल, वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० ४२

ऊपर से नास्तिक जैसी बातें करते हुए भी वह वास्तव में हृदय से आस्तिक है। उसका हास्य शुद्ध निर्मल हास्य होता है। अकबर के द्वारा पूछे जाने पर, कसाली और फूहड़पन की हँसी की इस प्रकार व्याख्या करता है -- "दूसरों को फिसलते, गिरते और मरते देखकर हँसी आती है वह फूहड़पन है और मनुष्य की निजी नीचता और बर्बरता से उत्पन्न होती है।"[1] अपनी हास्य प्रवृत्ति द्वारा वह दूसरों को हँसाना चाहता है। यह तथ्य बीरबल के कथन से स्पष्ट होता है --

"यदि जीवन के कठोर और रुलाई लेने वाले पलों को मैं या और कोई और थोड़ी सी हँसी दे दे, तो संसार की कुछ तो सेवा हो जाएगी।"[2]

हिन्दू मुस्लिम ऐक्य की भावना भी उसके मन में है।

इस प्रकार समस्त नाटक में बीरबल बड़ा ही दूरदर्शी उदार, तत्ववेत्ता, अकबर का सहायक मित्र तथा परमादर्श दाता सिद्ध हुआ है। अकबर के द्वारा युद्ध मैदान में फँस जाने पर भी वह हँसता रहता है। इस तरह वही नाटक का नायक सिद्ध होता है।

गोविन्दवल्लभ पन्त के ययाति और तुलसीदास नाटक, नायक प्रधान श्रेणी में आते हैं। नाटककार ने नाटकों के नाम नायक के नाम के अनुसार ही रखा है। ययाति नाटक का नायक ययाति ही है।

---

1 बीरबल, वृन्दावन लाल वर्मा, पृ० १९

2. बीरबल, वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० ४३

ययाति योग सिद्ध करने के लिये अपने बेटों से एक वर्ष के लिए यौवन उधार मांगते हैं । सर्वप्रथम वह देवयानी के छोटे पुत्र राजकुमार से यौवन उधार मांगते हैं । जब वह पिता की हंसी उड़ाता है, तो वह उसके भ्रम का निवारण करते हुए कहते हैं --

"विलास के लिये नहीं मन को वश में करने के लिए ऐसा कर रहा हूं ।"[१]

अन्त में वह इस यौवन को शर्मिष्ठा के छोटे पुत्र द्वारा प्राप्त करते हैं । पुरु (छोटे पुत्र) के शरीर में अपनी मन बुद्धि आत्मा को प्रविष्ट करा कर यौवन की कामनाओं की आहुति कामनाओं की अग्नि में देकर कामना-विहीन हो गुफा में योग साधना का सिद्ध वह करते हैं । ययाति (जो पुरु के वेश में गुफा में रह रहे हैं) मालती नामक स्त्री (जो पुरु की प्रेमिका है) को आश्रम में प्रविष्ट होने को मना करते हैं । वह आश्रम में प्रविष्ट होने के शब्द पर व्यंग्य करती है कि क्या वैभव विलास से युक्त इस स्थान को आश्रम कहा जा सकता है ? ययाति भोग और योग के समन्वय का बड़ा सुन्दर विश्लेषण करते हुए कहते हैं --

"यहां तो त्याग और तृप्ति भोग और योग ,बन्धन और मुक्ति अंधेरा और उजाला साथ साथ झिलमिल कर रहे हैं । इसी जोड़ का नाम योग है बदन में राख पोत कर नंगे हो जाने की बात दूसरी है ।"[२]

---

१. ययाति, गोविन्दबल्लभ पन्त,पृ० १८

२. वही, वही, पृ० ५६

वह कामना को जिलाने के लिये नहीं, जलाने के लिए युवा अवस्था उधार माँगते हैं, और योग सिद्ध करते हैं। उनका विवेक पूर्णरूप से जागृत हो जाता है। वह शाश्वत सत्य को प्राप्त करते हैं। राजकुमार जब ययाति को मुकुट लौटाना चाहते हैं तो वह कहते हैं –

"नहीं इसीलिये माया के अपने तोड़ कर मैंने शाश्वत सत्य को पाया है, देखा और समझा है, कामनाएं ही मनुष्य के बन्धन हैं, उनको मनसे मिटा डालना ही मुक्ति है।"[1]

नाटककार ने राजा ययाति के द्वारा भोग में योग का सुन्दर समन्वय प्रतिपादित किया है। इस तरह नाटक का नायक ययाति स्पष्ट रूप से है।

गोविन्दवल्लभ के 'तुलसीदास' नाटक के नायक तुलसीदास ही हैं। जो पहले मठ में रह कर सुख आराम का जीवन व्यतीत करते हुए रामचरित मानस के पाँच प्रारम्भिक काण्डों की रचना करते हैं, परन्तु अपनी इतनी धीमी गति देख कर वह विह्वल हो जाते हैं। वे महान होते हुए भी अपने को क्षुद्र जीव ही समझते हैं, अतः दूसरों के द्वारा सम्मान पाकर, प्रसन्नता के स्थान पर दुःखी होते हुए कहते हैं – "मठ में सर्वोच्च आसन पर बिठा कर मेरी महिमा बढ़ा दी गई है, निचले धरातल पर बैठे लोगों की दृष्टि जब मेरी आँखों से टकरा नहीं सकी, तो वे मेरे आशीर्वादों के ग्राहक हो गये। जब वे मेरे पैर छूते हैं तो मैं मन ही मन भगवान से क्षमा माँगता हूँ।"[2]

अतः वे मठ छोड़कर, काशी में गोपाल मन्दिर में एक कुटी में निवास करते हैं और अपने सारे वस्त्राभूषण मठ को वापस कर देते हैं, वहाँ की कोई

---

1. ययाति, गोविन्दवल्लभ पन्त, पृ० १२२
2) तुलसीदास ,, पृ० ११

भी सुख-सुविधा लेने को तैयार नहीं होते ।

महात्यता द्वारा दोनों समय भेजे जाने वाले भोजन को वे स्वीकार नहीं करते । यहाँ तक कि सेवा के लिये आई हुई रागिनी को भी वापस कर देते हैं ।

इस तरह एकान्तवासी होकर मानस के अन्तिम दो खण्डों का सृजन करना चाहते हैं ।

उनके पूर्व लिखे हुए मानस के पाँच खण्ड खो जाते हैं, जिससे वे विह्वल हो उठते हैं, फिर विवेक का सहारा ले पुनः उन पाँचों खण्डों का सृजन करने की सोचते हैं । सौभाग्यवश वे पाँचों खण्ड उन्हें प्राप्त हो जाते हैं । नाटक में कई पुरुष पात्र आए हैं - विष्णु, हरिहर, दामोदर, भैरव ब्रजदत्त । इन सभी के सहयोग से तुलसी का चरित्र और भी निखरा है ।

इस तरह इस नाटक के नायक तुलसीदास सादा जीवन उच्च विचार और अन्य विशिष्टताओं के साथ अवतरित होते हैं, अतः वे ही नाटक के प्रधान पात्र सिद्ध होते हैं ।

सियारामशरण गुप्त का पुण्यपर्व नाटक नायक प्रधान है । इस नाटक में कई पुरुष पात्र हैं — सुतलोम, विशाखा, यशोधन, किंकर रक्षक, नन्द, सुभद्र । स्त्री पात्रों में विशाखा, उत्पला आदि हैं । नायक के रूप में विशिष्ट चरित्र रखने वाला सुतलोम है, स्त्री पात्रों में विशाखा का चरित्र उल्लेखनीय है । सभी पात्र अपना अपना महत्त्व रखते हैं ।

नायक सुतलोम की नायकोचित कई विशिष्टताएँ उल्लेखनीय हैं । वह नारी, जाति का आदर करता है । उसका कहना है —

"यदि पुरुष चारों ओर से किसी ऋण-पाश में जकड़ा हुआ है तो नारी के। श्रद्धा के प्रतिदान से ही उस ऋण का परिशोध हो सकता है। मेरे हृदय में उसके लिये अखण्ड रूप से पूजा का प्रदीप प्रज्वलित है।"[१]

सुलतोम बुद्ध वचनों का आदर करता है। विशाखा से उसका कथन है -

"बुद्धदेव जो कुछ करेंगे, वह आलोच्य नहीं है। परन्तु इतना मैं कह सकता हूँ कि जिसे तुम बुद्ध के अलग प्रेम का परित्याग करती हो। वह परित्याग नहीं, विश्व की परिधि में उस संकीर्ण प्रेम की परिव्याप्ति मात्र है।"[२]

सुलतोम दयालु स्वभाव है। बुद्धक के द्वारा पकड़े गये बलि देने वाले पुरुषों के रोने की बात सुनकर वह बुद्धक से कहता है -

"मुझे भी इस बात का आश्चर्य है कि उन निरपराधों के कातर रुदन ने भी तुम्हारे मन में दया का संचार नहीं किया।"[३]

इस तरह हत्या अहंभाव, युद्ध आदि का वह विद्रोह करता है। उसका कहना है -"हम परस्पर एक दूसरे के लिये चिन्ता करें।"[४]

---

१. पुण्य पर्व, सियारामशरण गुप्त, पृ० २१
२. वही, वही, पृ० २२
३. वही, वही, पृ० २५
४. वही, वही, पृ० ६७

इस तरह अनेक नायकोचित विशिष्टताओं से समन्वित होने के कारण वह नाटकका प्रधान पात्र है ।

रामावतार चेतन के 'धरती की महक' नाटक का नायक सागर है, जिसकी पत्नी मर चुकी है । सागर एक पढ़ा लिखा नवयुवक है । गाँव में रहकर वह अध्यापन कार्य करता है । यद्यपि शहर में रह कर वह ज्यादा धन कमा सकता है, किन्तु उसे गाँव ज्यादा पसन्द है, अतः वह गाँव में ही रहता है ।

सागर को डॉक्टर बनने का बहुत शौक था किन्तु पिता का देहान्त हो जाने से इसका वह शौक पूरा नहीं हुआ । यही शौक वह अपने छोटे भाई प्रकाश से पूरा करना चाहता है, जिसके लिये वह डाकखाने में रुपए जमा करता है । सागर पढ़ने में तेज था, जिसका प्रमाण उसकी माँ के कथन से मिलता है — "हमारा सागर एम० ए० तक पढ़ा है, लेकिन फेल किसी में नहीं हुआ ।"[1]

सागर दूसरी शादी नहीं करना चाहता । वह दूसरों की सेवा में ही अपनी जिन्दगी बिता देना चाहता है, तभी तो कल्लू तेली की पत्नी का कोल्हू में हाथ पिस जाने पर सागर उसे लेकर कानपुर जाता है, रुपया खर्च करता है । उधर उसे कानपुर ले जाता है इधर घर में चोरी हो जाती है । सागर हर कार्य बहुत सोच समझ कर धैर्य से करता है । इतना सामान चोरी हो जाने पर भी वह धैर्य नहीं छोड़ता । बड़ी शान्ति से सोच समझ कर रपट लिखवाता है, जिसका प्रमाण थानेदार से वार्तालाप करते हुए मिलता है ।

---

1. धरती की महक, रामावतार चेतन, पृ०११

सागर के तीन दुश्मन जग्गू, लिखना, काशी ईर्ष्या वश उसका सत्यानाश करने के लिए जुट जाते हैं । उनका सामना सागर बड़ी वीरता से करता है । इन तीनों को सागर गोली से मार डालता है । उसे अपनी धरती से प्यार है । जब वह गाँव से विदा लेने लगता है तो अपने मित्रों से कहता है"तुम लोग पढ़ लिखकर यहीं रहना इसी गाँव में । गाँव को न छोड़ना, कितनी प्यारी है यह धरती । इसी की गोद में तुम पल कर इतने बड़े हुए हो । यह तुम्हारी माँ है । शहर में इसके पुनीत आंचल की छाया के लिये, इसकी महक के लिये तरस जाओगे"।[१]

इस प्रकार विभिन्न दृष्टिकोण से यही नाटक का नायक सिद्ध होता है ।

मोहन राकेश कृत "आषाढ़ का एक दिन" नाटक कालिदास के जीवन पर आधारित है, कालिदास ही इस नाटक के नायक हैं ।

नाटक में कालिदास और मल्लिका के प्रेम का उदात्त और काल्पनिक चित्र प्रस्तुत किया गया है । कालिदास और मल्लिका एक गाँव में रहते हैं । कालिदास की रचनाओं की ख्याति से राजदरबार से राजकवि बनने का निमन्त्रण आता है, जिसे मल्लिका के दबाव से कालिदास स्वीकार करते हैं । फिर वे काश्मीर के शासक बना कर भेजे जाते हैं । शासनकार्य में रुचि न होने के कारण जब वे गाँव वापस आते हैं तब तक मल्लिका विलोम के मन की मलिका

---

१. धरती की महक, रत्नावतार जैन, पृ० १५१

हो चुकी होती है, उसके प्यार का उपहार उसकी बच्ची उसके पास होती है ।

महानता के साथ साथ कालिदास में मानवीय दुर्बलताएं भी हैं । नाटककार ने नायक का चरित्र युग के रचनाकार के प्रतीक रूप में रखा है ।

दूसरी ओर विलोम का सशक्त चरित्र है, जिससे मल्लिका हृदय से नफरत करती है । विलोम यह जानता है । वह मल्लिका से कहता भी है –

"तुम मुझसे घृणा करती हो, मैं जानता हूं, परन्तु मैं तुमसे घृणा नहीं करता । मेरे यहां होने के लिये इतना ही पर्याप्त है ।"[१]

अन्त में भी कालिदास जब मल्लिका से मिलने आया हुआ है तब विलोम दो बार दरवाजा खटखटाकर वापस लौट जाता है । तीसरी बार जब अन्दर आता है तो कालिदास को देखकर अधिक नहीं होता वरन् कालिदास से कहता है –

"गले नहीं मिलोगे मेरा शरीर मैला है इसलिये ? या मुझी से घृणा है ।"[२]

इसके बाद अपनी उपस्थिति उचित न समझ कर मल्लिका पर उसका आतिथ्य थोप कर चला जाता है ।

इन समस्त पात्रों में कालिदास का चरित्र ही महान है । वही नाटक का प्रधान पात्र है ।

---

१. आषाढ़ का एक दिन, मोहन राकेश, पृ० ४५

२. वही, वही, पृ० ११४

'दशरथ ओझा' के 'महल और झोंपड़ी' नाटक के नायक मेवाड़ के महाराणा प्रताप सिंह हैं, जो जंगल में झोंपड़ी बनाकर निवासकर रहे थे। सन् १५६८ से १५८४ तक भारत का सम्पूर्ण सैन्य बल और धन बल जिस व्यक्ति को बन्धन युक्त न कर सका, वह राणा प्रताप इस देश की स्वतन्त्रता का ऐसा प्रतीक बन गये हैं, जिनकी कीर्ति कभी धूमिल नहीं हो सकती। स्वाधीनता स्वाभिमान के लिये इतने दीर्घकाल तक इतना घोर संकट सहने वाले योद्धा विरल हैं। साहित्य संगीत के लिये यह देश ऐसे महान व्यक्ति से प्रेरणा पाता रहेगा।

महाराणा प्रताप ने अकबर से युद्ध करने के लिये घोर तपस्या की। भूमि पर शयन किया, पत्तों पर भोजन करने का संकल्प किया उनकी इस तपस्या से प्रभावित होकर भील कन्याएं तक युद्ध में कूद पड़ीं।

महाराणा प्रताप व्यवहार कुशल हैं, इसबात का प्रमाण समय समय पर मिलता है। उदाहरणार्थ मानसिंह के आगमन पर उनका व्यवहार देखने योग्य है, किन्तु मानसिंह को फिर भी अपमानित होना पड़ता है। क्योंकि महाराणा उनके साथ भोजन नहीं करते।

वे धर्मनिष्ठ हैं अपने धर्म के कारण उनके साथ भोजन नहीं करते।
~~वे धर्मनिष्ठ हैं अपने धर्म के कारण उनके साथ भोजन नहीं करते।~~

महाराणा उदार हृदय के हैं। वे अपने दोनों भाई जगमल, शक्तिसिंह के क शरण में आने पर उन्हें हृदय से गले लगा लेते हैं, उनके मन में उन लोगों के प्रति ज़रा भी आक्रोश नहीं रहता। जबकि जगमल को पुनः प्राप्त करने के लिए उन्हें कितना विवाद करना पड़ता है।

राणा प्रताप बहुत ही स्वाभिमानी हैं उनसे कितनी बार सन्धि के लिए प्रस्ताव रक्खा जाता है किन्तु वे स्वीकार नहीं करते । प्रताप सत्य और न्यायप्रिय हैं जिसे वे अपने सैनिकों से इस प्रकार कहते हैं --

"दूसरे के पापों को देखना उससे भी भयंकर पाप है । पाप की छाया में पाप से अधिक दारुणता होती है, हमें अपना कर्त्तव्य पालन करना है ।"[१]

इनके अतिरिक्त और भी तेजस्वी पात्र इस नाटक में आए हैं -- मानसिंह, जगमल, शक्तिसिंह शहबाज खाँ, खानखाना, माया शाह आसफ खाँ, स्त्री पात्रों में महाराणी, राजकुमारी, बेगम रानी हैं । सभी चरित्र श्रेष्ठ हैं । इन सभी चरित्रों से श्रेष्ठ चरित्र महाराणा का है । नायक के जो गुण होने चाहिये इनमें हैं अत: वे निश्चय ही नाटक के नायक सिद्ध होते हैं ।

रांगेय राघव, के रामानुज नाटक के नायक रामानुज हैं । वे अपने समय के एक बड़े क्रान्तिकारी विचारक थे । उन्होंने चमारों को समानाधिकार दिलाने का प्रयत्न किया, ब्राह्मणों की धार्मिक कट्टरता हटाने का पूर्ण प्रयास किया । भक्तिवाद का प्रतिपादन कर दु:ख के स्थान पर आनन्द और प्रेम को प्रतिष्ठापित कर समाज में नवजीवन की वेगवती धारा प्रवाहित की ।

रामानुज के समय दक्षिण में तो मुसलमान और ईसाई आ ही गये थे । उत्तर में भी मुसलमान और ईसाई थे । उस समय मुसलमान शासक केवल लूट में लगे थे, राज करने का प्रश्न उनके सामने नहीं आया था । यह सत्य है

---

(१) महल और झोपड़ी, दशरथ ओझा, पृ० ८०

कि रामानुज चमारों को पूर्ण अधिकार नहीं दिला सके । परन्तु भक्ति के माध्यम से समानता का ब्राह्मणों में संदेश सुनाने वाले वे प्रथम व्यक्ति थे । शंकराचार्य ने भी ब्राह्मण शूद्र और कुत्ते को समान कहा था परन्तु वे व्यवहार में न ला सके थे । रामानुज ने दुःख के स्थान पर आनन्द और प्रेम को प्रतिष्ठापित करके समाज को एक नया जीवन दिया ।

रामानुज विवाहित थे । बाद में उन्होंने सन्यास ले लिया था । वे उदार हृदय और विद्रोही थे । गोपुर पर चढ़ कर गुरुमन्त्र सुनकर उन्होंने ब्राह्मणों और तत्कालीन सर्वाधिकार भावना को तोड़ दिया था । वे आलवर परम्परा से पूर्ण प्रभावित थे । रामानुज ने जैने को ब्राह्मण बनाकर ब्राह्मण जाति की कट्टरता को हटा कर उसके स्थान पर ब्राह्मणत्व को भी मतानुसार बदलने वाला बना दिया । उनके समय से ही दक्षिण में श्रीवैष्णव का प्रारम्भ हुआ । उनका प्रभाव उत्तर भारत पर बड़ा गहरा पड़ा था । रामानन्द उनकी शिष्य परम्परा में थे । रामानुज ने उत्तर भारत में भी यात्रा की थी । वे बड़े ही अनुभवी और विद्वान थे ।

इस नाटक में और भी पात्र हैं - यादवप्रकाश, यमुना मुनि, महापूर्ण, गोविन्दभट्ट और कुरेश ।
स्त्री पात्रों में - कान्तिमती वेदनायकी(पत्नी) किल्वी, राजलक्ष्मी आदि सभी पात्र ऐतिहासिक हैं ।सभी का अपना अपना व्यक्तित्व है, अपना अपना चरित्र है । इन सभी पात्रों में महत्वपूर्ण व्यक्तित्व अथवा चरित्र रामानुज का है अतः वे ही इस नाटक के नायक हैं ।

जगदीशचन्द्र माथुर के 'कोणार्क' नाटक में स्वतन्त्र भारत की दो पीढ़ी की कथा अभिव्यक्त होती है ।

महाशिल्पी विशु, पिछली पीढ़ी का चरित्र है । धर्मपद युवा पीढ़ी का प्रतीक है । इसके अतिरिक्त और भी पात्र नाटक में आए हैं किन्तु महत्व-पूर्ण चरित्र इन दोनों का ही है । इन दोनों में कौन प्रधान है, यह विवादा-स्पद है ।

कथानक के अनुसार १३ वीं शती में उड़ीसा के कला प्रेमी राजा नरसिंह देव एक भव्य सूर्य मन्दिर का निर्माण कोणार्क में महाशिल्पी विशु से कराते हैं । वह अपनी गर्भवती प्रेयसी चन्द्रकला को छोड़कर भाग आने की पीड़ा और वेदना को कोणार्क की रचना में साकार करने का प्रयास करता है । महामात्य राजशिल्पियों के प्रति कठोर है तथा एक सप्ताह में मन्दिर पूरा करने अथवा हाथ काट लेने के दण्ड का आदेश देते हैं । देवालय के पूरा होने तक महामात्य राजा के प्रति विद्रोह करता है । धर्मपद और विशु राजा के पक्ष में विद्रोह करते हैं । धर्मपद के आहत होने पर यह रहस्य ज्ञात होता है कि धर्म-पद विशु का पुत्र है । राजा सेना लेकर मन्दिर में प्रवेश करता है, परन्तु विशु स्वयं निर्मित मन्दिर को स्वयं ही अपने हाथों से ध्वस्त करता है जिससे महामात्य और सेना दब कर मर जाती है ।

इस तरह सम्पूर्ण कथा में धर्मपद और विशु का सम्बन्ध मनोवैज्ञानिक, नाटकीय तथा रोमैंटिक है । इन दोनों पात्रों के चरित्र में विशु का चरित्र प्रधान है, अतः विशु ही नाटक का नायक है ।

मिलिन्द के 'अशोक की आशा' नाटक के नायक अशोक हैं,जो एक महायुद्ध में विजय प्राप्त करके,उसकी हिंसात्मक विभीषिका से मर्मान्तक वेदना का अनुभव करते रहने के कारण सदा के लिये युद्धनीति का परित्याग कर देते हैं। इसके पश्चात् अशोक वीर होते हुए भी अपने जीवन में कभी शस्त्र नहीं ग्रहण करते।

नाटक के प्रारम्भ में भी वे शस्त्र नहीं उठाना चाहते वे कहते हैं --

"खेद है गुरुदेव कि आपका यह इंगित मुझे एक अत्यन्त अनुचित और वीभत्स कृत्य की ओर प्रेरित कर रहा है। मैं एक सैनिक हूँ, मैंने अनेक युद्ध किये हैं, राज्य के शत्रुओं का प्रचुर रक्त बहाया है। भविष्य में भी यह करने को तैयार हूँ। किन्तु स्वयं राज्य पाने के लिये मैं अपने बंधु का वध कभी न कर सकूँगा।"[१]

वे अपनी जनता को बहुत ही सुखी और समृद्ध देखना चाहते हैं। जिस तरह उनकी प्रजा सुखी थी उसी तरह कलिंग राज्य की जनता को भी अशोक सुख पहुँचाना चाहते हैं। वे कहते हैं --

"कलिंग विजय के उपरान्त मैं अपने महान राज्य की अन्य जनता की भाँति नहीं कलिंग जनता को भी अधिक से अधिक सुख समृद्धि और संस्कृति के उच्च शिखर पर आसीन करने हेतु अपनी शक्ति के प्रत्येक अणु का उत्सर्ग करूँगा।"[२]

----

१. मिलिन्द, 'अशोक की आशा', पृ० २१

२. वही वही, पृ० ७१

वे किसी भी विषय पर विचार विमर्श करने के लिये दूसरों के भी विचारों को सुनना अनिवार्य समझते हैं। जैसा कि प्रव्रज्या के समय उपगुप्त अपने पुत्र पुत्री के अलावा एक ग्रामीण किसान सुशील व उसकी पत्नी सरला के विचारों को भी महत्व देते हैं।

अशोक में न कोई गर्व था न ही अहं की भावना थी, वे अपने को प्रजा के समान ही समझते थे।

इस नाटक में और भी पात्र हैं जैसे उपगुप्त, महेन्द्र, महाबल, सुशील, तपन इन सभी में सर्वश्रेष्ठ चरित्र अशोक का है अतः वे ही नाटक के नायक अथवा प्रधान पात्र हैं।

शील के 'किसान' नाटक में भारतीय किसान की ज़मीन का संघर्ष है। जब देश में पहलीबार ग्राम-पंचायतों के चुनाव हुए तो उनमें सूद-खोरों और जमींदारों ने अधिकार कर लिया। किसान मुसीबत में पड़ गये, मुसीबत कहानी बन गई, यही कहानी इस नाटक का आधार है।

इसमें कई पुरुष पात्र हैं, धीरज चौधरी सुन्दरसिंह, कासिम, केदार, पूरन चौधा साहू आदि आदि। किन्तु इसमें किसे नायक माना जाए यह विवाद है। वास्तव में इस नाटक में नायक, नायिका का पता लगाना कठिन है कथासूत्र सभी पात्रों को लेते हुए सामाजिक ढंग से बुना है।

वैसे धीरज चौधरी ही इस नाटक का नायक माना जाएगा क्योंकि नाटक में मुख्य स्थान उसी को प्राप्त है। हर तरह की परिस्थिति का सामना वह बड़े धैर्य के साथ करता है। धीरज चौधरी परिवार का मुखिया है। पंचायती झगड़े, ज़मीन के झगड़े गाँव में जो तरह तरह के झगड़े हैं सभी

को वह बड़ी सुविधा से सुलझाता है। परिवार का भरण पोषण भी ठीक ढंग से करता है।

इस तरह इस नाटक का नायक धीरज चौधरी है।

शील के तीन दिन तीन घर नाटक में ३ पुरुष पात्रों का चरित्र विशेष रूप से सामने आता है — प्रभात, चन्दू और हीरालाल।

इन तीनों पुरुषों का चरित्र अपने में ही पूर्ण है।

प्रभात कवि और साहित्यकार है जो समय के विकराल थपेड़ों के बीच साहित्यिक सत्य की रक्षा करता है। रोहित, नीलिमा तथा अपनी अन्धी सास का भरण पोषण करने के लिए एक दैनिक पत्र में नौकरी करता है।

चन्दू मिल का जुझारु मजदूर है। श्यामा कहारिन ने सिफारिश करवा के उसे मिल में नौकरी दिलवा दी है। वह नेतागीरी में सबसे आगे है।

हीरालाल बम्बई का मामूली बजाज है अपने छोटे भाई मुकुन्द की सहायता से यह कार्य करता है। हीरालाल के कोई सन्तान नहीं है। हीरालाल अपनी पत्नी को हमेशा मारता पीटता रहता है। हीरालाल हमेशा प्रभात से तना रहता है। प्रभात की योग्यता से उसे चिढ़ है,मुनाफे का धन्धा हीरालाल को घोर तिकड़मी बना देता है।

इन तीनों चरित्रों में अधिक सुन्दर चरित्र प्रभात का है अत: उसे ही इस नाटक का नायक मानना उचित होगा।

प्रभात अत्यन्त परिश्रमी व्यक्ति है। वह अपने परिश्रम के द्वारा कमाए गये धन पर ही विश्वास करता है। इसका प्रभाव हमें हीरालाल, और

कलंकी के प्रसंग में मिलता है । उसके घर की स्थिति बड़ी ही दयनीय है । इसका भान उसे तब होता है जब उसकी बीबी को पड़ोस के लड़के की छठी में जाना रहता है और उसके पास पहनने को कपड़ा नहीं रहता । इसका एक और उदाहरण तब मिलता है जब उसके पुत्र राहुल को फीस न देने के कारण स्कूल से निकाल दिया जाता है । वह तेज बुखार में बाहर पत्थर पर लेटा रहता है । इस तरह लेखक ने अनूठे उदाहरण देकर नाटक को बहुत ही रोचक बना दिया है ।

वह अपनी परिस्थितियों से मजबूर है तभी तो वह अपनी पत्नी नीलिमा से कहता है -"नीलिमा मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम्हारे स्वप्न अधूरे रह गये, इच्छाएं हँसी में छिपी तड़पती रह गईं ।"[1] इस तरह विभिन्न उदाहरणों को देखते हुए प्रभात ही इस नाटक के नायक सिद्ध होते हैं ।

विष्णु प्रभाकर के समाधि और युगे युगे क्रान्ति नाटक नायक प्रधान हैं । समाधि नाटक का नायक कुशल राजनीतिज्ञ स्कन्द है । राजनीति में वह मानवता धर्म को महत्व नहीं देता । शत्रुओं को क्षमाकर देना वह राजनीति की बहुत बड़ी भूल मानता है । क्षमा उसकी दृष्टि में अपने आप में एक बहुत बड़ा गुण है, पर कुपात्र को क्षमादान करने से वह अवगुण बन जाता है ।

हूणों को वह निरन्तर मगध से निकालने का प्रयत्न करता है । समस्त जनता उसकी विजय, और वीरता देख कर जय जयकार करती है । वह जयकार को रोकता है क्योंकि जयकार अहं को जन्म देती है । उसमें अत्यधिक नम्रता है । वह कहता है -

---

१. तीन दिन तीन घर, शील, पृ० १००

"मेरे मित्रों नागरिकों ! मैं मालवेन्द्र नहीं हूँ । मैं तो आपका सेवक हूँ । एक छोटा सा सेवक ।"[1]

वह वंश परम्परानुसार राजा नहीं है । वह साधारण नागरिक बना रहना चाहता है उसका कहना है - "मेरा जैसा सेवक राजा बन सकता है, परन्तु प्रत्येक राजा सेवक नहीं बन सकता । मुझे सेवक रहने दो । मुझे राजसत्ता के मद में मत डूबने दो । मुझे शक्ति दो, आलस्य नहीं मुझे प्रेम दो भय नहीं मुझे अपने पास रखो दूर मत करो ।"[2]

वह आनन्दी के पुत्र (विजय) जो कुणालों के पाप का परिणाम था उसका दायित्व अपने ऊपर लेता है, आजादी को उसकी माँ बनाता है । इस तरह भिन्न भिन्न कार्य करके मालवेन्द्र नाटक का नायक सिद्ध होता है ।

'युग युग क्रान्ति' नाटक में कई पुरुष पात्र और कई स्त्री पात्र आए हैं, किन्तु उन सभी के रूप बदलते रहे हैं । एक देवीप्रसाद ही ऐसा पात्र है जो प्रारम्भ से अन्ततक रंगमंच पर रहता है । पहले तो वह दर्शक का ही काम करता है, किन्तु नाटक देखते देखते उसके जीवन में वास्तव में नाटक घटित हो जाता है ।

यह नाटक वास्तव में युग युग की क्रान्ति लिये हुए है । इसका प्रारम्भ रामकली और कल्याण सिंह के जोड़े से होता है । सन् १८७५ का वह समय जब दिन में पति-पत्नी एक दूसरे की सूरत नहीं देख सकते थे जैसा कि रामकली के कथन से स्पष्ट है - "हम कुलीन लोग हैं हमारी यही कुलरीत है,

----

१. समाधि, विष्णु प्रभाकर, पृ० १२६
२. वही, वही, पृ० २०६

बड़े बुजुर्गों के रहते जवान लोग अपनी घरवाली का मुँह नहीं देखा करते । दिन में उनके पास नहीं आते यह बेशर्मी और बेअदबी है ।"[१]

इसके बाद मंच पर प्यारेलाल और कलावती आते हैं, वे पिछले जोड़े से बढ़ कर कदम उठाते हैं । इस तरह धीरे धीरे यह क्रान्ति बढ़ती जाती है ।

देवीप्रसाद की पुत्री जिसके विवाह के लिये वह चिन्तित रहते हैं, स्वयं कोर्ट मैरेज कर उनके पास अपने विवाह की चिट्ठी भेज देती है । देवीप्रसाद को उस समय मुर्च्छा आ जाती है । इस तरह पूरे नाटक में आच्छादित रहने के कारण देवीप्रसाद ही नाटक का नायक सिद्ध होता है ।

रामवृक्ष बेनीपुरी के "विजेता" नाटक का नायक चन्द्रगुप्त है । वह आद्यान्त इस नाटक में घटनाओं का सृष्टा, अग्रणी और फलभोक्ता है । वह कभी उत्साहहीन नहीं होता । चन्द्रा का चन्द्रगुप्त के प्रति प्रणय निवेदन से वेदना का ज्ञान उसे पहली बार तब होता है, जब चाणक्य के कठोर निर्णय के कारण सेल्यूकस की पुत्री राजमहिषी बन कर आती है । चन्द्रगुप्त बाह्य शत्रुओं पर ही विजय नहीं प्राप्त करता, बल्कि अपने मन में उठने वाले अनेक विकल्पों का भी विजेता बनता है ।

चन्द्रा के एक प्रश्न के उत्तर में चन्द्रगुप्त कहता है -"शक्तिहीन के लिये यह पृथ्वी नहीं है चन्द्रे" इस पंक्ति में चन्द्रगुप्त की महिमा निहित है । चन्द्रगुप्त पृथ्वी के एक बड़े भाग का चक्रवर्ती सम्राट अपने पौरुष से बनता है ।

----

१. युगे युगे क्रान्ति, विष्णु प्रभाकर, पृ० १३-१४

जब चन्द्रा व्यंग्यपूर्ण शब्दों में कहती है देख रही हूँ उसी से शक्तिशाली रणावन की धूल फाँकते फिरते हैं इसका उत्तर चन्द्रगुप्त इस प्रकार देता है - रणावन ! चन्द्रे शक्तिशाली के लिये, बलवान के लिये वीर के लिये दो ही प्रिय स्थान है रण या वन । रण जहाँ भुजाएँ फड़कती हैं, तलवारें चमकती हैं, जहाँ पौरुष रक्त की होली खेलता है, संहार की विजया मनाता है, बलिदान की दीपावली सजाता है, भालों की उछाल ढालों की सँभाल, वीरों का जयनाद-कायरों की आर्त पुकार । रण ही बताता है, दो पैर, दो हाथ पाने से ही कोई मानव,मानव नहीं बन जाता । और वन ! जहाँ हिंस्र पशुओं से पँजा लड़ाया जाता है, मणिधर नागों के फणों से खिलवाड़ किया जाता है, जहाँ पर्वत के उत्तुंग शृंगों को पैरों से रौंदा जाता है, प्रकृति के उत्फुल्ल अंगों एवं वक्षस्थल से जीवनरस चूसा जाता है । हाँ, हाँ रण या वन ?[1]

चन्द्रगुप्त का नाम सार्थक: विजेता है, वह विजेताओं का विजेता, अलक्षेन्द्र के साम्राज्य पर विजय प्राप्त करता है । नन्द के साम्राज्य का विजेता पहले वह बन चुका है । अपने विकल्पशील मन पर विजय प्राप्त करता है और अन्तत: स्वर्ग पर भी विजय प्राप्त करता है । जब आठ दिनों के निर्जल निरन्न द्वारा प्राण त्याग का संकल्प करता है वह भारतभूमि क्षितीश तथा मृत्युंजय एवं स्वर्गजयी बनता है । अत: सर्वतोभावेन विजेता है ।

चन्द्रगुप्त चाणक्य का मन्त्रित्व स्वीकार करते हुए भी स्वतन्त्रचेता तथा विशिष्ट व्यक्तित्व सम्पन्न सम्राट है ।

----

१. विजेता, रामवृक्ष बेनीपुरी, पृ० १७,१८

वह देश की अखण्ड राष्ट्रीयता का निर्माण करना चाहता है, इसलिए सिकन्दर के आक्रमण पर वह विचलित है। चाणाक्य चन्द्रगुप्त के यवन शिविर से सकुशल निकल आने पर उसकी प्रशंसा करता है, किन्तु चन्द्रगुप्त इस श्लाघा से सन्तुष्ट प्रसन्न नहीं होता। वह कहता है -

"एक व्यक्ति बन्दीगृह से निकल आया तो क्या हुआ गुरुदेव, सारे देश के हाथ में वह हथकड़ियाँ डाल दी गया है।" यह विषाद उसके मन में किसी के उपदेश निर्देश पर नहीं है, स्वतः व्युत्पन्न है।

इस नाटक में और भी पात्र हैं - चाणाक्य, इसके अतिरिक्त नारी पात्रों में माँ और चन्द्रा। इन सभी में श्रेष्ठ व्यक्तित्व चन्द्रगुप्त का है अतः वही नाटक का नायक है।

कुंवरचन्द्रप्रकाश सिंह के 'जनकवि जगनिक' नाटक का नायक जगनिक है। इसके चरित्रांकन में लेखक ने काफी कुशलता दिखाई है। राष्ट्रीय एकता के लिये किया गया नायक का प्रयत्न, जो कदाचित नाटक का एकमात्र कार्य है, भले ही तत्कालीन युग की मान्यताओं और कतिपय व्यक्तियों की व्यक्तित्व एवं अहं के कारण पूर्ण न हो पाया हो, पर नायक के इस ओर किये गये प्रयत्न और उन्हें पूरा होते न देख उसकी आंतरिक छटपटाहट और तड़प का बड़ा ही भव्य रूप उपस्थित करती है, अनायास ही हमें जनकवि जगनिक के प्रति श्रद्धा से भर देती है।

श्रीकृष्ण के 'धूल भरे हीरे' नाटक का नायक सुशील है। जो निःसहाय बालकों को एकत्र कर उनसे सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार कर उन्हें सुधारने की क्षमता रखता है। कितने ही बालकों का जीवन वह नये सिरे से प्रारम्भ

करता है।

नायक सुशील बालकों के सुधार हेतु 'बाल कुटीर' की स्थापना करता है जिसमें बालकों को स्वावलम्बी बनने की शिक्षा देता है सभी बालक अपना कार्य अपने आप करते हैं। जो कल तक भीख माँग कर अपना पेट भरते थे, वे ही अब आराम में भूकम्प के लिये चढ़ाई हजार रुपया भेजने का सामर्थ्य रखते हैं। यह सामर्थ्य नायक सुशील के कारण ही आई है।

हमारे देश में कितने ही बालक अनाथ हैं। परित्यक्त हैं, अप्रसन्न हैं, उन्हें गलत रास्ते पर जाने से कोई रोकने वाला नहीं है। ऐसे बालकों के लिये सुशील जैसे नायक का होना अनिवार्य है।

नायक में वह सामर्थ्य है कि सब उसके सामने झुक जाते हैं, तभी तो दिलीप का मित्र दुर्जन सिंह जो किसी के सामने नहीं झुकता उसके चरण पर लोट जाता है।

अतः इन्हीं विशिष्टताओं के कारण हम इन्हें नायक की संज्ञा से अभिभूषित कर सकते हैं।

ओंकारशरद के 'देवदास' नाटक का नायक देवदास है, जो बचपन से ही पारो से प्यार करता है, किन्तु धर्म कर्म के कारण उसका विवाह पारो से नहीं हो पाता। पारो निम्नजाति की है, अतः देवदास के माता पिता विवाह से इन्कार कर देते हैं। देवदास निराश होकर कलकत्ता चला जाता है। वहाँ उसका दोस्त चुन्नीलाल उसे चन्द्रमुखी के पास ले जाता है। चन्द्रमुखी उससे प्यार करने लगती है, लेकिन देवदास चन्द्रमुखी से प्यार नहीं कर पाता उसका मन पारो में ही लगा रहता है।

अन्त में वह पारो के ससुराल आ कर उसके घर के सामने ही अपने प्राण त्याग देता है। जब लोग उसके शव को श्मशान ले जा चुके होते हैं, तब पारो को मालूम होता है, वह देवदास का शव था। इस तरह पारो के प्रति अपने अपूर्व प्रेम का परिचय दे देवदास सदा के लिये अमर हो गया।

विमला रैना के 'तीनयुग' का नायक रायबहादुर शंकरलाल जमींदार है। वह प्रारम्भ में पुराने ज़मीन्दार के प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया है। एक ज़मीन्दार के चरित्र की सभी विशिष्टताएं उसमें देखने को मिल जाती हैं। वह आराम पसन्द व्यक्ति है। धीरे धीरे समय की बदलती हवा देख कर वह भी स्वाभाविक रूप से बदल जाता है। यही शिक्षा आरम्भ में पत्नी को देता है —" हवा बहुत तेज़ है रज्जो, इस हवा के खिलाफ तुम अपनी नाव नहीं चला सकती। मैं ने आज पतवार छोड़ दी। तुम भी आज़ाद हो जाओ। बहने दो किश्ती हवा के रुख पर। एक तूफान आ रहा है...... उससे लड़ोगी तो यह तुम्हारी पुरानी किश्ती चट्टानों से टकरा कर चूर चूर हो जायेगी।"[1]

प्रारम्भ में शंकरलाल सभ्यता को पसन्द करता है, अपनी लड़की प्रेमा को अंग्रेजी विचारों में ही पूरी तरह पालता है, उसे पूरी स्वतन्त्रता दे देता है।

वह प्रगतिशील तथा स्वतन्त्र विचारों का व्यक्ति है। दूसरों की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप करना वह ठीक नहीं समझता था। ख्वाजा से खानबहादुर

---

१. तीनयुग, विमला रैना, पृ० ५६

के लड़के की बात करते हुए स्वर्ग कहता है –

'यह तो अपने अपने ख्याल व उसूल हैं। वह खुद मुख्तार है। जो कुछ करे आंख खोल कर करे। दूसरों को न मुसीबत में डाले।'[१]

शंकरलाल की बेटी प्रेमा उनके लिये कहती है –'पापा को सब गलत समझते हैं। वह ऊपर से एक खुंख्वार शेर दिखते हैं, गरजते है, पर उनका दिल........।'[२]

शंकरलाल अत्यन्त उदार विचारों के हैं इसलिये वह कैलाश के विचारों का आदर करते हैं बाद में अपने बेटे के बेटे मुन्ना को समझाते हुए कहते हैं –

'यह जो इज्म इष्ट है यह सबसे बड़ा धोखा है। आदर्श किसी भी इजिमिस्ट में नाम बदल देने से नहीं पूरे होते, आदर्श मन की भावनाओं से बनते बिगड़ते है।'[3]

इस तरह तीन युग में तीन पात्रों को लेकर तीन युगों की प्रतिक्रिया रूप में दिखाया गया है – शंकर, कैलाश और मुन्ना क्रमशः बढ़ते हुए युग के प्रतीक हैं।

शंकर पुराने युग का कैलाश बीच के युग का तथा मुन्ना नये युग का प्रतीक बन कर सामने आया है।

---

१. तीनयुग, विमलारैना, पृ० ~~६६~~ 32
२. ,, ,, पृ० ६८
3. वही वही ११६

दया प्रकाश सिन्हा के 'मन के भंवर' नाटक का नायक वशिष्ठ है। सैकड़ों व्यक्तियों को प्राण देने वाले डॉ० वशिष्ठ ने अपने प्राण आत्महत्या द्वारा दे दिये, यह आश्चर्य जनक है।

इसकी नायिका डॉक्टर की पत्नी छाया है जो अत्यन्त भावुक, महत्त्वाकांक्षी, और संवेदनशील है। उसमें परिस्थितियों के अनुकूल अपने को ढालने की शक्ति नहीं है जिसके फलस्वरूप वह देवेन्द्र के साथ बम्बई भाग जाती है, उसका प्रायश्चित्त वह लौट कर करना चाहती है।

डॉ० वशिष्ठ में आत्म गौरव की भावना नहीं है। वे इतना बड़ा सम्मान पाने के बाद भी अपने को अयोग्य ही समझते हैं, उनका कथन है—

"मेरी कीर्ति नहीं मेरे उद्देश्य की कीर्ति कहो।"[1] डॉ० अपनी पत्नी से प्यार करता है लेकिन इतना बड़ा धोखा पाने के बाद उसकी दृष्टिकोण बदल जाता है वह कहता है — "न किसी से बेहद प्यार करो किसी से नफरत..........।"[2]

बम्बई से लौटने पर अपनी पत्नी को अपना तो नहीं पाता किन्तु उसके पाने के बाद अपने प्राण त्याग कर उसका प्रायश्चित्त करता है। इस तरह वशिष्ठ अनेक विशेषताओं से युक्त ही इस नाटक का नायक सिद्ध होता है।

दयाप्रकाश सिन्हा के इतिहास चक्र और ओह अमेरिका का दोनों ही संग्रह नायक प्रधान हैं। 'इतिहास चक्र' के नायक राजा है। यद्यपि उनमें

---

1. मन के भंवर, दयाप्रकाश सिन्हा, पृ० ३८
2. ,, ,, पृ० ३६

कोई भी नायकोचित गुण नहीं है ।

प्रजापालक राजा को जनता का अर्थ तक नहीं मालूम तो वह क्या प्रजा का दुख दूर करेंगे । वह जनता से मिलने निकले हैं, अनामी की कमीज़ तक उतरवा लेते हैं । उसके बदले में उसे बहुत वस्तुएं देने को कहते हैं, जो उसे आश्वासन मात्र रहता है ।

इस नाटक में और भी पुरुष पात्र आए हैं कुबेर, पत्रकार, बाबू अनामी आदि । किसी पात्र के चरित्र में कोई विशिष्ट चारित्रिक विशेषता लक्षित नहीं होती । बस अनामी पात्र के माध्यम से नाटककार ने देश की दुर्दशा समझाने का प्रयास किया है । वैसे नाटक का नायक राजा है ।

"ओह अमेरिका" नाटक का नायक श्यामलाल जो अमेरिका से लौटकर आया है । अमेरिकन खान पान में ही विश्वास करता है उसी में उसे आनन्द आता है । अपनी पत्नी को भी अमेरिकन लिबास पहनाना चाहता है किन्तु वह भारतीय नारी है । श्यामलाल की बातें उसकी समझ में नहीं आतीं ।

अन्त में श्यामलाल का दिमाग उनके बच्चे माधुरी और समीर ठीक कर देते हैं । जब श्यामलाल और उनकी पत्नी अफ्रीका गये हैं तब ये दोनों बच्चे श्यामलाल से बढ़ कर अमेरिकन शान शौकत अपना लेते हैं । लौटकर श्यामलाल को अपनी गलती का आभास होता है, वह पुनः भारतीय लिबास पहन कर एक आदर्श पिता के रूप में सामने आते हैं ।

ब्रजमोहन शाह के त्रिशंकु नाटक का नायक "युवक" है जो बेरोज़गारी की समस्या को उपस्थित करने वाला है, साथ ही वह युवकों की मानसिक उथल पुथल और उनके विकेन्द्रीकरण का चित्र उपस्थित करता है । पूरा

नाटक युवक के चरित्र से सम्बन्धित है ।

इस नाटक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि नायिका का कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ है ।

त्रिशंकु नाटक में तीन वर्गों का चित्रण मिलता है - उच्च वर्ग, मध्यवर्ग, निम्नवर्ग। उच्चवर्ग के लोगों में नेता, अफसर सेठ है । मध्यवर्ग में युवती सिपाही बाबू, ज्योतिषी जो, अपनी आवश्यकतापूर्ति के लिये घूस रिश्वत, भोंन व्यापार में (बुराई नहीं समझते), निम्नवर्ग में मजदूर भिखारी, विज्ञापक और चपरासी आते हैं । भिखारी और चपरासी जैसे लोग भी चापलूसी करना जानते हैं ।

इसी के साथ एक वर्ग तीन पात्रों का समूह है, जिसमें बुद्धिजीवी युवक समीक्षक भी हैं, जो अपने को शिक्षित कहते हैं, और अपनी शक्ति उथल पुथल में लगे रहते हैं ।

इन समस्त पात्रों में युवक का ही चरित्र सशक्त है अतः वही नाटक का नायक है ।

विपिन कुमार अग्रवाल के लोटन[1] नाटक का नायक एक ग्रामीण साधारण युवक लोटन है जो दुनिया की आश्चर्यजनक वस्तुओं से अनभिज्ञ है । उसे डाकघर और डाकगाड़ी में अन्तर नहीं मालूम । उसके इस भोले मन को आज की दुनिया चालाकी और बदमाशी की संज्ञा देती है । किशोर लोटन के लिये मालती से कहता है 'तुम्हें बना बदमाश नहीं लगता ? यह लोटन मुँह बाकुल मालूम पड़ता है'।

लोटन अपने कार्य के प्रति तटस्थ है । नाटक में और भी पात्र हैं - किशोर, लल्लू, बड़े बाबू, श्यामनाथ । स्त्री पात्रों में मालती का चरित्र है । ये सभी पात्र अपने कार्य के प्रति लापरवाही बरतते हैं । इन लोगों को अपने कार्य के प्रति कोई आस्था नहीं है ।

इन सभी पात्रों में लोटन का चरित्र ही प्रधान है, अतः वही नाटक का प्रधान पात्र अथवा नायक है ।

---

1. विपिनकुमार अग्रवाल, पृ० ४०

पंचम अध्याय

नायिका प्रधान नाटक -

प्रमुख पात्र - स्त्री

नायिका प्रधान नाटक

(प्रमुख पात्र --स्त्री)

लक्ष्मीनारायणमिश्र का 'अपराजित' नाटक नायिका प्रधान है। इस नाटक में कई पुरुष पात्र हैं -- द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, सुयोधन, कर्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीमसेन आदि। इन सभी पात्रों में अश्वत्थामा का चरित्र अधिक उत्कृष्ट है, अतः वे ही नाटक के नायक हैं। अश्वत्थामा की पत्नीमाधवी नाटक की नायिका है जो गान्धारी के पुरोहित की रूपवती पुत्री है। गन्धर्व विद्या और धनुर्विद्या के साथ साथ विशल्यकारिणी और संजीवनी विद्या में भी निपुण है। गांधार देश की परम्परानुसार वह पुरुष-वेश सजाकर अश्वत्थामा की सारथी बनना चाहती है और इसलिये अश्वत्थामा से कहती है -- "..... ..... भवानी की अंशरूपिणी मैं हूं, और शंकर के अंश रूप तुम हो।"[१] वह बराबर युद्ध भूमि में अश्वत्थामा के साथ रहती है। कृष्णा के सुन्दरी कहने पर वह रोकती है और उसे बताती है कि सात माताओं में ब्राह्मण की पत्नी भी माता कही गई है।

इस तरह समस्त पात्रों में माधवी का चरित्र प्रभावपूर्ण है अतः वह नाटक की प्रधान पात्र है।

'प्रेमी' जी के 'विषपान' नाटक की नायिका कृष्णा है। मेवाड़ की राजकुमारी कृष्णा का विषपान या बलिदान राजस्थान के इतिहास की अत्यन्त करुणाजनक घटना है। इस नाटक का कथानक इतिहास के उस काल खण्ड से चुना गया है जबकि राजपूत शासक अपने वंशाभिमान के उन्माद में देश

---

१. अपराजित, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ० ८७

के राजनीतिक भविष्य को भूल चुके थे । छोटी छोटी बातों पर अगणित जन और धन का होम करना उनके लिए मामूली बात थी । राजपूतों की जिस अदूरदर्शितापूर्ण अभिमान ने कृष्णा को विषपान करने के लिये बाध्य किया आगे चलकर प्रकारान्तर से वही अभिमान देश के पतन का भी कारण बना इसे नकारा नहीं जा सकता ।

स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करना नायिका कृष्णा का अपना स्वभाव है । अपने से निम्नस्तर के लोगों से भी स्नेह उसे है । नायिका का यही स्वभाव उसे भील के किनारे घंटों कलुआ से बात करने के लिए प्रेरित करता है कदाचित् इसीलिए मृत्यु के समय भी वह उससे मिलने को उत्सुक होती है ।

कृष्णा समाज की परिस्थितियों से पूर्णतः परिचित है । इसलिए अपने कारण माता पिता पर आये हुए संकट से परेशान वह पुरोहित से कहती है —

"एक पुत्री माँ बाप के लिये कितनी चिन्ताओं का कारण बन जाती है, पुरोहित जी,सबसे विशिष्ट चरित्र कृष्णा का उस समय आता है जब वह स्वयं विष मांगती है और विष पीकर सदैव सदैव के लिए सुख की नींद सो जाती है ।

ये विशेषताएं उसे नाटक में अन्य पात्रों के मध्य उत्कृष्टता प्रदान करती हैं । और उसे नाटक की प्रधान पात्र के रूप में प्रतिष्ठित करती हैं ।[1]

---

१. विषपान,हरिकृष्ण प्रेमी, पृ० २६

'हरिकृष्ण प्रेमी' का 'अमृत पुत्री' नाटक नायिका प्रधान है। इसकी प्रमुख पात्र कणिका है जो समयानुकूल कई रूप धारण करती है।

नायिका कणिका बहुत ही वाक्पटु है, जो अपने वाक्चातुर्य से सभी को परास्त कर देती है। इस बात का स्पष्ट प्रमाण, सिंहरण, जयपाल के विवाद से उसे समय मिलता है, इसके वाक्चातुर्य के प्रभाव से उक्त दोनों पात्र शत्रुता छोड़ कर परस्पर मित्रता स्थापित कर लेते हैं। सिंहरण कहता भी है -'तुम्हारी वाणी के तेज की किरणें जैसे अंधकार के पर्दे को हटा रही हैं। मैं अनुभव कर रहा हूं तुम्हारे आने से पहले बालकों की भांति अवास्तविक प्रश्नों पर हम झगड़ रहे थे'।[1]

पुरु भी इसकी वाक्पटुता से प्रभावित होकर कहता है - 'तुम्हें क्या कहूं देवि या पुत्री तुम्हारा मैं अपराधी हूं -मुझे दण्ड दो - मेरा मस्तक तुम्हारे आगे झुका है। मेरे हाथों तुम्हारे पिता की हत्या हुई थी।'

कणिका स्वयं तो कर्त्तव्य पथ पर अडिग ही रहती है, दूसरों को भी कर्त्तव्य पथ की ओर ले जाती है। जयश्री और जयपाल के प्रणाय प्रसंग के मध्य सम्बन्धित स्थल पर पहुंच कर दोनों को कर्त्तव्यपथ की ओर प्रेरित करना इसका पुष्ट उदाहरण है। देखिये -

'नहीं पहचाना मुझे। मैं धूमकेतु हूं। विध्वंसक सूचक नक्षत्र। प्रेमियों के

---

1. हरिकृष्ण प्रेमी, अमृतपुत्री, पृ० ५४

2. ,, ,, पृ० ५६,५७

सुनहरे स्वप्नों को दूर करना ही मेरा काम है।"[1]

कणिका बहुत ही वीर और साहसी है। शत्रु के सम्मुख सीने में छुरी रख कर किस तरह फिलिप्स को मदिरा और अपने नृत्य से बेसुध करके उसकी जान से खेलती है यह दर्शनीय है। उसे उस समय अपनी परवाह नहीं रहती। इसके पश्चात् उसी फिलिप्स के रक्त से चन्द्रगुप्त के मस्तक पर टीका काढ़ती है। इस तरह कणिका विद्वानों द्वारा मान्य नायिका के गुणों से युक्त एक आदर्श नारी है। नाटक में चन्द्रगुप्त आदि और भी पात्र आए हैं जिनके व्यक्तित्व की अपनी विशेषताएँ हैं किन्तु इन सभी पात्रों में जितना सशक्त चरित्र कणिका है उतना अन्य किसी पात्र का नहीं है। अतः नायिका को नाटक का प्रधान पात्र स्वीकार करने में हमें किंचित् भी संकोच नहीं हो सकता है।

उपेन्द्रनाथ अश्क का 'कैद और उड़ान' का 'उड़ान' नाटक (संग्रह) नायिका प्रधान है। इसकी नायिका माया कैद की नायिका के विपरीत विद्रोहिणी बन कर उपस्थित हुई है। 'उड़ान' में विशृंखल समाज की विकृत व्यवस्था का विरोध है। कैद में जो मनोवेग अन्दर ही अन्दर घुमड़ता है वही वेग उड़ान में मानवता की आन्तरिक टीसों समाज की झूठी मर्यादाओं रूढ़ियों और परम्पराओं में विप्लव मचा देना चाहता है।

नाटक का पात्र शंकर माया को महान मानता है। उसके शब्दों से यह बात प्रकट है -"तुम्हारा शिकार ! तुम क्या कहती हो, माया ! मैं तुम्हारा शिकार नहीं करना चाहता, मैं तो स्वयं शिकार हो जाना चाहता हूँ। कूँद बन कर तुम्हारी इस सुन्दरता के अथाह-सिन्धु में खो जाना

---

१. हरिकृष्ण प्रेमी, अमृत पुत्री, पृ० ७३

चाहता हूँ। मेरी लघुता को अपनी गुरुता में, मेरी सीमा को अपने असीम में छिपा लो।"[1]

रमेश माया देवी से कहता है –

"मेरे मन मन्दिर में तो आप देवी के आसन पर विराजमान हैं मैं तो पुजारी बना प्रतिक्षण आपकी पूजा करता हूँ।"[2]

"आप क्रोध में हों तो, आपके मुख पर देवी का सा तेज झलकता है, मैं सच कहता हूँ, मन ही मन शंकर भी आपसे डरता है।"[3]

इस प्रकार उपरोक्त कथन से माया देवी की विशिष्टताओं का पता चलता है। पुरुष पात्रों में दो पात्र प्रमुख रूप से नाटक में आए हैं– रमेश और शंकर। इन सभी पात्रों में नायिका माया देवी का चरित्र विशिष्ट है। उसके चरित्र से सम्बन्धित नाटक की कथा है अतः "उड़ान" नाटक नायिका प्रधान मानना अधिक तर्क संगत है।

उपेन्द्रनाथ अश्क का "अंजो दीदी" नाटक नायिका प्रधान है। इसकी नायिका अंजो दीदी हैं। वह समय को बहुत ही अमूल्य समझती हैं उसके अनुसार –

"जीवन स्वयं एक महान घड़ी है। प्रातः सन्ध्या उसकी सूइयाँ हैं नियमबद्ध एक दूसरे के पीछे घूमती रहती हैं। मैं चाहती हूँ मेरा घर भी

---

१. कैद और उड़ान, पृ० १३८
२. ,, पृ० १४०
३. ,, पृ० १४३

एक घड़ी की तरह चले ।"[1]

इस तरह उनका प्रत्येक कार्य नियत समय पर होता है । वह अपने घर अपने ही अनुसार बहू भी लाती है जो प्रत्येक कार्य नियत समय पर करती है ।

किन्तु अंजो दीदी का कठोर नियन्त्रण अपने पति के लिए घातक सिद्ध होता है । उसके पति इन्द्रनारायण वकील अंजली के हाथ की कठ-पुतली बने तो रहते हैं किन्तु अज्ञात में शराब पीने की लत ने उन्हें द्वन्द के लिये प्रेरित कर दिया और इनकी इस विरोधी प्रवृत्ति ने अंजली के प्राण ले लिये । उनकी मृत्यु के बाद इन्द्रनारायण शराब आदि छोड़कर सन्यासी जीवन व्यतीत करते हैं । इस तरह जो अंजली अपने जीवन में न कर पाई अपनी मृत्यु के बाद अपने पति से करवा रही है ।

दूसरी ओर अंजली के भाई श्रीपत का चरित्र है, वह स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करने में विश्वास करता है । उसका मनमौजी जीवन समय की पाबन्दी का विरोध करता है । अंजली और श्रीपत के विचारों की टकराहट से नाटक और भी रोचक बन जाता है ।

इसके अतिरिक्त, मुन्नी, राघु नीरज, नवीर,नीलम चपरासी आदि कई पात्र नाटक में आए हैं किन्तु इन सभी में महत्वपूर्ण चरित्र अंजली का ही है ,अतः वही नाटक की प्रधान पात्र है ।

---

१. अंजो दीदी,उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० ~~२८~~ ५६

'अश्क' जी के नायिका प्रधान 'भँवर' नाटक की प्रमुख पात्रा प्रतिभा है, जिसका विवाह हो चुका है किन्तु विचार वैमनस्य के कारण पति-पत्नी में नहीं पटती। फलस्वरूप पति दूसरी लड़की शकुन्तला से विवाह कर लेता है। यह प्रतिभा एकाकी जीवन व्यतीत कर रही है। यह बहुत ही सरल और सादा जीवन व्यतीत करती है। इस नाटक में और भी पात्र आए हैं सभी पात्र अपनी एक विशिष्ट अभिरुचि के साथ अवतरित होते हैं, जैसे -- जगन क्रिकेट टीम का कप्तान है, उसी में उसका जीवन निहित है। हरदत्त पिक्चर के शौकीन हैं।

प्रतिभा पिक्चर, पिक्चर के गाने से बहुत नफरत करती है। तभी वह जब नीहार की वर्षगाँठ में जाती है, तो संगीत के प्रति अरुचि होने के कारण उसकी उपस्थिति में संगीत हो ही नहीं पाता। वह रूप और विचारों की बहुत ही धनी है। यह गुण उसका उसकी छोटी बहन प्रतिभा के हृदय को सशंकित कर देता है। वह जगन को प्रतिभा में रत जान कर पार्टी छोड़ कर घर में आ कर खूब रोती है। प्रतिमा प्रतिभा के लिये नीहार से कहती है --

'जिस व्यक्ति से मिली है वही उसके गुण गाने लगता है। वे उसे मजबूर कर देती हैं कि वह उन्हीं के आस-पास मंडराए और वे पागल समझते हैं, वे उन्हें पसन्द करती है, उनसे प्रेम करती है। हालाँकि वे उनसे खेलती है, जैसे बिल्ली चूहे से।'[१] नीहार उसकी आदत जानती है।

---

१. भँवर, उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० ६५

वह कहती भी है - "दीदी उन सबसे घृणा करती है वे उन सबको अत्यन्त तुच्छ समझती हैं, कई बार उनकी मुस्कानों के झीने पर्दे से नफरत की वह झलक साफ दिखाई देती है और उनके नन्हें मस्तक पर नन्हें तेवर पड़ जाते हैं। न जाने लोग उनके मुख पर अंकित घृणा के उन भावों को क्यों नहीं देख पाते।"[1] यद्यपि प्रतिभा के हृदय में भी प्यार है वह नीलाभ से प्यार करती है, किन्तु उससे कह नहीं पाती।

इस तरह सभी पात्रों में उसका अपना एक विशिष्ट व्यक्तित्व है अतः सभी पात्र - प्रतिभा, प्रमिला, प्रतिमा, नीलिमा, नीहारिका, मन्दा, अमन, ज्ञान हरदत्त,बीनू निर्मल आदि में प्रतिभा का विशिष्ट स्थान है, अतः वह ही नाटक की नायिका है।

गोविन्दवल्लभ पन्त का 'राजमुकुट' नाटक नायिका प्रधान है। इसकी नायिका पन्नाधाय है। नायिका पन्ना अपनी स्वामिभक्ति की वेदी पर अपने दुधमुँहे बच्चे का बलिदान कर मेवाड़ की वंशबेलि को नष्ट होने से बचाती है। वह वीराङ्गणी पन्ना जिसका अनुपम त्याग, जिसकी अपूर्व देशभक्ति, राजस्थान की महिलाओं के आदर्श की बोलती जागती कहानी है। राजमुकुट उसी की उज्ज्वल स्मृति है। पन्ना के मन में यह साध रहती है कि वह चित्तौड़ के राजमुकुट को उदय सिंह को पहना दे। अन्त में पन्ना राजमुकुट पहनाते हुए कहती है -- "यह दिन देखने की बड़ी साध थी। यही वह चिर लालसा का राजमुकुट है। यह तुम्हारे मस्तक पर सुशोभित हो, तुम चित्तौड़ के महाराजा हुए उदय।"[2]

---

1. भँवर, उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० ६६
2. राजमुकुट,गोविन्दवल्लभ पंत, पृ० १३२

इस तरह एक ओर पन्ना का चरित्र है और विरोधी पक्ष में शीतल सेनी का चरित्र भी बड़े रोचक ढंग से चित्रित किया गया। इस नाटक में कई पुरुष पात्र भी आए हैं - विक्रम सिंह, उदय, बनवीर, चंदन आदि। इन सभी में पन्ना का चरित्र उत्कृष्ट है, अत: यही नाटक की प्रधान पात्र है।

'पुरुषोत्तम महादेव जैन' का 'आहुति' नाटक भी नायिका प्रधान है। इसकी नायिका सुमति बाई है जो अत्यन्त सुशिक्षित है। सुमति बाई अपने भाई के लिये अपने जीवन की आहुति दे देती है। प्रथमत: 'विश्वास' इस नाटक में नायक के रूप में आता है जो किन्हीं कारणोंवश सुमति का पति नहीं बन पाता। यद्यपि सुमति के पिता मरने के पूर्व सुमति के जीवन की डोर विश्वास के हाथों में देकर मरते हैं, किन्तु ५ हजार की रकम के कारण सुमति को श्यामलाल से विवाह करना पड़ता है। श्यामलाल बड़ा ही दुर्व्यसनी और कामी है। अन्त में उसी की गोली से सुमति का प्राणान्त होता है।

भगवतीचरण वर्मा का 'वासवदत्ता का चित्रांकन' नाटक नायिका प्रधान है। इसकी नायिका वासवदत्ता है। वह अत्यन्त रूपवती है। उसे भी अपने सौन्दर्य का ज्ञान है साथ ही उस पर गर्व भी है। इस रूपवती गर्विता के पास एक भयानक अहम् भी है। यही अहम् वासवदत्ता के नाटक का सृजन करता है।

जहाँ रूप की उपासना हुई है वहीं रूप की उपेक्षा भी होनी चाहिए। यह रूप की उपेक्षा साधना और ज्ञान द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। किन्तु उपगुप्त उसी साधना और ज्ञान का प्रतीक है। वह बौद्ध भिक्षु, अहिंसा, दया, और प्रेम का पुजारी है। अपने समय के निरन्तर अवनति

को प्राप्त होते हुए समाज को पुन: प्राणदान देना उसका एकमात्र उद्दिष्ट है। मांस मदिरा और मैथुन की गलत धारणाओं से भ्रमित समाज में, वह संयम भावना और प्रेम की नवीन मान्यताएं स्थापित करने के लिये घूमे रहा है। इस प्रकार नाटककार ने तेजस्वी युवक उपगुप्त के व्यक्तित्व के उभारने के पवित्र उद्देश्य में सफल प्रयास किया है। नाटक में सोमेन्द्र, सोमदत्त, आदि पुरुष पात्रों की अवतारणा भी नाटककार ने की है, किन्तु इन सभी के व्यक्तित्व अपने में महत्वपूर्ण होते हुए भी किसी न किसी रूप में उपगुप्त के व्यक्तित्व की प्रभावशीलता का ही उजागरण करते हैं। अत: उपगुप्त को नाटक के नायक के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इसी प्रकार समस्त स्त्री पात्रों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण चरित्र वासवदत्ता का दृष्टिगत होता है। अत: उसे नाटक की प्रधान पात्र माना जा सकता है।

रेवतीसरन शर्मा के 'अपनी धरती' नाटक की पात्र बलवन्त सिंह की बूढ़ी माँ, साधारण माँ का सा व्यक्तित्व रखते हुए भी नाटक की प्रधान पात्र कही जा सकती हैं। वह अपने बेटे बलवन्त के विवाह के लिये आतुर दिखाई देती है। जब उसका पुत्र लड़ाई के लिये बुलाया जाता है तो वह उसे नहीं जाने देना चाहती। अन्त में, जब बलवन्त लड़ाई में गुम हो जाता है तो वह अपनी सारी आकांक्षाओं को मन में दबा कर बेटे के ख्यालों में गुम रहने लगती है। इसका दूसरा पक्ष तब सामने आता है जब मास्टरजी बताते हैं कि बंकिम के साथ हमारा वही झगड़ा है जो हरिया का उसके साथ। वह भी हरिया की तरह हल चला कर हमारे खेत में बीज बोना चाहता है, तब उसका (बूढ़ी माँ का) असली कृषक स्त्री का धरती मोह,

----

आत्मसम्मान और संकल्प जाग उठता है और वह कह उठती है यह कैसे हो सकता है। मास्टर जी के युद्ध के प्रसंग उठाने पर कहती है "युद्ध तो होना ही चाहिये।"

इस तरह उसका यह रूप पहले की तरह माँ जैसा नहीं रह पाता। वह मान मर्यादा को जीवन से कहीं ऊँचा मानने लगती है और उसके लिए बड़ी से बड़ी कुर्बानी स्वेच्छा से दे डालती है।

इस तरह नाटक में बूढ़ी माँ के दो स्त्री रूप उभर कर आए हैं।

एक वह जिसमें मोह ममता, के अधिक व्यापक ढंग से उभारा गया है और दूसरा वह जिसमें धरती की बेटी के रूप में प्रकट हुई है तथा धरती के लिये लड़ना मरना जानती है।

निश्चय ही वह माँ के असली रूप में सामने आती है जो बेटे के लिये मोम और लाख की तरह गल सके। इस तरह माँ का व्यक्तित्व नाटक में अतिरिक्त अन्य पात्रों की तुलना में अनेक विशिष्टताओं से युक्त है।

बलवन्त, विमला, चम्पा, प्रमोद, पटवारी इन सभी में माँ का चरित्र विशेष उल्लेखनीय होने के कारण नाटक की प्रधान पात्रा का स्थान ग्रहण करने की अधिकारिणी है।

रेवतीसरन शर्मा का 'दीपशिखा' नाटक नायिका प्रधान है। इसकी नायिका दीपशिखा है, जिसका दूसरा नाम रंजना है। इसके अतिरिक्त स्त्री पात्रों में किट्टी है, जो माँ की भूमिका निभाती है और रशिदा तथा बेगम दो अन्य स्त्री पात्र हैं। पुरुष पात्रों में डैडी (पिता या अब्बा) इकबाल, मैकअप मैन, लेखक आदि हैं। इन समस्त पात्रों में दीपशिखा का व्यक्तित्व सबसे भिन्न है। प्रारम्भ में ही जब लेखक पात्रों के भाग जाने से नाटक न होने की घोषणा करता है तब वह कहती है —

" क्या ? आपका मतलब क्या है ? हम लोग (दर्शकों की ओर हाथ उठाकर) जो इतनी दूर से आए हैं ..... ? "[1]

इसके बाद वह स्वयं मंच पर जा कर पूरे नाटक का प्रबन्ध करती है। पात्रों को एकत्रित करती है। सबको उनके अभिनय के योग्य भूमिका देती है।

दीपशिखा जाति पाँति का भेद नहीं मानती। वह अपना विवाह इकबाल से (जो मुसलमान है) करना चाहती है। वह इस सम्बन्ध में अपने पिता से बहुत तर्क वितर्क करती है। जब पिता कहते हैं इकबाल ने एक हिन्दू लड़की को भड़काया है तो रंजना कहती है - "कैसे रहीम और रसखान ने हिन्दी को बहकाया ? अलाउद्दीन खाँ और बड़े गुलाम अली खाँ ने हिन्दुस्तानी संगीत को बहकाया। पिता जी, जो अपने धर्म में रहकर दूसरे के धर्म की चीजों को चाहते हैं, वही सबसे बड़ा धर्म रखते हैं।"[2]

---

१. दीपशिखा, रेवतीसरन शर्मा, पृ० २
२. ,, ,, पृ० ७०

अपने प्रत्येक तर्क से वह पिता को हरा देती है। इस तरह समस्त पात्रों में दीपशिखा का ही चरित्र विशिष्ट है अतः वही नाटक की प्रधान पात्र है।

हरिश्चन्द्र खन्ना का 'अमरबेल' नाटक नायिका प्रधान है। इसकी नायिका 'बड़ी बीबी' है। इसके दो पुत्र हैं - अमर और मदन। बड़ी बीबी प्रारम्भ से ही पूरी हवेली में राज्य करती आ रही है। जब मदन की पत्नी छोटी बहू घर में आ जाती है तो उनके रौब में थोड़ी कमी आ जाती है क्योंकि नाटक में छोटी बहू का स्वभाव उनसे भिन्न चित्रित किया गया है। बड़ी बीबी बात बात पर बहू को डाँटना अपना फर्ज समझती है, वह चिल्ला उठती है -

'बेटा मेरा देवता और पाला पड़ गया है इन राक्षसों से। हायराम वह घड़ी भी तो नहीं लौट आती, जब मैंने इस कुलच्छनी बहू को हवेली में आने दिया था।'[१]

छोटी बहू को निम्नजाति के प्रति सहानुभूति है। वह इस कार्य के लिये घर छोड़ने को तैयार हो जाती है और जाकर बड़ी बीबी के चरण स्पर्श करती है। बड़ी बीबी गुस्से में कहती है - 'एक मेरा बेटा मुझसे छीन रही है, उस पर मेरा आशीर्वाद चाहती है।'[२]

बड़ी बीबी सदैव अपना स्वार्थ देखती है इसी स्वार्थ के वशीभूत होकर पुत्रों की इच्छाओं व मनोकामनाओं की अवहेलना कर जाती है।

----

१. अमरबेल, हरिश्चन्द्र खन्ना, पृ० ४७
२. वही, वही, पृ० १२७

तभी तो वह अपने पुत्र अमर का विवाह ज्वालाप्रसाद की सुपुत्री से करने को तैयार हो जाती है। इस निमित्त वह शगुन भी ले लेती है। इस कर्म को करते समय उसे अपने पुत्र की इच्छा का तनिक भी ख्याल नहीं है। किन्तु अन्त में अमर के सामने उसे झुकना पड़ता है। शगुन लौटाना पड़ता है।

उसका पुत्र मदन गाँव का कारखाना समाप्त कर शहर में कुछ थोड़ा-बहुत कारोबार करने की बात करता है। इस पर बड़ी बीबी आग बबूला हो उठती है और उसे घर से बाहर निकाल देती है। इन्हीं सब कारणों से उनकी अपने बेटों से नहीं पटती है।

इस प्रकार नाटककार ने माता का परावलम्बी चरित्र अमरबेल के रूपक की आड़ में नई पौध के लिये विनाशक सिद्ध किया है। यद्यपि बड़ी बीबी का चरित्र उत्कृष्ट चरित्रकला से सम्पन्न नहीं है फिर भी अन्य पात्रों सरस्वती, मैनाप्रभा, गायत्री, मिलनी, मदन, अमर, छोटी बहू, द्वारिकानाथ आदि से विशिष्टता के कारण नाटक प्रधान स्त्री पात्र होने का अधिकारी है।

लक्ष्मीनारायण लाल का 'दर्पन' नाटक नायिका प्रधान है। इस नाटक में नायक के रूप में हरिपदम आया है, जिसका व्यक्तित्व नायिका के समक्ष मद्धिम पड़ जाता है। प्रमुख रूप से दो स्त्री पात्र हैं ममता और पूर्वी। इन सभी में पूर्वी उर्फ दर्पन का चरित्र नाटक में उभर कर आया है। पूर्ण कथा चक्र उसी के इर्द गिर्द घूमती रहती है। अतः नाटक की नायिका पूर्वी ही है। जो अपने को दर्पन की बहन बताती है, अपनी महान प्रतिभा को छुपाए रखती है, वह कुणाल की किस लगन से सेवा करती है, हरिपदम उससे विवाह करना चाहता है, वह उसके सुख के लिये न चाहते हुए भी विवाह

करने को तैयार हो जाती है किन्तु अन्त में परिस्थितियों से मजबूर हो कर उसे बता देना पड़ता है —

"मैं वही दर्पन हूँ ।"[1]

हरिपदम पहले विश्वास नहीं करता । अन्त में जब उसके असली रूप से परिचित हो जाता है तब उसका मार्ग नहीं रोकता उसे अपने लक्ष्य को प्राप्त करने की ओर प्रेरित करता है ।

पूर्वी में सेवा की सच्ची लगन है । जब उसके दरवाजे पर तपेदिक का मरीज़ उपस्थित होता है, सुजान के द्वारा भगाए जाने पर भी नहीं जाता, उसी समय पूर्वी गेरुआ वस्त्र पहने उपस्थित होती है, सबको अपने रूप से परिचित करा देती है । उसके लिये पहले धर्म, और कर्तव्य है ।

इस तरह पूर्ण नाटक पूर्वी पर ही आधारित है । अतः यही नाटक की नायिका सिद्ध होती है ।

लक्ष्मीनारायण लाल का "अंधा कुआँ" नाटक नायिका प्रधान है । नायिका के रूप में सूका का चरित्र विशेष उल्लेखनीय है । नायक के विशिष्ट गुणों व प्रतिनायक के कुछ अवगुणों को धारण कर नायक के रूप में भगौती का भी चरित्र आया है । इस तरह दोनों का ही चरित्र अपने अपने में पूर्ण है । पुरुष पात्रों में इन्दर का चरित्र भी भगौती से कम महत्व-

---

१. दर्पन, लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० ८४

पूर्ण नहीं है ।

भगौती बात बात पर अपनी बीबी को मारता है, कुछ काम भी नहीं करता, उसके ऊपर काफी कर्जा है । कलगू के शब्दों में —"काम न धाम ! दिन भर भौजी को मारना, गांजा पीना और यहीं बैठे बैठे घर फूंकना ।"[१]

सुका इसकी पत्नी है,जो इससे परेशान होकर अपने प्रेमी के संग भाग जाती है उसके बाद भगौती मुकदमा लड़कर उसे वापस घर ले आता है।इसके बाद सुका एक दिन आत्महत्या के विचार से घर से भाग कर कुएं में कूद पड़ती है दुर्भाग्यवश वह अन्धा कुंआ रहता है , अत: उसकी जान नहीं जाती, भगौती उसे फिर पकड़ लाता है, उसकी बहुत पिटाई करता है,खाना पीना बन्द कर देता है ।

भगौती सुका को परेशान करने के लिये दूसरी शादी करता है ।

इतना सब होने के बावजूद सुका भगौती का आदर करती है, उसकी सेवा सुश्रुषा करती है, जिसका प्रमाण हमें भगौती की टांग टूटने पर मिलता है । यद्यपि भगौती चारपाई पर लेटे लेटे ही उसे आस पास की चीजों से खींच खींच कर मारता है फिर भी वह पति की सेवा में लगी रहती है । जिस समय भगौती सुका को चारपाई से बांध देता है उस समय उसका प्रेमी इंदर उसे भगा ले जाने को आता है, उसके रस्सी के बन्धन खोल देता है भगौती को बुरा भला कहता है इस पर सुका कहती है —

---

१. अन्धाकुआं, लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० ४४

"तो तुझसे क्या, मैं उसके लिये कभी तेरे सामने रोने नहीं गयी। वह मेरा पति है, मुझे मारता है, तुझसे क्या। तू कौन होता है, कहने वाला।"[1]

$\times$ $\times$ $\times$

"तुझे माँ की सौगन्ध अगर तू मुझे उसी तरह नहीं बाँध देता।"[2] जब भगौती तो उसकी दूसरी पत्नी लच्छी भी छोड़कर चली जाती है, सूका उसकी लगन से सेवा करती है। भगौती के ये कहने पर कि "आज मेरा पैर न टूटा होता तो बताता। कुछ भी कह कर निकल जाओ"[3] इस पर सूका उसके पास जाकर कहती है — "मजबूर क्यों बना है, ले मार! मैं तो तेरे पास खड़ी हूँ, तेरा हाथ तो नहीं टूटा है, मार न। मुझे मार।"[4]

इस तरह स्पष्ट है कि पति की मार की भी उसे परवाह नहीं है। नाटक के अन्त में जब इन्दर भगौती को मारने आता है तो वह इन्दर से मुकाबला करती है, कहती है —

"समझा क्या था! नामर्द कहीं का। यह घायल है लेकिन बे-आसरा नहीं।"[5]

---

१. अन्धा कुआँ, पृ० ७६
२. ,, पृ० ७७
३. ,, पृ० १४६
४. ,, पृ० १४६
५. ,, वही, १५६

जब सुन्दर भगौती पर वार करता है बीच में सुका आ जाती है इस तरह उसकी मृत्यु हो जाती है। नाटक में प्रारम्भ से अन्त तक सुका कभी अपने पति की अवहेलना नहीं करती। इस तरह सब पात्रों में अपनी अलग ही छाप छोड़ जाती है, अत: स्पष्ट है यह नाटक नायिका प्रधान है।

लक्ष्मीनारायण लाल का 'रात रानी' नाटक भी नायिका प्रधान नाटकों की श्रेणी में आता है, जिसकी नायिका अथवा प्रमुख पात्र कुंतल है। इसके अतिरिक्त स्त्री पात्रों में सुन्दरम् का चरित्र भी श्रेष्ठ है। पुरुष पात्रों में जयदेव, निरंजन, योगी और प्रकाश आदि आते हैं। नाटक का नायक कुंतल का पति जयदेव है। जयदेव प्रेस में मनमाना अत्याचार करता है, बोनस नहीं देता जिससे चार दिन हड़ताल होती रहती है। कुंतल को उसका यह व्यवहार अच्छा नहीं लगता, वह हर तरह से जयदेव को समझाना चाहती है। वह जयदेव से कहती भी है - "मैं अब सिर्फ तुम्हारा हित सोचती हूँ।"[१] परन्तु जयदेव अपने आगे किसी की भी नहीं सुनता।

कुंतल अपने वचन की पक्की है। व जयदेव जब विवाह से पूर्व निरंजन को लिखे उसके पत्रों की चर्चा करता है तो कुंतल उन्हें जयदेव को देने का संकल्प करती है। अकस्मात कुंतल निरंजन से मिलकर उससे पत्र की चर्चा चला कर उससे उन पत्रों को वापस ले जयदेव के सामने रख देती है।

---

१. रात रानी, लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० ४७

नाटक के अन्त में जयदेव ताश खेल कर पचहत्तर हजार रुपए का अंक बेलैंस समाप्त कर देता है। इस बात का कुंतल को तब पता चलता है जब प्रेस के हड़तालियों से उसका बंगला घिर चुका होता है। हरबार कुंतल प्रेस के कर्मचारियों को समझाने में सफल हो जाती थी किन्तु इस बार सभी हड़तालियों के बीच घिर कर वह बहुत घायल हो जाती है। जयदेव को उसने पहले ही माली बाबा को सुपर्द कर बंगले से नहीं निकलने दिया था। वह जानती थी कि जयदेव बाहर जाकर फिर उन कर्मचारियों के चंगुल से नहीं निकल सकेगा। नाटक में सुन्दरम् और निरंजन का चरित्र भी खूब निखरा है। समस्त पात्रों में कुंतल का चरित्र प्रधान है। अतः वही नाटक की प्रधान पात्र है।

रामवृक्ष बेनीपुरी का 'अम्बपाली' नायिका प्रधान नाटक है। इसका नायक अरुणध्वज है और नायिका अम्बपाली। अम्बपाली बौद्धयुग की एक प्रसिद्ध नारी है। वह आनन्दग्राम की निवासिनी है, जो बचपन से ही अरुणध्वज को प्रेम करती है। अम्बपाली उसकी सहेली मधुलिका तथा अरुणध्वज- ये तीनों वैशाली के मेले में जाते हैं जहाँ अम्बपाली राजनर्तकी चुन ली जाती है। वह राजनर्तकी होने का भी स्वप्न कभी देखा करती थी , उसी को यथार्थ जगत में देख कर पागल हो उठती है --

'मधु, मैं राजनर्तकी........ अरुणा, मैं राजनर्तकी! राजनर्तकी.. ह ह ह ह .... मैं राजनर्तकी..... हा हा हा हा ..... मैं राजनर्तकी.......... हो - हो - हो - हो '[1]

---

१. अम्बपाली, रामवृक्ष बेनीपुरी, पृ० ३७

जिस समय उसे होश आती है उस समय वह राजनर्तकी के पद पर आसीन हो चुकी होती है, उसकी दासी मधनिका उसकी मदद के लिए रहती है।

उस आनन्दपूर्ण जिन्दगी में भी उसे आनन्दग्राम का सुख विस्मृत नहीं हो पाता। वह मन ही मन रोया करती है।

अम्बपाली अपूर्व सुन्दरी है। उसकी सुन्दरता को जो देखता है वह पागल हो जाता है। इसका स्पष्ट प्रमाण मगध के राजा अजातशत्रु से मिलता है जो सिर्फ उसकी फोटो देखकर ही पागल हो जाते हैं और वैशाली पर चढ़ाई कर देते हैं। अम्बपाली में एक अपूर्व तेज है जिसके सम्मुख भगवान बुद्ध को भी मात खानी पड़ती है।

"आह! मैं मना कर पाता! मैं देवी प्रजावती को, राहुल माता को, नहीं कर सका था, किन्तु इसे नहीं कर सका। यह विचित्र नारी है आनन्द! उस बार उसने कहा था - मैं भगवान बुद्ध पर विजय प्राप्त करूंगी। वह आज सचमुच जीत गई।"[१]

अम्बपाली वीर भी है जिस समय मगध सम्राट ने वैशाली पर चढ़ाई की उस समय भी नागरिकों के हृदय में तेज भरने व युद्ध क्षेत्र में कुशलता दिखाने में पीछे नहीं रहती वह स्वयं महामात्य बेतक से कहती है -

---

१. अम्बपाली, रामवृक्ष बेनीपुरी, पृ० १२५

'महामात्य ! अम्बपाली सिद्ध कर देगी। वह गौरी ही नहीं दुर्गा भी है। वह सोहनी ही नहीं भैरवी भी सुना सकती है।'[1]

अम्बपाली में, परिस्थितियों के अनुकूल अपने को ढालने की शक्ति भी है। जब मगध सम्राट अजातशत्रु वैशाली को जीत कर उससे मिलने आता है तो वह विशेष बनाव शृंगार करके उसे परास्त कर देती है। इस कृत्य में वह ज़रा भी भयभीत नहीं होती।

इतने ऐश्वर्य को भोगते हुए भी वह बचपन के प्रेमी अरुणा के प्यार को भुला नहीं पाती। रणक्षेत्र में अम्बपाली को बचाते बचाते अरुणा को तीर लग जाता है। वह बुरी तरह घायल हो जाता है तथा इसके बाद उसकी मृत्यु हो जाती है। इस मृत्यु को अम्बपाली नहीं बर्दाश्त कर पाती और जबरदस्ती बुद्ध से तर्क वितर्क कर उनके धर्म में दीक्षित हो जाती है। इस तरह अरुणा के प्यार का प्रायश्चित्त करती है।

इसके अतिरिक्त नाटक में और भी पात्र हैं—मधुलिका, सुमन, आनन्द बैलक, अरुणा आदि। सब का अपना अपना व्यक्तित्व है। सभी पात्रों में श्रेष्ठ चरित्र अम्बपाली का है। अतः वही नाटक की प्रधान पात्र है।

विनोद रस्तोगी का 'बर्फ की मीनारें' नाटक में चार पुरुष पात्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

विलियम, सरोज, राजीव, संदीप।

स्त्री पात्रों में—मिसेज़ चार्ल्स, (मम्मी) मिस मोना चार्ल्स और आभा।

---

1. अम्बपाली, रामवृक्ष बेनीपुरी, पृ० ६३

इन सभी पात्रों में मुख्य चरित्र मोना वार्ल्स का है। पूरे नाटक की कथा इसी से सम्बन्धित है। मोना एक दब्बू और पिंजड़े में बन्द मैना की तरह है, जो अपनी माँ के कहने के अनुसार चलती है तथा उसकी किसी भी बात का विरोध नहीं करती। मोना नाटक के प्रारम्भ से अन्त तक दबी दबी सहमी सहमी सी रहने वाली युवती है जो जीवित होकर भी बर्फ की उस सर्द और अँधेरी मीनार में मृत ममी की तरह दफन है।

यद्यपि दिल से वह माँ के विरुद्ध है पर प्रत्यक्ष रूप से उसमें विद्रोह की क्षमता नहीं है। इस तरह नाटक नायिका प्रधान है।

षष्ठ अध्याय

कैसा पाम प्रभु जी —रेडियो नाटक

अनेक पात्र प्रमुख — ऐसे नाटक

लक्ष्मीनारायण मिश्र के सिन्दूर की होली और वीरसंत नाटक में नायक का स्वरूप पूर्णत: स्पष्ट नहीं है। अत: इन नाटकों को नायक प्रधान कहें अथवा नायिका प्रधान यह विवादास्पद प्रश्न है।

'सिन्दूर की होली' नाटक की नायिका चन्द्रकला अपने समस्त नायिकोचित गुणों से सम्पन्न दिखाई देती है। दूसरी ओर पुरुषपात्रों में रजनीकान्त और मनोजशंकर दोनों का ही व्यक्तित्व विशिष्ट है। नायिका चन्द्रकला रजनीकान्त को अपना पति मानती है जब कि उसके पिता मनोजशंकर से उसका विवाह करने की इच्छा रखते हैं। वह 5000) के लिये, मारे गये। रजनीकान्त की उखड़ती साँसों के मध्य जाकर उसके खून से अपनी माँग भर लेती जब कि वह जान रही है उसका वैधव्यकाल निकट है। इस तरह वह अपने सिन्दूर से होली खेलती है।

रजनीकान्त रंगमंच पर अधिक नहीं आता फिर भी उसके व्यक्तित्व की विशिष्टताओं से दर्शक परिचित हो जाते हैं।

नाटक का नायक मनोजशंकर मानसिक विकृति से पीड़ित है, यह मानसिक विकृति पिता की आत्महत्या की रहस्यात्मकता के कारण है। पिता की आत्महत्या के रहस्य को जानने की प्रबल इच्छा ही मनोजशंकर में तीव्र अन्तर्द्वन्द्व का सृजन करती है, उसके अचेतन मन में प्रतिशोध की भावना ग्रन्थि बन जाती है, और उसे हिस्टीरिया के दौरे पड़ने लगते हैं। उसका यह रोग दिन प्रतिदिन बढ़ता जाता है, वह स्वयं अपने रोग का कारण जानता है :-

---

"मेरा रोग तो तब तक अच्छा नहीं होगा जब तक मैं जान न जाऊँ कि उन्होंने आत्महत्या क्यों की ?"[1]

उसे दुनियाँ में सिर्फ बाँसुरी वादन के और कुछ अच्छा नहीं लगता।

इस तरह पात्रों की विशिष्टता के ऊहापोह में प्रधान पात्र किसे कहा जाए यह कठिन प्रतीत होता है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र के वीरसिंह नाटक में पुरुष पात्रों में कालमणि, केशवचन्द्र, यशसेन, देवदत्त, सत्यजित, जयन्त, ओंकार, तोमल और गुंजल हैं। स्त्री पात्रों में अवन्ती, गौरी, पन्ती, मालती, रात्री आदि हैं।

सभी पात्र महत्वपूर्ण हैं अतः किसे प्रधान पात्र कहा जाए यह स्पष्ट नहीं हो पाता।

इस नाटक में हूणों की संहार-लीला का वातावरण उभर कर आया है, जिसमें उत्तर-पश्चिम कश्यप समुद्र से लेकर नर्मदा के तट तक राजवंश उखड़ गये। नगरियाँ महानगरियाँ, ग्राम जनपद सबके सब मिट गये, किन्तु अन्त में धर्म की विजय हुई। जयन्त, केशवचन्द्र और कालमणि जैसे विशिष्ट पात्र धर्मयुद्ध करके अपने देश को शत्रु के शिकंजों से छुड़ा लेते हैं। अन्त में शत्रु की सेना उनके सामने नतमस्तक हो जाती है। तोमल कालमणि से कहता है "आचार्य अपनी भूमि का जन-जन गुरु बन सकता है। आपका देश जगत के सभी देशों का गुरु है। सब मिट जाएँगे पर आपका यह देश नहीं मिटेगा।"[2]

---

१. सिन्दूर की होली, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ० ६६,६७

२. वीरसिंह, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ० ७०

ऐसा शत्रु जो जन जन को नष्ट कर रहा है उसके प्रति भी इन लोगों में दया का भाव है। तभी तो जदन्त अपने पुत्र का रक्त चूसने वाले शत्रु को पकड़ने पर भी उसे मार नहीं पाता। उसका कथन है—

'शत्रु जब धरती पर पड़ा हो तो उस पर दया आती है, क्षत्रिय वीरता का अवसर वहाँ नहीं रहता।'[1]

ये लोग सब तरह से अपने धर्म की रक्षा में लगे रहते हैं। कालमणि के शब्दों में —' पहला कार्य हमारा यही था मन्त्री। जाए किसी भी लोभलालच में हमारे तरुण न पड़ें। धन का लोभ छोड़ कर धर्म की रक्षा करें। धर्म बच जाने पर धर्म आता है।'[2] राज्य का कार्य भार धर्म के द्वारा ही होता है जैसा कि केशवचन्द्र संसार से कहते हैं - इस देश में राज्य का संचालन धर्म करता है।

शत्रु पक्ष के लोग इनकी कुमारियों के साथ बहुत ही बुरा व्यवहार करते हैं परन्तु ये लोग जब शत्रुपक्ष की तीन कुमारियाँ राती, धाती, पाती को पकड़ते हैं तो उनके साथ कोई भी अनुचित व्यवहार नहीं करते। सबको सम्मान का पद देते हैं, केशवचन्द्र संसार से कहते हैं —

'तीनों कुमारियाँ विद्या, बुद्धि और शरीर से कामदेव जैसे कुमारों को दी गई हैं, पहले आप उन्हें देख लें तब चिन्ता करें।'[3]

---

१. वीरसिंह, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ० ७१
२. ,, ,, पृ० ७३,७४
३. ,, ,, पृ० ७७

गुंजल जब गौरी के केश पकड़ता है उस समय कैलार उससे कहता है - 'क्रोध का अवसर नहीं है सेनापति ! हम लोगों का वैवाहिक हो गया । मेरी सुखी है । मैं भी सुखी हूँ । तुम भी सुखी बन जाओ ।'[1] अन्त में जयन्त से द्वन्द्वयुद्ध होता है गुंजल परास्त होता है उसकी कटी उंगली को जोड़ने का काम वही गौरी करती है । इस तरह नाटक के सभी पात्र समय समय पर अपनी विशिष्ट व्यक्तित्व स्थिति को लेकर अवतरित होते हैं, अतः कौन नाटक का प्रधान पात्र है यह नहीं कहा जा सकता ।

'हरिकृष्ण प्रेमी' के 'मित्र' नाटक में सभी पात्रों का व्यक्तित्व समान रूप से विशिष्टता लिये हुए है । पुरुषों के समान स्त्रियों ने भी वीरता प्रदर्शन कर अपने चरित्र को सुदृढ़ बनाया है जिसे उदाहरण में ताराबाई, प्रभा प्रमुख रूप से आती हैं । इन्हीं के साथ और भी स्त्री पात्र हैं, कनकरी कस्तूरी और किरणमयी । सभी का चरित्र अपने में पूर्ण है ।

पुरुष पात्रों में बीतासिंह, मूलराज, अलाउद्दीन, रहमान खाँ, रत्नसिंह, महबूब खाँ, महाकाल, गिरिसिंह सभी ने समय समय पर अपनी वीरता व शौर्य का प्रदर्शन कर अपने महत्वपूर्ण चरित्र का परिचय दिया है । अतः इन सभी महत्वपूर्ण चरित्रों के मध्य विशिष्ट पात्र को ढूंढना कठिन है । वैसे नाटक की कथा वास्तव में रहमान खाँ और रत्नसिंह के बीच घटती है । ये दोनों बहुत ही घनिष्ठ मित्र हैं, किन्तु युद्ध क्षेत्र में दोनों ही एक दूसरे के रक्त के प्यासे हैं । रहमान अलाउद्दीन की सेना का सेनापति है, अतः उसे

----

१. वीरसिंह, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ० ७७

अलाउद्दीन के कथनानुसार रत्नसिंह के विरुद्ध तलवार उठानी पड़ती है। रत्नसिंह जैसलमेर के राजा का पुत्र है अत: उसे अपने जैसलमेर दुर्ग की आन के खातिर रहमान के विरुद्ध तलवार उठानी पड़ती है।

युद्ध के प्रारम्भ के पूर्व और युद्ध के बाद दोनों मित्र एक दूसरे के गले मिल कर अपनी मित्रता निभाते हैं। उस मित्रता के आगे कर्तव्य पथ से विमुख नहीं होते। यही नाटक का महत्त्वपूर्ण अंश है। इसी पर इन दोनों का चरित्र टिका हुआ है। अत: दोनों की योग्यता, पात्रता के अनुसार नाटक में प्रधान पात्र किसे कहा जाए यह विवादास्पद है।

हरिकृष्ण प्रेमी के 'छाया' नाटक में पुरुष पात्रों में रजनीकान्त मनोहरलाल, प्रकाश, शंकरदेव, भवानीप्रसाद आदि का चरित्र है। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण चरित्र प्रकाश का है।

स्त्री पात्रों में ज्योत्स्ना, माया, छाया और स्नेह आदि हैं। इन सब में छाया का चरित्र श्रेष्ठ है। प्रकाश एक सरलहृदय का भावुक व्यक्ति है, इस कारण उसे ज्योत्स्ना और माया के प्रति बहुत जल्द ही दया का भाव उमड़ आता है। उन्हें बहन बना कर उनके कष्ट दूर करना चाहता है।

प्रकाश की प्रवृत्ति बड़ी उदार है। वह नारी का आदर करता है। नारी उसके लिये एक रहस्य है, उस पर हँस कर पुरुष अपना ओछापन प्रदर्शित करता है। प्रकाश की महानता ज्योत्स्ना के शब्दों में प्रकट है —

"मेरा हृदय आज अपने आप आपके चरणों में बह जाता है, प्रकाश बाबू ! आप देश के महान रत्न हैं, संसार के गौरव हैं। आपके चरणों की रज से, आज पापों से रँगी इस कमरे की भूमि भी पवित्र हो गई।"[1]

परोपकार के लिये अपने को शराबी व्यभिचारी के रूप में भी प्रख्यात हो जाने में भय नहीं खाता, वह ज्योत्स्ना से कहता है —

"तुम्हारे लिये मैं सब कुछ सहूँगा, ज्योत्स्ना। कल से प्रकाश, शराबी, व्यभिचारी के रूप में प्रख्यात होगा विदा, ज्योत्स्यना।"[2]

प्रकाश की आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय है। यहाँ तक कि अपनीपत्नीविल्वे को अपने पास नहीं रख पाता। फिर भी ज्योत्स्यना के माँगने पर वह साधना की रायल्टी १००) उसे सुपुर्द कर देता है।

दूसरी ओर छाया का चरित्र अपने में विशिष्ट महत्व रखता है। उसे अपने पति पर पूरा विश्वास है। जब भवानी, और शंकर अपनी आँखों देखी, प्रकाश की बातें छाया को बताते हैं, उन पर वह विश्वास नहीं करती।

नाटक के अन्त में भवानी बाबू प्रकाश को ७०० रु० के लिए जेल भेजना चाहते हैं इस बात में भी वह सफल नहीं हो पाते। छाया, रजनीकान्त, ज्योत्स्यना रुपिया पहुँच कर उसकी भरपूर मदद करती है। वास्तव में उसका रूप आदर्श पत्नी का रूप है। वह माँ का रूप भी भलीभाँति निभाती है। वह अपने विविध रूपों में पूर्ण है।

---

१. छाया, हरिकृष्ण प्रेमी, पृ० २३
२. छाया, हरिकृष्ण प्रेमी, पृ० ३८

प्रकाश के विरोधी अन्त में उसके असली रूप का परिचय प्राप्त कर नतमस्तक हो जाते हैं। इस तरह प्रकाश इस नाटक का नायक आया, नाटक की नायिका सिद्ध होती है। इन दोनों में किसे प्रधान कहें यह विवादास्पद है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के 'अंधी गली' नाटक में कई पुरुष पात्र हैं, जो अपना भिन्न भिन्न व्यक्तित्व रखते हैं। नाटक का प्रारम्भ मिस्टर कौल के कुटुम्ब से होता है। मिस्टर कौल अत्यन्त कंजूस किस्म के जीव हैं, एक कप चाय भी वह किसी को नहीं पिला सके। पंजाब से आए हुए त्रिपाठी और मिसेज त्रिपाठी से न मिलना ही उनकी कंजूसी का महत्वपूर्ण उदाहरण है। त्रिपाठी जी का तार आते ही मि० कौल बीबी बच्चों को मायके भेज देते हैं स्वयं बिन्द्रा बाबू के घर खाना खाते हैं।

दीनदयाल का भतीजा सुरेश भी अपना विशिष्ट व्यक्तित्व लेकर सामने आया है। उसके माता पिता का देहान्त हो गया है। वह अपने चाचा चाची के पास रहता है। चाची से वह उम्र में दो साल बड़ा है। चाची को वह खूब सिनेमा दिखाता है। खूब उपहार लाता है। कुछ प्रसंगों से ऐसा स्पष्ट हो जाता है कि चाची उससे प्यार करती है, किन्तु सुरेश दीनदयाल की सादी नीति से प्यार करता था। अन्त में वह उसी प्यार में संलग्न गंगा की गोद में सदैव के लिये सो जाता है।

इसके अलावा अन्य भी पुरुष पात्र आए हैं जैसे बिन्द्रा बाबू, रामचरण, बीकू, त्रिपाठी, कर्तारसिंह, लहना सिंह, बलवन्त और श्याम।

इन समस्त पात्रों में किसे नायक माना जाए यह कठिन है।

उपेन्द्रनाथ अश्क के 'बड़े खिलाड़ी' नाटक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके प्रमुख पात्र राम और उसकी बहन शीला मास्टरनी रंगमंच पर नहीं आते ।

इस नाटक में शहरी निम्न मध्यवर्ग की एक गली के पीछे जीवन की एक सीधी सादी घटना है, उसमें दो भाई बहनों की कहानी है । अपनी महत्वाकांक्षा के कारण से दोनों कुछ अतिरिक्त चतुराई से काम लेते हैं और अपने निम्न मध्य वर्गगत ओछेपन के कारण बड़ी भारी चालि चतुराई को चरितार्थ करते हुए रस्सी को को इतना कस दे देते हैं कि वह टूट जाती है । उनकी इसी अतिरिक्त चतुराई से लाभ उठा कर उनके चंगुल में फँसने वाली लड़की का भाई हरीश अपनी बहन को बचा ले जाता है ।

इस प्रकार महत्वपूर्ण पात्रों में पहले वर्ग में राम, शीला, हरीश आदि आते हैं ।

दूसरे वर्ग में वे पात्र आते हैं जो यद्यपि कथा से सम्बन्धित हैं, महत्व-पूर्ण भी हैं किन्तु उपर्युक्त पात्रों जैसा उनका व्यक्तित्व नहीं है । इनके माध्यम से नाटक में ली गई मध्यवर्गीय समस्याओं को उजागर किया गया है । इसके अन्तर्गत पाराशर साहब, शुक्ला, मम्भीवाल आदि का चरित्र आता है ।

तीसरी तरह के पात्र वे हैं जो निम्न मध्यवर्ग के अन्तर्गत आने वाले जन समुदाय का प्रतिनिधित्व करते हैं । इन पात्रों में — रमा, इला, इकलास, योगध्यान, कनक और सीताराम आदि हैं ।

श्रीमती रत्नप्रभा देवी सरल हृदया निम्नमध्यवर्गीय गृहिणी का चित्र उपस्थित करती है जो घर के लिये खटती है, घर का कोई व्यक्ति उसे

नहीं जानता, इसलिये बाहर का युवक घर का मन जाता है। हरीश समझदार और सूक्ष्मदर्शी है। उसकी बहन पर आने वाले संकट ने उसे तीखी धार देदी है। इसलिये अतीव सूक्ष्मदर्शिता से मध्यवर्गीय ग्रन्थियों और मनोवैज्ञानिक उलझनों को ही वह राम की चाल विफल करने के लिये काम में ले आता है।

पाराशर साहब चूंकि अपने श्रम से ऊपर उठे हैं, इसलिये स्वयं ऊपर उठने वाले युवकों के लिये वह स्वाभाविक आस्था व श्रद्धा के पात्र हैं।

सुलता का चरित्र ऐसा है जो अपनी बेबसी भरी चुप्पी से अपनी जिन्दगी बर्बाद कर डालती है।

इस तरह इन समस्त पात्रों में किसे प्रधान कहें यह विवादास्पद है।

डॉ० गोविन्ददास का 'विकास' नाटक काल्पनिक नाटक है जो स्वप्न के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक में रात्रि में एक युवक-युवती इस बात पर विचार विमर्श करते हैं कि 'सृष्टि विकास के पथ से उन्नति की ओर जा रही है या अवनत धुम रही है।' यह वाद विवाद करते हुए वे दोनों सो जाते हैं। स्वप्न में उन्हें आकाशरूपी पुरुष और पृथ्वी रूपी स्त्री के माध्यम से सृष्टि के कई सोपान ज्ञात होते हैं। नाटक के प्रारम्भ में आकाश रूपी पुरुष सिद्धार्थ के ऐश्वर्य का वर्णन करता है। आकाश पृथ्वी रूपी स्त्री से कहता है -- 'शुद्धोधन नरेश ने अपने राजकुमार सिद्धार्थ के लिये तीनों प्रधान ऋतुओं में पृथक-पृथक विहार करने के लिये जिन नौ सात और पांच खण्ड के तीन विशाल प्रासादों का कपिल वस्तु में निर्माण कराया था उनका स्मरण दिलाने से पहले मैं तुम्हें उन्हीं को दिखाता

हूं।"[1] बुद्ध किस तरह राजपाट छोड़ कर चले जाते हैं यह आकाश पृथ्वी से बताता है। उसके बाद बौद्ध धर्म का पतन दिखाता है। फिर ईसाई धर्म के बारे में आकाश बताता है। इसके पश्चात् आकाश युद्ध का बीभत्स चित्रण करता है। फिर गांधी के अहिंसा के धर्म को बताता है। आकाश रूपी पुरुष इस तरह सृष्टि के उत्थान पतन का वर्णन करता है। "प्राणेश्वरी विकास मार्ग द्वारा उत्थान ही उसका नियम है। उसका उत्थान हो रहा है, अवश्य उत्थान हो रहा है।"[2]

इस तरह से सम्पूर्ण नाटक में स्वप्नवत् पृथ्वी के विकास अर्थात् - पतन, उन्नति का वर्णन किया गया है।

नाटक में पात्र बहुत संख्या में हैं। रंगमंच पर स्थाई रूप से सिर्फ आकाश और पृथ्वी ही रहते हैं। सभी पात्र थोड़ी देर के लिये मंच पर दिखाई देते हैं। नाटक के सभी पात्र अपने में विशिष्ट हैं, किसी को विशेष अथवा प्रधान पात्र नहीं कहा जा सकता।

वृन्दावनलाल वर्मा के 'केवट' नाटक में कई पुरुष पात्र हैं - हेमराज, हेमनाथ, रार्बटसन, रतनलाल, लीलानन्द, केशवन आदि। सभी का चरित्र समान रूप से उभरा है। कोई पात्र विज्ञान पर ज्यादा बल देता है, कोई पात्र योगी तपस्वी की बातों पर अधिक विश्वास करता है। कथा सिर्फ इसी प्रसंग को लेकर इसी के इर्द गिर्द घूमती है। अतः नायक अथवा प्रमुख

---

१. विकास गोविन्ददास, पृ० १३
२. ,, ,, पृ० १२०

पात्र का पता लगाना कठिन हो जाता है।

वृन्दावनलाल वर्मा का 'दुर्गी' नाटक उस समय लिखा गया है जब अंग्रेज भारतवर्ष पर राज्य कर रहे थे। अंग्रेज भारतीयों पर कितना अत्याचार करते थे यह इस नाटक में बताया गया है। किसी पात्र का चरित्र इतना विशिष्ट नहीं है जिसे प्रधान पात्र की संज्ञा दी जा सके। सभी पात्र अपने समुचे व्यक्तित्व में हैं, अतः प्रधान पात्र का पता लगाना कठिन है।

जगदीशचन्द्र मिश्र के 'धर्मयुद्ध' नाटक में कौरव पाण्डवों के बीच हुए महाभारत युद्ध का वर्णन है। कौरवों में अपना बन्धु, पिता, पितामह देख कर पाण्डव युद्ध से विचलित होते हैं। इसके बाद श्रीकृष्ण के समझाने पर पाण्डव युद्ध में प्रवृत्त होते हैं। कृष्ण की सेना कौरवों के पक्ष में थी। कृष्ण पाण्डवों के पक्ष में रह कर, अर्जुन के रथ के सारथी बनते हैं। अपना वास्तविक रूप दिखा कर कृष्ण अर्जुन के मोह को दूर करते हैं।

पूरे नाटक में युद्ध के लिये प्रेरणा दी गई है। पहले राजा विराट पाण्डवों को उत्साहित करते हैं फिर युद्धपति कृष्ण आकर उन्हें युद्ध के लिए ललकारते और तैयार करते हैं।

इस नाटक में सभी पात्रों का चित्र अपने में सजीव एवं जीता जागता लगता है। नाटक में कौन नायक है यह नहीं कहा जा सकता।

मोहन राकेश के 'लहरों का राजहंस' नाटक में पुरुष पात्रों में श्वेतांग, शशांक, नन्द, मैत्रेय, भिक्षु और आनन्द आदि हैं। इनमें नन्द का व्यक्तित्व विशिष्ट है, अतः वे ही नाटक के नायक हैं। स्त्री पात्रों में

सुन्दरी अलका निर्धारित जाती है। नाटक में नायिका के रूप में सुन्दरी का चरित्र है। नायक नन्द, नायिका सुन्दरी इन दोनों का ही व्यक्तित्व अपने अपने में महान है।

सुन्दरी के रूप पाश में बँधे हुए अनिश्चित, अस्थिर और संयमी मन वाले नन्द नाटक के अन्त में केश कटाए हुए, हाथ में भिक्षा पात्र लिये दिखाई देते हैं। लहरों में डोलने वाले राजहंस की भाँति ही नन्द का मन चंचल है। वह न तो सुन्दरी के रूप पाश से मुक्त हो पा रहा है, और न ही उच्च निर्विकार मन से भगवान बुद्ध की ही शरण में जा पा रहा है।

नन्द का मन स्थिर भाव से सुन्दरी का उपभोग नहीं कर पाता क्योंकि कहीं उसके भीतर मन में अस्पष्ट और मायावी तत्वों के प्रति भी आकर्षण है। जिस समय वह हाथ में दर्पण लिये सुन्दरी के शृंगार में लीन है उसी समय "धर्मं शरणं गच्छामि" का स्वर उठता है, उसके हाथ से दर्पण गिर कर टूट जाता है।

अपनी ही अशान्ति से भरे हुए भ्रम की बात बार बार सोचना और दीक्षा के बाद व्याघ्र से लड़ना उसकी इस दशा की प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं। नाटक का पहला अंक सुन्दरी के कक्ष से प्रारम्भ होता है, कर्मचारी साज सज्जा में लगे हुए हैं। सुन्दरी के आग्रह पर कामोत्सव मनाया जाने वाला है। उस कामोत्सव में एक अतिथि मैत्रेय ही पधारते हैं। सुन्दरी इस अपमान में बिल्कुल विक्षुब्ध हो उठती है क्योंकि उसका विश्वास था --

---

"आज तक कभी हुआ है कि कपिलवस्तु के किसी राजपुरुष ने इस भवन निमन्त्रण को पाकर अपने को कृतार्थ न समझा हो ? कोई एक भी व्यक्ति कभी समय पर आने से रहा हो ?"[1]

वह अपूर्व सुन्दरी है तभी तो नन्द अपने को उससे नहीं छुटा पा रहा है। सुन्दरी के मन में दया का भाव है। श्यामांग के अपराध से भी अलका के कारण शीघ्र ही उसे अपराध से मुक्त कर देती है, और अलका को उसकी परिचर्या में लगने का आदेश देती है।

इस तरह नायिकोचित गुणों से युक्त सुन्दरी का चरित्र है, नायकोचित गुणों से युक्त नन्द का चरित्र है। इन दोनों में कौन प्रधान पात्र है यह विवादास्पद है।

मोहन राकेश के 'आधे अधूरे' नाटक की कथा एक परिवार के बेकार पति महेन्द्रनाथ, पुत्र अशोक दो पुत्रियाँ और पत्नी सावित्री के इर्द गिर्द घूमती रहती है। पति बेकार है, वह आत्मविश्वासहीन पुरुष है। सावित्री उससे सन्तुष्ट नहीं रहती। सावित्री पूर्ण पुरुष की तलाश करती है। सावित्री को अपने विचारों के अनुसार पूरा आदमी कहीं नहीं मिलता। शिवजीत, जगमोहन, जुनेजा, मनोज आदि से वह मिलती है। इनमें कोई पूरा आदमी नहीं है। फिर भी वह सबको आजमा चुकी है। मनोज सावित्री की बड़ी बेटी को लेकर भाग जाता है। पुत्र अशोक को नौकरी दिलाने के लिए वह बास सिंघानियाँ को खुश करती है। बेटे बेटी और पति से

---

1. लहरों का राजहंस, मोहन राकेश, पृ० ६१

उसे घृणा व तिरस्कार मिलता है । सावित्री जगमोहन के साथ जाने का निर्णय करती है । जगमोहन उसे उम्र अधिक देख निराश कर देता है । अशोक निठल्ला और आवारा है । यौन जीवन सम्बन्धी किस्से कहानियाँ पढ़ता रहता है ।

नाटक का अन्त सावित्री के लौट आने पर , कुण्ठा संत्रास के तनाव के साथ प्रभावशाली ढंग से होता है । इस तरह यह नाटक मध्यम-वर्गीय परिवार के विघटन और उससे उत्पन्न अकुलाहट को अभिव्यक्त करता है । अर्थात स्वयं अधूरा रहते हुए भी दूसरे के अधूरे पन को सहन नहीं कर पाता और अव्यावहारिक आदर्श की तलाश में भटकते हुए परि-वार को तोड़ देता है ।

इस तरह नाटक के सभी पात्र अपना अलग अलग स्थान रखते हैं । इनमें किसे प्रधान कहा जाय यह विवादास्पद विषय है ।

डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल के 'अब्दुल्ला दीवाना' नाटक में व कई पात्र आए हैं - जज, पुरुष , डायरेक्टर, युवक, वकील, सरकारी वकील, चपरासी, पुलिस । स्त्री पात्रों में युवती, स्त्री आदि पात्र हैं ।

नाटककार ने अब्दुल्ला को मरवा कर नया उच्च वर्ग सामने उपस्थित किया है । उसी वर्ग का खोखलापन ,नंगापन, सत्ता तथा व्यवस्था से बंदे के रूप में इस नये वर्ग को जो ताकत स्वरूप हैसियत मिली है वही इस नाटक में व्यक्त है । सब कुछ जितना ही हास्यास्पद है उतना ही करुणा है ।

नाटक की कथा अपने में कोई विशेष महत्त्व नहीं रखती । नाटक के सभी पात्र अपने अपने पूर्ण रिक्त स्थान की पूर्ति करते दिखाई पड़ते हैं । किसी एक पात्र का ऐसा व्यक्तित्वनहीं है कि उसे प्रधान पात्र कहा जा सके ।

लक्ष्मीनारायण लाल के करफ्यू नाटक में प्रमुख रूप से दो पुरुष पात्र प्राप्त हैं। गौतम, और संजय। स्त्री पात्रों में मनीषा और कविता आती हैं। करफ्यू नाटक में दो विरोधाभास पूर्ण स्थितियों को व्यक्त किया गया है। मनीषा पर आजादी का करफ्यू लगा हुआ है। कविता पर शादी का। मनीषा एकदम आधुनिक है, वह बार बार टूटती है। एक के पास से भाग कर दूसरे के पास जाती है दूसरे के पास से तीसरे के पास। इसी तरह संजय और गौतम भी एक दूसरे के विपरीत हैं। मनीषा गौतम के जीवन में सन्तुलन लाती है और कविता संजय के जीवन में।

नाटक का मूल उद्देश्य यह है कि अति किसी की भी अच्छी नहीं होती। शादी और आजादी दोनों में सन्तुलन बनाए रखना चाहिए।

डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल के मादा कैक्टस नाटक में पुरुष पात्रों में सुधीर अरविन्द, गंगाराम दद्दा आदि हैं। स्त्री पात्रों में मीनाक्षी और सुजाता का चरित्र है।

संगीत से लेकर कार्यों तक, घटनाओं से पात्रों तक, नीलाम के बाजे से अनाथालय के बच्चों के गीत तक, मादा कैक्टस से मुर्गाबी चिड़िया तक नाटककार ने प्रतीकों का सहारा लिया है।

समस्त पात्रों का चरित्र अपने में श्रेष्ठ है, सभी का अपना व्यक्तित्व है। अतः किसे प्रधान कहा जाए यह विवादास्पद है।

शील के `अवा का रूख` नाटक में नायक के रूप में कमल का चरित्र है। नायिका के रूप में वन्दना का। दोनों का ही महत्वपूर्ण व्यक्तित्व है।

नायक अमोल बेकारी की समस्या को लिये हुए है। वन्दना के कहे हुए कथन से इसकी पुष्टि होती है। "दुकानदार के पास जाओ, कोई जगह नहीं। कम्पनियों में जाओ एजेन्सी और काम दिलाऊ दफ्तरों में सिफारिश लेकर घूमो, दरख्वास्तों के अम्बार, खाली हाथों में डिग्रियों के उदास कागज, वन्दना मैं सोच नहीं पाता अपना और देश का भविष्य।"[1]

वन्दना थोड़ा डाक्टर की लड़की है जो एम०बी०बी०एस० कर चुकी है जिसे छोटा सा दवाखाना खोलने का शौक है, वह कहती है — "मैं प्रैक्टिस करना चाहती हूँ। अपना दवाखाना खोल कर गरीबों की सेवा करना चाहती हूँ।"[2]

अन्त में इस शौक की पूर्ति वह कीर्तिपुर के अस्पताल में नौकरी करके करती है। विश्वास की २५ वर्षों से खोई नेत्रों की ज्योति उसे प्रदान करती है। "वन्दना बेटी तेरी बदौलत मेरी आँखें मिल गईं"।[3] ऐसा विश्वास के कथन से स्पष्ट होता है। खाली टीन एवं डिब्बे बेचने वाली राधा की जिन्दगी को सुधारती है। इस तरह वह कर्तव्य क्षेत्र में रत रहती है।

दूसरी ओर अमोल बी०ए० डिग्री लेने के बाद भी बेकारी की समस्या में उलझा हुआ है। वह किसी तरह ट्यूशन करके अपनी छोटी बहन

---

१. हवा का रुख, पृ० ३५
२. ,, पृ० ३७
३. ,, पृ० १११

भाभी, और पिता की देखभाल करता है ।

वन्दना, अमोल एक दूसरे से प्यार करते हैं जो नाटक के बीच बीच के स्फुट चित्रण से स्पष्ट हो जाता है ।

दूसरी ओर दुश्चरित्र तीरथ का है जो १५ सालों से अपने कुकर्मों का फल जेल में भोग रहा है । इस तरह नाटक के सभी पात्र अपने अपने में पूर्ण हैं । सभी की अपनी अपनी विशेषताएं हैं । नाटक का नायक अमोल और नायिका वन्दना तो स्पष्ट हैं, किन्तु इन दोनों पात्रों में किसे प्रधान पात्र कहा जाए यह विवादास्पद है ।

धर्मवीर भारती कृत 'अन्धायुग' का उल्लेख कविता और नाटक दोनों के सन्दर्भ में किया जाता है । लेखक ने आधुनिक जीवन को दृष्टि में रखते हुए महाभारत का कथानक ग्रहण कर अपनी वैचारिकता व्यक्त की है, किन्तु युग-सापेक्ष दृष्टिकोण के साथ साथ रचना-पद्धति की दृष्टि से भी उसमें नवीनता है ।

समस्त पात्रों का चरित्र अपने आप में विशिष्ट है, अत: किसे प्रधान कहा जाए यह विवादास्पद है ।

विष्णु प्रभाकर का 'चन्द्रहार' नाटक प्रेमचन्द के सुप्रसिद्ध 'गबन' उपन्यास का नाट्य रूपान्तर है ।

विष्णु प्रभाकर ने मूल उपन्यास की कथावस्तु पात्र और संवादों को सुरक्षित रखते हुए जालपा के आभूषण प्रेम और रमानाथ के मनोवैज्ञानिक चरित्र चित्रण की कहानी को बड़ी ही कुशलता, कलात्मकता और सफलता से नाटक का परिधान पहनाया है ।

इस नाटक में पुरुष पात्र के रूप में रमानाथ दयानाथ और देवीनाथ इन तीनों का चरित्र आया है। इसमें विशेष उल्लेखनीय चरित्र रमानाथ का है। अतः रमानाथ ही नाटक का नायक है। रमानाथ साधारण हैसियत का युवक है, किन्तु शान में आकर अपनी पत्नी के सम्मुख, अपने वैभव की झूठी डींग मारता है, इसके लिये उसे बहुत कुकर्म करने पड़ते हैं। वह परेशान हो जाता है उसे रात में नींद नहीं आती उसके मन में आता है —

" यदि आज कोई एक हजार का रुक्का लिखकर पांच सौ रुपया भी दे देता तो मैं निहाल हो जाता, पर अपनी जान पहचान वालों में कोई ऐसा नजर नहीं आता।...... मैंने नाहक सर्राफ को रुपये दिये। नालिश वह क्या करता ..... अब तो दस दिन में कहीं से भी हो आठ सौ रुपया चाहिये। कहीं से आए........ मुझे कोई भयंकर रोग हो जाए। कहीं से कोई तार ही आ जाए।"[1]

रमानाथ उधार गहने बनवाता है, सुनार रतन को रुपये देता है, सरकारी रुपया खर्च करता है यह यहाँ तक कि अपनी पत्नी के गहने चुराता है। उसकी धोखेबाजी, झूठी डींगों, पाप पूर्ण कर्मों में सहयोग देने का सबसे बड़ा उदाहरण उसके अन्तिम कृत्य पुलिस के कब्जे में आकर झूठी गवाही देना होता है। रामनाथ का यही सबसे बड़ा पाप कर्म है जो पुण्यकर्म में बदल जाता है। क्योंकि इसी के बाद उसका हृदय बदल जाता है, उसकी आँखें खुल जाती हैं। जालपा जब गवाही न देने की बात रमानाथ से कहती है तो वह कहता है —

---

१. चन्द्रहार, विष्णु प्रभाकर, पृ० ४४

जालपा मुझे जितना नीच समझ रही हो, मैं उतना नीच नहीं हूं।"[१]

अन्त में रामनाथ दरोगा से कह देता है —

"मैं शहादत न दूंगा। साफ साफ कह दूंगा, कि पुलिस ने मुझे धोखा देकर शहादत दिलाई है।"[२]

रमानाथ की पत्नी जालपा का चरित्र महान है उसमें यद्यपि साधारण स्त्रियों की भाँति गहने पहनने की इच्छा है, फिर भी वह रिश्वत खोरी, दगाबाजी से बहुत चिढ़ती है, हर तरह से वह रमानाथ का सारा कर्ज उतार देती है और उसकी खोज शतरंज के खेल के माध्यम से करती है। इस कार्य में वह सफल भी होती है। इन सबके लिये उसे बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। दिनेश के घर जा कर मजदूरिन का जीवन व्यतीत करना पड़ा। इस तरह उसका चरित्र अपने में सशक्त है, अपने चरित्र में व्यक्तित्व के द्वारा रमानाथ को पुन: सभ्य पुरुष का जीवन जीने की प्रेरणा देती है।

इस तरह दोनों पात्रों का चरित्र महान है इसमें किसे प्रधान कहा जाय यह विवादास्पद है।

विष्णु प्रभाकर के "टूटते परिवेश" नाटक में पुरुष पात्रों में विश्वजीत, विवेक, अशोक, शरत, विमल। स्त्री पात्रों में - मनीषा, करुणा

---

१. अन्धकार, विष्णु प्रभाकर, पृ० ११४
२. ,, ,, पृ० ११६

जरीना, इन्दु आदि । सभी पात्र विशिष्टताएं लिये हुए हैं ।

इस नाटक की कथा विभिन्न समस्याओं को लिये हुए है, सभी पात्र मुक्ति चाहते हैं, उनका परिवेश बस उन्हीं तक सीमित रह गया है, सभी इसके पीछे दौड़ रहे हैं ।

टूटते परिवेश में ४० लोगों का परिवार बिखर गया है । जो पात्र आए हैं सभी अपने अपने कर्तव्य में रत हैं, किसी को किसी की आवश्यकता नहीं है । विपल विदेश में है जो विश्वकान्त का दूसरा बेटा है । विवेक सिर्फ अर्जियाँ लिखने में लगा रहता है और जरीना के साथ विदेश यात्रा पर निकल जाता है । मनीषा क्रिस्टोफर से शादी कर चली जाती है । दीप्ति हास्टल में चली जाती है । इस तरह सभी अपने अपने में मग्न रहते हैं, घर की किसी को चिन्ता नहीं रहती है । सिर्फ करुणा ही घर की जिम्मेदारी समझती है । नाटक में वह स्थाई रूप से घर में निवास करती है । विश्वजीत भी घबड़ा कर आत्महत्या करने चला जाता है । इस तरह परिवार बड़े ही विशृंखलित रूप में हो जाता है । नाटक का अन्त सुखान्त है, नाटक के सभी पात्र वापस आकर घर को ही स्वर्ग मान कर वहाँ आनन्दित होते हैं । इस तरह से नाटक में सम्पूर्ण घटना के मध्य में सभी पात्रों का चरित्र आता है, इनमें मुख्य रूप से विश्वजीत और करुणा का चरित्र आता है । इन दोनों में किसे प्रधान माना जाए यह विवादास्पद है ।

सत्यजित राय के 'कंचन बँधा' नाटक में नायक के रूप में प्रणव बनर्जी व अशोक का चरित्र सामने आता है नायिका के रूप में मणिमा का चरित्र ।

प्रणव अनर्थी विलायत से लौटे हैं। अत: उनका व्यक्तित्व कुछ विलायती लगता है।

अशोक एक सीधा साधा पुरुष है जो पढ़ लिखकर भी नौकरी नहीं प्राप्त कर सका है। नाटककार ने इसी के माध्यम से बेकारी की समस्या को उभारा है।

नायिका के रूप में अणिमा का चरित्र कुछ निखरा है।

सभी पात्रों का चरित्र अपने में पूर्ण है। अत: प्रधान पात्र किसे कहा जाए यह विवादास्पद है।

मन्नू भण्डारी के बिना दीवारों के घर नाटक में पुरुष पात्रों में जयंत और अजित का चरित्र है। स्त्री पात्रों में शोभा का चरित्र प्रमुख है। मीना और जीजी का चरित्र भी अपने में पूर्ण है।

अजित शोभा का पति है उसे वह बहुत प्यार करता है। अजित की कुछ उलझनें शोभा के प्रति उसे इतनी तटस्थ कर देती है कि वह उससे दूर हो जाता है। यद्यपि उलझनें वास्तविक नहीं होती सिर्फ शक की बीमारी ही इस दूरी का कारण होती है।

जयंत अजित का प्रारम्भ से ही जिगरी दोस्त और हमदर्द रहता है। जयंत को शोभा के करीब हो जाना अजित बर्दाश्त नहीं कर पाता, अन्तत: वही जयंत का उसका दुश्मन बन जाता है।

जयंत शोभा को भाभी के रूप में देखता है। अपना सगा समझ कर उसके लिए कठिन से कठिन कार्य करने को तैयार रहता है। यद्यपि अजित जयंत पर गलत इल्जाम लगाता है, फिर भी जयन्त शोभा के कहने पर

सोर्स लगाकर उसे अच्छी फर्म में काम दिलाता है । अन्त में भी जब शोभा अजित को छोड़ कर होटल में रहने लगती है । बप्पी की बीमारी को नहीं देखने जाना चाहती, उस समय भी जयन्त जबरदस्ती अपनी कार में बिठा कर उसे उसके घर तक छोड़ आता है । यह कार्य वह मानवतावश करता है, किन्तु इन्हीं कार्यों से अजित का शक और भी बढ़ जाता है ।

शोभा पहले हाई स्कूल पास करती है । अजित उसे पढ़ाता है, टाईपिंग कराता है, शोभा को नहीं मालूम रहता जो वर्तमान इतना सुखमय है , वही भविष्य इतना दु:खमय होगा । वह आदर्श पत्नी बन कर रहना चाहती है । अपने पति के कथनानुसार ही कार्य करना चाहती है । अपने पति के ~~कथनानुसार ही कार्य करना चाहती~~ है । उदाहरण के लिये जब मीना उसे प्रोग्राम में आमन्त्रित कराना गाने के लिये कहती है तो शोभा मना कर देती है । वह कहती है —

'बस कुछ ऐसा ही समझ लो, मेरा इधर उधर जाना इन्हें पसन्द नहीं ।'[१] अजित इतना परेशान रहता है कि अपनी ही कुछ कर नहीं पाता । अपनी उलझनों के सामने कुछ सोच नहीं पाता । इन्हीं सब कारणों से शोभा से खिंचा खिंचा रहता है ।

स्त्री पात्रों में बीबी का चरित्र भी निखर कर सामने आया है । वे शोभा की विधवा ननद हैं, वे साधारण पढ़ी-लिखी हैं, किन्तु उनके विचारों से उनके सामाजिक ज्ञान का अनुमान हो जाता है ।

मीना के विचार जयन्त से नहीं मिलते अत: अलग ही रहती है । इस तरह सभी पात्रों का अपना अपना व्यक्तित्व है, अपना अपना चरित्र है ।

अत: इन समस्त पात्रों में किसे प्रधान पात्र कहा जाए यह विवादास्पद है ।

राजा लक्ष्मण सिंह के 'शकुन्तला' नाटक का नायक दुष्यन्त है, नायिका शकुन्तला है ।

इसकी कथा वही है जो प्राचीनकाल से चलती आ रही है । वन में दोनों का मिलना एकान्त में विवाह होना । दुर्वासा के शाप से अंगूठी खो जाने से दुष्यन्त का शकुन्तला को न पहचानना । अन्त में पुत्र के गण्डस्थल से गिरे तावीज़ द्वारा शकुन्तला व उसके बेटे से परिचय प्राप्त करना आदि .... । विशेषता यह है कि इसमें दोहे, छन्द, सवैया द्वारा नाटककार ने नाटक की शोभा बढ़ा दी है । वैसे इसमें और भी पात्र आए हैं किन्तु मुख्य रूप से ये दोनों पात्र प्रधान हैं । इन दोनों में किसे प्रधान कहें यह विवादास्पद है ।

श्रीयुत के 'जिन्दालाश' पुस्तक 'भड़िया' नाटक में कई पुरुष पात्र हैं — सूरज, गोपाल, विद्याकान्त, उदय और बाबा जी ।

इन सब में सूरज का व्यक्तित्व अपने में पूर्ण है अत: यही नाटक का नायक है । नारी पात्रों में —

तारा, चन्दा, कंचन, ऊषा आदि आती हैं, जिनमें कंचन का चरित्र सशक्त है ।

सूरज उदयशंकर का तेजस्वी पुत्र है । वह वीर है । वह दुनिया के मनुष्यों के कुकर्मों से परिचित है तभी अपनी बहन तारा को डॉक्टर के यहाँ नर्स नहीं बनने देता । वह स्वयं ही किसी न किसी तरह से सर्व

चलाता है । नाटक के अन्त में नायिका कंचन के सहयोग से, दुनिया को धोखा देने वाले डॉक्टर, वकील, पुजारी सब को जेल में भेज देता है । इन सब परेशानियों का सामना वह डट कर करता है । इसके लिये उसे जेल भी जाना पड़ता है ।

नायिका कंचन जिसे वकील के कुकर्मों के फल-स्वरूप गंदा धंधा अपनाने की प्रेरणा मिली थी, उस कार्य को समाप्त कर उदयशंकर की बहू बनती है, और न्यायालय में सभी के कार्यों को ठीक ठीक बता कर उन्हें जेल भिजवाती है । इस तरह नायक नायिका दोनों का चरित्र अपने में पूर्ण है । इन पात्रों में किसे प्रधान पात्र कहा जाय यह विवादास्पद है ।

सुरेन्द्र वर्मा के "सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की प्रथम किरण तक नाटक में बहुत ही कम पात्रों को लेकर राजनैतिक, सामाजिक स्थितियों का बहुत सफल चित्रण किया गया है ।

इस नाटक के माध्यम से नाटककार ने एक प्राचीन प्रथा के द्वारा मनुष्य की दुर्बलता और पद के अहंकार पर व्यंग्य किया है । राजनैतिक स्थिति से राजा इतना बंध जाता है कि उसकी किसी भी इच्छा का कोई मूल्य नहीं रह जाता ।

इस तरह नाटक में ओक्काक और उसकी पत्नी शीलवती ही मुख्य पात्र हैं । शेष पात्र केवल समस्याओं को और घटनाओं को स्पष्ट करते चलते हैं, और उनका कोई विशेष स्थान नहीं रहता ।

नाटक में समस्त पात्रों में किस पात्र को प्रधान पात्र कहा जाए यह विवादास्पद है ।

दयाप्रकाश सिन्हा के 'साँझ सबेरा' नाटक में पुरुष पात्रों में निखिल, बाबू, मुन्ना, शीतलाप्रसाद, मुरारी बाबू पंडित जी, मौलाना, मसनवी, कप्तान आदि हैं।

स्त्री पात्रों में शोभना, सीमा, परमा भाभी माँ आती हैं। इन सभी पात्रों में कुछ विशेष चरित्र निखिल और उसके पिता बाबू का है।

बाबू बड़ी सच्चाई से अपनी नौकरी करता है। उसे घूसखोरी से नफरत है। यही कारण है कि वह रुपया जमा नहीं कर पाता, अत: वह अपनी बेटी शोभना का विवाह नहीं कर पाया है। किसी तरह से पाँच हजार रुपया जमा करते हैं, तो निखिल उन रुपयों को चुरा लेता है। उसका कहना है, दहेज देकर हम अपनी बहन की शादी नहीं करेंगे। अन्त में जब बाबू परेशान हो जाता है तो घूस लेकर उसे उधार का बहाना बताता है। निखिल उसके इस कृत्य को बरदाश्त नहीं कर पाता उसे कार के नीचे ढकेल देता है, इस तरह उसकी मृत्यु हो जाती है।

नाटक के ये दो सशक्त पात्र हैं दोनों के अपने अपने आदर्श हैं यद्यपि बाबू अपने आदर्श का पालन नहीं कर पाता फिर भी उनका चरित्र महान है।

इस तरह नाटक में इन दोनों में कौन प्रधान पात्र है यह विवादास्पद है।

डॉक्टर शंकर शेष के 'बन्धन अपने अपने' नाटक में पुरुष पात्रों में डा० जयन्त, डा० तर्कतीर्थ, अनादि और चंदन आदि हैं। स्त्री पात्रों में कामना का चरित्र है।

विख्यात लिपिशास्त्री डॉ० जयन्त युनिवर्सिटी में प्रोफेसर हैं। वे अदेव अध्ययन में रत रहते हैं। अपने छोटे भाई अनादि से भी वे यही अपेक्षा करते हैं कि वह निरन्तर अध्ययनरत रहे। अनादि से कहे हुए कथन से उस बात की पुष्टि हो जाती है —

"मैं पिछले २५ वर्षों से युनिवर्सिटी में पढ़ा रहा हूँ, पर जिस दिन पढ़ कर नहीं जाता, मुझे लगता है मैं चोरों की तरह क्लास में घुस रहा हूँ।"[1]

" .... देखो अनु, यदि युनिवर्सिटी में पढ़ाना है तो तुम्हें पढ़ना भी चाहिये।"[2]

अनादि भाई साहब की पढ़ाई से घबड़ाता है। अनादि आज के युवक की भाँति मनमौजी जीवन पसन्द करता है। अनादि के जन्म के बाद माता, पिता की मृत्यु हो जाती है। भाई के संरक्षण में ही वह पलता है। ऊतना से अनादि कहता है —

"जब से मैंने होश सम्भाला है, किताबों में सिर गड़ाए हुए भाई साहब को देखा है।"[3]

"पर ऊतना मैं विद्वान् नहीं बनना चाहता। मैं पुस्तकों के बोझ से दब कर मर नहीं जाना चाहता। मैं कुछ जीना चाहता हूँ...... कुछ गाना चाहता हूँ...... खेलना चाहता हूँ...... मैं आम मनुष्य की पूरी

---

१. बन्धन अपने अपने, शंकर शेष, पृ० २३
२. वही, वही, वही
३. वही, वही, पृ० २३

जिन्दगी जीना चाहता हूं ।[1]

डॉ० तर्कतीर्थ का चरित्र अपने में भावुकता लिये हुए है । मजुमदार की लाश को देख कर उनका भावुक हृदय भयभीत हो जाता है । डॉ० तर्कतीर्थ, डॉ० जयन्त के एकाकी जीवन को समाप्त करने का प्रयत्न करते हैं । उनके विवाह का विज्ञापन देते हैं, हर तरह से उन्हें विवाह के लिये मजबूर कर देते हैं । डॉ० तर्कतीर्थ के कारण ही डॉ० जयन्त विवाह के लिये तैयार होते हैं ।

स्त्री पात्रों में चेतना का चरित्र खूब निखरा है । नाटक में प्रारम्भ से ही वह अनादि से प्यार करती है और डॉ० जयन्त का आदर करती है । डॉ० जयन्त के घर का पूरा संरक्षण स्वयं अपने हाथों में ले लेती है । दीपावली का त्योहार धूम धाम से मनाना चाहती है । तैयारी करती है । डॉ० जयन्त के लिये वह एक बुलन गाउन लाती है । डॉ० जयन्त के बीमार हो जाने पर वह मन से उनकी सेवा करती है । इस तरह हर प्रकार से डॉ० जयन्त की सुख सुविधा का चेतना ख्याल रखती है । अन्तत: डॉ० जयन्त इसका गलत अर्थ लगा लेते हैं । वह समझते हैं चेतना मुझसे प्यार करती है, मुझसे शादी करने को तैयार है । नाटक के अन्त में पत्र के माध्यम से अपने यह विचार वे चेतना के सम्मुख रख देते हैं । उस पत्र को अनादि और चेतना दोनों पढ़ते हैं । चेतना घर छोड़ कर जाने लगती है । अनादि हर तरह से उसे समझाता है । डॉ० जयन्त से विवाह करने को मजबूर करता है, लेकिन वह तैयार नहीं होती । इसी बीच डॉ० जयन्त आ जाते हैं, उन्होंने इन दोनों के बीच की बातों को सुन लिया है । वे उन दोनों से अपना सामान ठीक करने को कहते हैं और वाशिंगटन चले जाना चाहते हैं । वे चेतना और अनादि से कहते हैं —

---

1. अपने अपने अजनबी. शंकर शेष, पृ० २५

हाँ देखो, चेतना, मैं तुम्हें अपनी सब पुस्तकें दिये जा रहा हूँ। .... तुम पढ़ोगी तो सचमुच विदुषी हो जाओगी। और अनादि, तुम्हारी पत्नी के लिये मैं पेरिस से एक उपहार लाया था।

चंदन पूरे नाटक में अपने साहब की बीबी के लिए होंठ की लिपस्टिक ढूँढने में प्रयत्नशील रहता है।

इस तरह नाटक के सभी पात्र अपने में विशिष्ट हैं, किस पात्र को प्रधान कहा जाए यह विवादास्पद है।

सुशीलकुमार सिंह का 'सिंहासन खाली है' नाटक में देश के राजनैतिक हथकण्डों को लिया गया है। एक सिंहासन है, जिसके लिये सभी अपने को योग्य समझते हैं, इस तरह आपस में संघर्ष होता है। इस नाटक में पात्रों को पुरुष, नेता, एक दो और तीन नाम से सम्बोधित किया गया है। नेता दो मुँहा चरित्र लिये हुए अवतरित होता है। सिंहासन पर बैठते ही जनता से वह मुँह ऐंठता है, स्त्री को खिलौना समझता है। वह षड्यन्त्र हत्यायें सत्ता का संघर्ष सब कुछ आरम्भ कर देता है। एक दो और तीन उसकी जनता बन जाते हैं। ऊपर से ये तीनों मिले हुए दिखाई पड़ते हैं पर भीतर ही भीतर अपने को एक दूसरे से ज्यादा समर्थ समझते हैं।

स्त्री पात्रों में मांसला नामक पात्र आधुनिक स्त्रियों की तरह मंच पर आती है। वह अपने पति को दबा कर रखती है, उसका पति उसी के कहने पर सब कार्य करता है। वह नेता को भी उसकी गलतियाँ दिखा कर स्वयं को सिंहासन के योग्य समझती है।

इस नाटक का 'पुरुष' पात्र कमज़ोर पात्र है। वह डरपोक स्वभाव का है। अपनी पत्नी की रक्षा के लिये आगे पीछे घूमता रहता है।

इस तरह सभी पात्र अपना स्थान लिये हुए हैं किसी का भी कोई विशेष चरित्र नहीं है। अतः किसे प्रधान पात्र कहा जाय यह विवादास्पद है।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने 'बकरी' नाटक की रचना जनवादी चेतना का प्रचार और जीवन की कटु वास्तविकताओं को स्पष्ट करने के लिये नौटंकी शैली में की है। इस नौटंकी शैली के नाटक में पात्रों की भीड़ एकत्र करके राजनैतिक, सामाजिक, समस्याओं को स्पष्ट किया गया है। नेताओं, सिपाहियों और ग्रामीणों के चरित्र को भी अंकित किया गया है।

नाटक में आम जनता पर और ग्रामीणों पर लादी गई धर्मान्धता और उनके शोषण तथा उत्पीड़न का सजीव चित्रण किया गया है। इसमें नायक, नायिका का कोई महत्व नहीं है। इसके सभी पात्र अपना एक निजी स्थान रखते हुए दिखाई पड़ते हैं। अतः कोई प्रधान पात्र नहीं है।

—

निष्कर्ष –

प्राचीनकाल में नाटक के प्रधान पात्र में संस्कृत के नाट्याचार्यों द्वारा दी गई मान्यताएं अनिवार्य समझी जाती थीं । प्रधान पात्र को अनेक उदात्त गुणों से युक्त करते हुए नाटकों की रचना की जाती थी । परन्तु आज आलोच्य काल के नाटकों में इस प्रकार का प्रचलन कम होता जा रहा है । अब नाटक का वही उदात्त पात्र है, जो नाटककार के उद्देश्य के प्रकट करने में पूरा या[illegible] दे रहा हो । प्राचीन नाटकों में चरित्रों की संख्या भी अधिक होती थी । प्रत्येक नाटक में नायक - नायिका ,खलनायक, अथवा प्रतिनायक और सहयोगी पात्रों की शृंखला बंधी रहती थी । अब आधुनिक नाटकों में इस मान्यता में अन्तर दिखाई पड़ता है । स्वतन्त्रता पूर्व के नाटकों में आठ या दस तक चरित्रों की संख्याएं मिलती हैं परन्तु वर्तमान काल के नाटकों में पात्रों की संख्या चार या पाँच ही रह गई है । इसका विशेष कारण यह है कि अत्याधुनिक नाटकों में कथावस्तु को सीमित क्षेत्र तथा घटनाओं में बाँध दिया गया है । आज अभिनय की दृष्टि से नाटकों की रचनाएं होती हैं । इसलिये पात्रों का जमघट होना आधुनिक नाट्य-साहित्य की मान्यता के विरुद्ध है ।

इस सामयिक नाटकों में प्रसाद की भाँति नायिका प्रधान नाटकों की भी रचना हुई है । कुछ नाटकों में प्रधान पात्र की समस्या दिखाई पड़ती है । इस समस्या के अन्तर्गत दो प्रकार के नाटक दिखाई पड़ते हैं । एक तो वे नाटक जिनमें ऐसे दो या दो से अधिक सशक्त व्यक्तित्व के पात्र हो जाते हैं, जिनमें किसे नायक कहा जाए यह समस्या खड़ी हो जाती है ।

दूसरे वे नाटक जिनमें किसी भी पात्र का व्यक्तित्व विशेषताओं से पूर्ण नहीं होता, पात्र सिर्फ अपने स्थान की पूर्ति करते हुए दिखाई देते हैं ।

अब्दुल्ला दीवाना, बकरी आदि नाटकों में प्रधान पात्र बताना कठिन है । कुछ नाटकों में ऐसे चरित्रों के समूह को रख दिया जाता है, जिनमें विभिन्न भाषा भाषी व्यक्तित्व होते हैं । अनेक वर्गों में आने वाले चरित्रों को एक त्र करके राजनैतिक नाटकों की रचना भी की गई है । इसका सबसे अच्छा उदाहरण ब्रजमोहन शाह द्वारा रचित त्रिशंकु नाटक है । हिन्दी नाटकों में नायिका को स्थान दिया ही नहीं जाता । जैसे बापू की हत्या हजारवीं बार और त्रिशंकु नाटक में स्त्री पात्र को स्थान नहीं दिया गया है । आज के नाटकों में यह आवश्यक नहीं रह गया है कि नायक नायिका का सम्बन्ध पति पत्नी का ही हो । नायक-नायिका भाई बहन, (अलग अलग रास्ते) अजनबी (दर्पण), पड़ोसी (तीन दिन तीन घर) कोई भी हो सकते हैं ।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में प्रतिनायक का बहुत कम प्रयोग हुआ है । अधिकांशतः जिन नाटकों में प्रतिनायक का प्रयोग हुआ भी है वह प्राचीन नाटकों की मान्यता के अनुसार नहीं है । उदाहरणार्थ आषाढ़ का एक दिन नाटक में विलोम प्रतिनायक है, पर वह नायक बनने का स्वप्न देखता था, और नायिका से विवाह करने की मनोकामना तो वह पूरी ही कर लेता है । नायक का स्थान वह फिर भी नहीं ले पाता, क्योंकि, नायिका मल्लिका कालिदास से अटूट प्रेम करती है और दूर रह कर भी उसकी मंगल कामना करती है । इसके अतिरिक्त नये हाथ बड़े खिलाड़ी में भी प्रतिनायक का ऐसा ही रूप है ।

अर्क की मीनार, कैदाखाना, मन के भंवर आदि नाटकों में प्रतिनायक का स्वरूप पुरानी मान्यताओं से मिलता जुलता है । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में यह भी देखने को मिलता है कि नायक जैसा पात्र यदि मंच पर नहीं भी आता तो भी वह पूरे नाटक को प्रभावित करता है । तीसरा हाथी, और बादशाह

गुलाब बेगम आदि नाटक इसके उदाहरण हैं।

आज के नाटकों के नायक का अन्त दुखान्त भी होता है — जैसे हरिकृष्ण प्रेमी के स्वप्नभंग, अग्निपरीक्षा, उदयशंकर भट्ट के 'क्रान्तिकारी' नाटकों के नायक नाटक के अन्त में मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि आज के युग में इन नायक और नायिका के चित्रण से हट कर भी नाटकों की रचना हो रही है। जैसे सिंहासन खाली है, बकरी आदि। अतः इन नाटकों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि आज नाटकों में प्रधान पात्र का होना अनिवार्य नहीं रह गया है।

मूल नाटकों की सूची

अंजो दीदी	उपेन्द्रनाथ अश्क	द्वि०सं०, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद
अंधा कुआँ	लक्ष्मीनारायण लाल	प्र० १९५६, भारती भंडार, प्रयाग
अंधा युग	धर्मवीर भारती	प्र०सं० १९५५, किताब महल, प्रयाग
अंधी गली	उपेन्द्रनाथ अश्क	प्र०सं० १९५६, नीलाभ प्रका०, इलाहाबाद
अग्नि परीक्षा	हरिकृष्ण प्रेमी	प्र०१९७१, लोकचेतना प्रकाशन, जबलपुर
अपराजित	लक्ष्मीनारायण मिश्र	प्र०२०११वि०, कौशाम्बी प्रकाशन, इलाहाबाद
अपनी धरती	रेवतीशरन शर्मा	१९६३, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, ३६ ए चन्द्रलोक जवाहर नगर दिल्ली।
अब्दुल्ला दीवाना	लक्ष्मीनारायण लाल	प्र०१९७३, राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली
अमर बेल	हरिश्चन्द्र खन्ना	नव-पंजाब साहित्य सदन, दिल्ली, जालंधर, जुलाई १९५३
अम्बपाली	रामवृक्ष बेनीपुरी	१९७२, न्यू बिल्डिंग्स अमीनाबाद, लखनऊ
अमृतपुत्री	हरिकृष्ण प्रेमी	१९७०, ज्ञान भारती दिल्ली
अलग अलग रास्ते	उपेन्द्रनाथ अश्क, ९	प्र०१९५४, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद
अशोक की आशा	मिलिन्द	जून १९७०, कैलाश पुस्तक सदन, ग्वालियर
आदि मार्ग	उपेन्द्रनाथ अश्क,	१९५०, साहित्यकार संसद, प्रयाग

आधे अधूरे	मोहन राकेश	१९७६, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश,	१९५६, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
आहुति	पुरुषोत्तम महादेव जैन	१९३८, नवरत्न कार्यालय इन्दौर
इतिहास चक्र और ओह अमेरिका	दया प्रकाश सिन्हा,	प्र०सं० १९७३, अक्षर प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली
उद्धार	हरिकृष्ण प्रेमी	१९५१, आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरीगेट, दिल्ली
कंचन जंघा	सत्यजित राय	प्र०सं० १९७४, राजपाल, दिल्ली
कनेर	वृन्दावनलाल वर्मा	छठा संस्करण, १९७३, मयूर प्रका० प्रा०लि० झाँसी
करफ्यू	लक्ष्मीनारा[illegible]	प्र०सं० १९७२, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली
कल्पतरु	लक्ष्मीनारायण मिश्र	श्री रामेश्वर एण्ड कम्पनी, आगरा
किसान	शील	प्र०सं० १९६२, लोक भारती प्रका०, इलाहाबाद
कीर्तिस्तम्भ	हरिकृष्ण प्रेमी	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
कैद और उड़ान	उपेन्द्रनाथ अश्क	द्वि०सं० १९५५, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद
कोणार्क	जगदीशचन्द्र माथुर	प्र०सं० २००८, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद
क्रान्तिकारी	उदयशंकर भट्ट	प्र०सं० १९६०, दिल्ली आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली
कृष्णार्जुन युद्ध नाटक	माखनलाल चतुर्वेदी,	चतुर्थ संस्क०, प्रकाशक पुस्तकालय कानपुर
खिलौने की खोज	वृन्दावन लाल वर्मा,	प्र०सं० १९५० , मयूर प्रकाशन, स्वाधीन प्रेस, झाँसी

गरुड़ध्वज	लक्ष्मीनारायण मिश्र	१९६४, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी
चन्द्रहार	प्रेमचन्द (रूपान्तरकार)	विष्णु प्रभाकर, १९५४, इलाहाबाद, सरस्वती प्रेस
छठा बेटा	उपेन्द्रनाथ अश्क	छठा संस्करण १९६१, नीलाभ प्रकाशन
छाया	हरिकृष्ण प्रेमी,	१९५२, दिल्ली आत्माराम एण्ड सन्स
जनकवि जगनिक	कुंवरचन्द्र प्रकाश सिंह	द्वि०सं० १९६५ ई० , भारती प्रकाशन, लाटूश रोड, लखनऊ
जनमेजय का नागयज्ञ	जयशंकर प्रसाद,	नवां सं० २०२६, भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद
जय पराजय	उपेन्द्रनाथ अश्क	१९७३, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद
जिन्दा लाशें-भूले भटके,	भीष्म	नरबदा बुक डिपो, सुभाष पथ, जबलपुर
टूटते परिवेश	विष्णु प्रभाकर	प्र०सं० १९७४, भारतीय साहित्य प्रकाशन
तीन दिन तीन घर	शील	प्र०सं० १९६१, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
तीन युग	विमला रैना	१९५८, किताब महल, इलाहाबाद १
तुलसीदास,	गोविन्द वल्लभ पन्त	प्र०सं० [illegible] , १९७४, भारतीय साहित्य प्रकाशन
त्रिशंकु	बृजमोहन शाह	द्वि० १९७३ ई० , शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली
दर्पण	लक्ष्मीनारायण लाल	१९६२, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली
दशाश्वमेध	लक्ष्मीनारायण लाल	१९५० ई० हिन्दी भवन, जालंधर और इलाहाबाद

दीपशिखा	रेवतीशरन शर्मा	प्र०सं० १९७३, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
देवदास	ओंकार शरद	रावबिना प्रकाशन, प्रथम सं० जून, १९६२ इलाहाबाद
धरती की महक	रमावतार चेतन	१९५६ जालंधर हिन्दी भवन
धर्मयुद्ध	जगदीशचन्द्र मिश्र	१९६५, इलाहाबाद त्रिवेणी
धूल और हीरे	श्रीफल, नर्मदा बुक डिपो, सुभाष पथ, जबलपुर	
नई राह	हरिकृष्ण प्रेमी	पाँचवाँ संस्करण, १९५६, इलाहाबाद हिन्दी भवन
नारद की वीणा	लक्ष्मीनारायण मिश्र	प्र०सं० १९४६, किताब महल इलाहाबाद
निस्तार	वृन्दावनलाल वर्मा	१९५५, मयूर प्रकाशन झाँसी
नीलकंठ	वृन्दावन लाल वर्मा, द्वि०सं० १९५२, मयूर प्रकाशन, झाँसी	
पुण्यपर्व	सियारामशरण गुप्त	प्र० सं० १९६२ वि०, साहित्य सदन, झाँसी
पूर्व की ओर	वृन्दावनलाल वर्मा	चतुर्थ सं० १९५२, मयूर प्रका०, झाँसी
प्रकाश	सेठ गोविन्ददास, द्वि०सं०	१९६२, महाकोशल साहित्य मन्दिर, गोपाल बाग, जबलपुर
फूलों की बोली	वृन्दावन लाल वर्मा	प्र०सं० १९५७, मयूर प्रका०, झाँसी
बकरी	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	प्र०सं०, जुलाई १९७४, लिपि प्रका०, दिल्ली
बन्धन	हरिकृष्ण प्रेमी	प्र०सं० १९५६, इला० हिन्दी भवन
बन्धन अपने अपने	शंकर शेष	प्र०सं० १९७०, अनादि प्रकाशन, दिल्ली
बर्फ की मीनारा	विनोद रस्तोगी	प्र०सं० १९६६, उमेश प्रकाशन, दिल्ली
बड़े खिलाड़ी	उपेन्द्रनाथ अश्क	द्वि०सं० १९६६, नीलाभ प्रका०, इलाहाबाद - १

बिना दीवारों के घर	मन्नू भंडारी	प्र०सं० १९७५, अक्षर प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली
बीरबल	वृन्दावनलाल वर्मा,	प्र०सं०१९५५, मयूर प्रकाशन, झाँसी
भँवर	उपेन्द्रनाथ अश्क	प्र०सं० १९६१, नीलाभ प्रकाशन
भिक्षु से गृहस्थ, गृहस्थ से भिक्षु	सेठ गोविन्ददास	१९५७, भारतीय साहित्य मंदिर, फव्वारा दिल्ली
मन के भँवर,	दया प्रकाश सिन्हा,	प्र०सं० १९६८, नया साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद
ममता	हरिकृष्ण प्रेमी	राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरीगेट, दिल्ली-६
महल और झोंपड़ी	दशरथ ओझा	१९६८, फ्रैंक ब्रदर्स एण्ड कम्पनी, दिल्ली-६
मादा कैक्टस	लक्ष्मीनारायण लाल	नया संस्करण १९७२, नेशनल पब्लिशिंग हाउस
मित्र	हरिकृष्ण प्रेमी	१९५८ ई० वाणी मन्दिर, दिल्ली
मुक्ति का रहस्य	लक्ष्मीनारायण मिश्र	द्वि०सं० १९८९ वि०, साहित्य भवन, लिमिटेड
मुक्तिपथ	उदयशंकर भट्ट,	प्र०सं० १९६०, दिल्ली आत्माराम प्रका०
ययाति	गोविन्दवल्लभ पन्त	प्र०सं० सितम्बर, १९७४, भारतीय साहित्य प्रकाशन
युगे युगे क्रान्ति	विष्णु प्रभाकर, प्र०सं०	१९६९, राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली
रक्तदान	हरिकृष्ण प्रेमी	छठा सं० १९७१, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरीगेट, दिल्ली
रक्षाबन्धन	हरिकृष्ण प्रेमी	प्र०सं० १९६५, इला० हिन्दी भवन

राखी की लाज	वृन्दावनलाल वर्मा,	१९५५, मयूर प्रकाशन, झाँसी
राजमुकुट	गोविन्दवल्लभ पंत,	बारहवाँ संस्करण, १९५६ गंगा पुस्तक माला, लखनऊ
रातरानी	लक्ष्मीनारायण लाल,	प्र०सं०, १९७०, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
राम जानकी चरित	चन्दनलाल	
रामानुज	रांगेय राघव	प्र०सं० १९५२, किताब महल
राक्षस का मंदिर	लक्ष्मीनारायण लाल	राक्षस का मन्दिर, लक्ष्मीनारायण मिश्र, प्र०सं०, साहित्य भवन, लि०
रुक्मिणी परिणय	अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध	नांदीपाठ, भारत जीवन यंत्रालय
रुक्मिणीहरण	मथुरादास	
लहरों का राजहंस	मोहन राकेश,	१९७०, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पटना
लौटन	विपिन कुमार अग्रवाल	प्र०सं० १९७४, लोक भारती प्रका०
वत्सराज,	लक्ष्मीनारायण मिश्र	तृ०सं० १९५१, हिन्दी भवन, जालंधर और इला०
वासवदत्ता का चित्रलेख	भगवती चरण वर्मा	प्र०सं० २०१२, भारती भंडार, लीडर प्रेस
विकास	सेठ गोविन्ददास	पाँचवीं बार (१९६४ ई० , हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
विजेता	रामवृक्ष बेनीपुरी	नवीनतम सं० जुलाई १९७१ प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ
वितस्ता की लहरें	लक्ष्मीनारायण मिश्र	सं०सं० १९६६, स्वास्तिक प्रका०, गुरुधाम वाराणसी-५
विशाख	जयशंकर प्रसाद	द्वि०सं० १९६८ , भारती भंडार

विषपान	हरिकृष्ण प्रेमी	च०सं० १९५१ ई०, दिल्ली आत्मा०ए०सं०, दिल्ली
धीरशैव	लक्ष्मीनारायण मिश्र	मकर संक्रा० २०२४, रामनारायण लाल, बेनीप्रसाद, प्रयाग
शकुन्तला नाटक	राजा लक्ष्मण सिंह,	द्वि०सं० १९७३, लोक भारती प्रकाशन
शपथ	हरिकृष्ण प्रेमी,	
शिवा साधना	हरिकृष्ण प्रेमी	आठवां संस्क० १९७०, हिन्दी भवन, जालंधर
शृंगार निर्णय	भिखारीदास	१८९५ ई० काशी, भारतजीवन प्रेस
शृंगार मंजरी (नायक भेद)	ब्रजभाषा रूपान्तरकार कवि चिन्तामणि, १९५६, लखनऊ विश्व विद्यालय	
सगर विजय	उदयशंकर भट्ट	१९३७, मसिजीवी प्रकाशन, नई दिल्ली
सगुन	वृन्दावनलाल वर्मा	१९५० ई०, मयूर प्रकाशन, झांसी
सन्यासी, लक्ष्मीनारायण मिश्र		तृ०सं० १९६१, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
समाधि	विष्णु प्रभाकर	१९५८ ई०, दिल्ली ओरि० बुकडिपो
स्वर्ग की झलक	उपेन्द्रनाथ अश्क	तृ०सं० १९५० ई०, नीलाभ प्रकाशन प्रयाग
स्वप्न भंग	हरिकृष्ण प्रेमी	द्वि०सं० १९५६ ई०, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरीगेट, दिल्ली
सांझ सवेरा.	दयाप्रकाश सिन्हा	प्र०सं० १९७४, भावना प्रकाशन, दिल्ली, अलीगढ़
सांपों की सृष्टि	हरिकृष्ण प्रेमी	प्र०सं०, १९५१, दिल्ली बैंसल एण्ड कम्पनी
सिन्दूर की होली	लक्ष्मीनारायण मिश्र	२००८ वि०, भारती भंडार, प्रयाग
सिंहासन खाली है	सुशील कुमार सिंह,	प्र०सं० १९७४, लिपि प्रकाशन, दिल्ली

सीतावनवास नाटक	ज्वाला प्रसाद	
सीता स्वयंवर नाटक		
सीमा संरक्षक	हरिकृष्ण प्रेमी, प्र०सं०, १९५७, साहित्य सदन, देहरादून	
सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक	सुरेन्द्र वर्मा	१९७५, राधाकृष्ण, प्रका०, दिल्ली
सेवापथ	सेठगोविन्ददास,	१९४३, हिन्दी भवन, लाहौर
हंस मयूर	वृन्दावनलाल वर्मा,	प० सं०, १९५०, मयूर प्रकाशन, झांसी
हवा का रुख	शील	प्र०सं०, १९६२, लोक भारती, इलाहाबाद

आलोचना ग्रन्थ

अरस्तू का काव्यशास्त्र	अनु० डॉ० नगेन्द्र	प्र०सं० सं० २०१४ वि०, भारती भं० प्रका०, इलाहाबाद
आधुनिक नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन	डॉ० गणेश दत्त गौड़	जन० १९६५, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा
आधुनिक हिन्दी नाट्यकारों के नाट्य सिद्धान्त	डॉ० निर्मल हेमन्त	प०सं०, १९७३, अक्षर प्रकाशन, प्रा० लि०
आधुनिक हिन्दी नाटक में संघर्ष तत्व	डॉ० ज्ञानराज काशीनाथ गायकवाड़	प्रथम संस्करण, १९७५ पुस्तक संस्थान नेहरू नगर, कानपुर१२
आधुनिक हिन्दी नाटक	डॉ० गिरीश रस्तोगी,	१९६८, ग्रन्थम, रामबाग, कानपुर
आधुनिक नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा	कुंवर चन्द्र प्रकाश सिंह,	भारती ग्रन्थ भंडार, १९६४
जयशंकर प्रसाद	नाट्यशिल्प और कृतियों का मूल्यांकन	सतीश बहादुर वर्मा

द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास — डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय — प्र०सं० १९७३, राजपाल एण्ड सन्ज़ कश्मीरी गेट, दिल्ली

नाटककार जगदीशचन्द्र माथुर — गोविन्द चातक — प्र०प्रका०, १९७३ राधाकृष्ण प्रका०

नाटककार अश्क — जगदीशचन्द्र माथुर समीक्षा गोपालकृष्ण — प्र०सं० १९५४ ई० , नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद

नाटक के तत्व सिद्धान्त और समीक्षा — विष्णुकुमार त्रिपाठी — १९७३, स्मृति प्रका०, ६१ महा० टोला, इलाहाबाद -३

नाटक की परख — सूरजप्रसाद खत्री

नाटक के तत्व — कमलिनी मेहता

नाट्यकला — डॉ० रघुवंश — नेशनल पब्लि० हाउस, दिल्ली

नाट्यकला-मीमांसा — डॉ० गोविन्ददास, प्र०सं०, १९६१, सूचना तथा प्रकाशन संचालनालय, मध्यप्रदेश

नाट्य-निबन्ध — डॉ० दशरथ ओझा

नाट्य-समीक्षा, — डॉ० दशरथ ओझा नेशनल पब्लि० हाउस, दिल्ली, प्रथम सं०

नाट्यशास्त्र की भारतीय परम्परा और दशरूपक — डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृथ्वीनाथ द्विवेदी, प्र०सं०१९६३ राजकमल प्रकाशन

प्रसाद के नाटक तथा रंगमंच — डॉ० सुषमा पाल, मल्होत्रा, प्रथम सं०१९७४, राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली

भरत और भारतीय नाट्यकला — डॉ० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, प्र०सं० १९७०, राजकमल प्रका०, ८ फैजाबाद, दिल्ली ६

भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण — वाचस्पति गैरोला — प्र०सं०१९६७ संगीतिका प्रका०

भारतेन्दु के नाटकों का शास्त्रीय अनुशीलन — गोपीनाथ तिवारी — प्र०सं०, १९७१, राजकमल प्रका० प्रा० लि०, दिल्ली

रसिक प्रिया का प्रिया प्रसाद तिलक — टीका० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र — द्वि०सं० २०२४ वि०, कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स, ज्ञानवापी, वाराणसी

रसिक प्रिया — केशवदास, — द्वितीय प्रभाव

रूपक रहस्य — श्यामसुन्दरदास — तृतीय संस्करण, १००२, इंडियन प्रेस लिमिटेड

शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त — गोविन्द त्रिगुणायत, — १९६८, एस०चन्द एण्ड कंपनी, दिल्ली, जालन्धर, लखनऊ

संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ — संपा० स्वर्गीय चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा — द्वि०सं०

साहित्य सर्वस्व — प्रो० हरिराय तिवारी — १५ अगस्त १९५२, संस्कृत सदन, कोटा

सेठ गोविन्ददास नाट्यकला तथा कृतियाँ — रामचरण महेन्द्र

हमारी नाट्य परम्परा — श्री कृष्ण दास — प्र०सं०, १९५६, राजकमल प्रकाशन

हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी नाटक, — डॉ० दशरथसिंह — प्र०सं० १९६२, विद्या मंदिर वाराणसी

हिन्दी नाटक की रूपरेखा — डॉ० दशरथ ओझा, एवं प्रो० पुरुषोत्तम प्रसाद कपूर, १९६२ हिन्दी सा०मं०, दिल्ली ६

हिन्दी नाटक — बच्चन सिंह, प्र०सं०, १९५८ ई० साहित्य भ०प्रा०लि०, इला०

हिन्दी नाटक के सिद्धान्त और नाटककार — प्रो० रामचरणमहेन्द्र, १९५५, सरस्वती पुस्तक सदन, मोती कटरा, प्रयाग

हिन्दी नाटक में नायक का स्वरूप — डॉ० रवीन्द्रकुमार मनोज प्र०सं० १९७४, भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दिल्ली

हिन्दी नाटक उद्भव और विकास — डॉ० दशरथ ओझा — द्वि०सं० राजकमल एण्ड सं० दिल्ली

हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास	डॉ० सोमनाथ गुप्त	चौथा संस्क० १९५८ हिन्दी भवन, जालंधर
हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन	वि	
हिन्दी नाटकों की शिल्प-विधि	श्रीमती गिरजा सिंह	प्र०सं० जून १९७०, लोक भारती, प्रयाग
हिन्दी नाटकों का विकासात्मक अध्ययन	डॉ० शान्ति गोपाल पुरोहित	साहित्य सदन देहरादून, प्र०सं० १९६४
हिन्दी नाट्य चिन्तन	शिखरचन्द जैन	
हिन्दी नाट्य विमर्श	गुलाब राय	संस्क० १९५८, मेहरचन्द संस्कृत हिन्दी पुस्तक विक्रेता गली नन्हें खाँ कूचा चेलान दरियागंज, दिल्ली
हिन्दी साहित्य	डॉ० भोलानाथ तिवारी,	द्वितीय संस्करण, १९७१
हिन्दी नाटक सिद्धान्त और परम्परा	कैलाश पति ओझा	साहित्य सदन, देहरादून

संस्कृत के ग्रन्थों की सूची

अग्नि पुराण का काव्य-शास्त्रीय भाग	रामलाल वर्मा, नेशनल पब्लि० हाउस, दिल्ली, प्र०सं०	फरवरी १९५९
अभिनव नाट्यशास्त्र	सीताराम चतुर्वेदी	प्रधान मंत्री अखिल भारतीय विक्रम परिषद, काशी, प्र०सं० २००८
शृंगार प्रकाश	महाराजाधिराज श्रीभोजदेव विरचित	संपा० धुरन्धरेण प्रकाशोऽकं, रामानुज ज्योतिष्काकेण, १९६६